सांख्य सिद्धान्त

(सांख्य-दर्शन का वैज्ञानिक आधार)

लेखक
अरुण कुमार उपाध्याय

नाग पब्लिशर्स
११ ए.यू.ए. जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७, भारत

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित।

नाग पब्लिशर्स
(i)११ ए. यू.ए. जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७
(ii)जलालपुर माफी, चुनार, मिरजापुर, यू.पी.
दूरभाष: २३८५५८८३, २३८५७९७५

(C) लेखक

ISBN ८१-७०८१-६३८-६
प्रथम संस्करण: २००६
मूल्य: रुपये ९५.००

श्री सुरेन्द्र प्रताप द्वारा नाग पब्लिशर्स, ११ ए. यू.ए. जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७ द्वारा प्रकाशित तथे जी. प्रिंट प्रासेस, ३०८/२, शाहजादा बाग, दया बस्ती, दिल्ली-११००३५ द्वारा मुद्रित तथा मोहन कम्प्यूटर प्वाइन्ट ८ ए.यू.ए./३ जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७ अक्षर योजक।

भूमिका

सांख्य-दर्शन ज्ञान का मूल माना गया है (गीता३/३)-

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।

ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।

वेद का वर्गीकरण भी सांख्य पर आधारित है। किन्तु आजकल वेद ज्ञान का मूल मानने के बदले उसे अशिक्षित अनपढ़ लोगों का गीत माना जाता है। औक्सफोर्ड विश्वविद्यालय द्वारा १८३१ में बोडेन पीठ की स्थापना का उद्देश्य था इस प्रकार के प्रचार द्वारा वैदिक सभ्यता को नष्ट करना (मोनियर विलियम्स के संस्कृत-हिन्दी कोष की भूमिका)। मैक्समूलर आदि ने इस उद्देश्य के लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। धर्मान्धिता में उनकी निष्ठा प्रशंसनीय है, जिसका विस्तार से वर्णन १९०२ में लौंगमैन ग्रीन द्वारा लन्दन से प्रकाशित २ खण्डों में 'जीवनी और पत्र' में है। मार्क्स वेबर आदि कई जर्मन भाड़े पर आकर ब्रिटेन में यह काम कर रहे थे। इनका कुछ अपना विचार भी वैसा ही था। मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार पूञ्जीवादी प्रकाशक बिना पैसे के लोभ के कोई कार्य नहीं करते। आज भी जो वस्तु पाठ्यक्रम में नहीं है, उस पर पुस्तक छपवाना सम्भव नहीं है। किन्तु जो ब्रिटिश शासन भारत को लूटने के लिये ही आया था वह 'नि:स्वार्थ' भाव से वेद और साम्यवाद पर पुस्तकें छपवाने केलिये खर्च कर रहा था, जिससे भारत और रूस को नष्ट किया जा सके। बाद में रूस और चीन ने भी इसी उद्देश्य से साम्यवाद की पुस्तकें मुफ्त बांटीं। ये स्वयं ये सिद्धान्त छोड़ चुके हैं, पर उनके भक्त इनसे लिपटे हुये हैं। इनकी धर्मान्धिता के कारण बाइबिल आदि समझने में भी भूल हुयी। मुख्य भ्रम और भूल इस प्रकार हैं-

(१) १७०० इस्वी से विज्ञान की उन्नति आरम्भ होने पर जो व्यक्ति उसे बिल्कुल नहीं समझ पाये, वे भी अपने को विद्वान और सभी प्रचीन शास्त्रों को मूर्खतापूर्ण मानने लगे। प्राचीन काल में भी विश्व के सभी भागों में लोग सूर्य-चन्द्र ग्रहण की गणना, खनिज सम्पदा की खोज, योग-आयुर्वेद के सिद्धान्त जानते थे, जो आज भी हमारी ज्ञान सीमा के बाहर है। उदाहरणार्थ मेक्सिको में १८ अङ्कों की गणना होती थी, जिसका आर्यभट ने भी प्रयोग किया है, क्योंकि पृथ्वी के हजार भाग को योजन मानने पर ब्रह्माण्ड (आकाश-गङ्गा) का आकार १८ अङ्क की संख्या होती है।

किन्तु माना गया है कि मेक्सिको वासी सिर्फ चित्र लिपि जानते थे। वहां तथा अफ्रीका आदि में भी सोना तथा अन्य खनिज निकाले जाते थे, आज भी इनकी खोज अनुमान पर ही आधारित है।

(२) सभी घटनाओं का काल ५००० वर्षों के भीतर ही रखा गया है , क्योंकि १९०८ में मुख्य पादरी अशर ने निर्धारित किया कि बाइबिल के अनुसार ४००४ ई.पू. में सृष्टि हुयी। यह बाइबिल के आरम्भ को नहीं समझने के कारण है। वहां लिखा है कि ४र्थ दिन सूर्य-चन्द्र,५म दिन पृथ्वी हुयी। यहां दिन का अर्थ पृथ्वी का अपने अक्ष पर भ्रमण नहीं हो सकता, क्योंकि पृथ्वी बनी नहीं थी। जब सूर्य भी नहीं था, उस समय दिन का अर्थ आकाश-गङ्गा का ही अक्ष-भ्रमण हो सकता है, जिसका निर्धारण आज भी अनुमानित ही है। इसे भारत में मन्वन्तर कहा गया है (प्राय: ३१ कोटि वर्ष)। बाइबिल में यही दिन कहा गया है। उसी अध्याय में २७वें वाक्य में कहा है कि भगवान ने मनुष्य को अपने रूप में बनाया। यहां भगवान का रूप क्या है, जिसको निराकार माना गया है। मनुष्य का अर्थ यहां पुरुष-स्त्री दोनों होगा। स्वयम्भू जगत् की प्रतिमा आकाश-गङ्गा है, उसकी प्रतिमा मनुष्य का मस्तिष्क-इन सभी में १०० अरब कण हैं। इसका आभास आधुनिक विज्ञान में १९८५ में हुआ, जिसका ६००० वर्ष पुराने शतपथ ब्राह्मण में विस्तार से वर्णन है। जो साकार है वही निराकार है-इन रूपों को क्षर-अक्षर कहा जाता है। एक ही ब्रह्म के ४ पाद होने के कारण वेद में उसे अज, कुरान में बकर, और बाइबिल में गौड (जर्मन में गौट=गोट या बकरी) कहा गया है। इसे बिना समझे मूर्त्ति के पक्ष-विपक्ष में संघर्ष होते हैं।

(३) बाइबिल, कुरान, वेद, पुराण में ७ लोकों का वर्णन तथा उनका आकार बहुत स्पष्ट रूप से दिया गया है। सौर-मण्डल का आकार आज भी स्पष्ट नहीं है। बाइबिल में इसे इनौक की पुस्तक में कहा गया है। सामान्य उपयोग का नहीं होने के कारण इसे वर्त्तमान अनुवाद में नहीं रखा गया है। वही वर्णन सूर्य-सिद्धान्त में है (सूर्य=इन, मेक्सिको में इन्का=सूर्यवंशी)।

(४) भारतीय विद्वानों की कठिनाई है कि हजारों वर्षों के विदेशी शासन में पुस्तकें नष्ट की गयीं या उन्हें चोरी से विदेश ले गये। चोर-भावना में मैक्समूलर आदि ने किसी भारतीय स्रोत का नाम नहीं दिया।जो उपलब्ध भी हैं, उनके वैज्ञानिक शब्दों की परिभाषा बताने वाला कोई नहीं है। इसके अतिरिक्त पुरानेविद्वान् अंग्रेजी नहीं जानते थे, अभी के संस्कृतज्ञ संस्कृत नही जानते, उसे अंग्रेजी माध्यम से पढ़ते हैं।

(५) संस्कृत के वैज्ञानिक अध्ययन के लिये शब्दों की परिभाषा तथा उनकी माप जरूरी है। वेद के प्राय: प्रति सूक्त में वैज्ञानिक शब्द, उनकी माप सम्बन्धी संख्यायें हैं। वेद तथा दर्शन के विद्वान् स्कूल स्तर का विज्ञान या गणित भी न जानते हैं, न जानने की चेष्टा करते हैं। इतिहास के लेखक पञ्चाङ्ग की प्रारम्भिक जानकारी भी नहीं रखते। वे अभी तक यही मान कर इतिहास लिखते हैं कि पृथ्वी की सृष्टि ४००४ ई.पू. में हुयी थी, जबकि स्कूल विद्यार्थी भी जान चुके हैं कि पृथ्वी प्राय: ५ अरब वर्ष पुरानी है।

(६) वेद-पुराणों में ७ प्रकार के योजन, ९ प्रकार के काल-मान, तथा ७ प्रकार के युग हैं। साहित्य के कई पर्यायवाची शब्द अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त हैं। उन सबको एक ही मान कर व्याख्या करने से भ्रम होता है। परिभाषा समझने से एक ही स्पष्ट अर्थ है ।

इन पर विचार करने से सांख्य का वास्तविक अर्थ स्पष्ट होगा, तथा उसका निर्माण काल का पता मिलेगा। इस पुस्तक में वेद-तन्त्र-पुराण का परस्पर सम्बन्ध, वेद के ६ अङ्ग तथा ६ उपाङ्ग(दर्शन) की व्याख्या है। सांख्य दर्शन केवर्गीकरण का वैज्ञानिक आधार कपिल के तत्त्व-समास सूत्र के आधार पर है। यह वास्तविक विश्व का वर्णन होने के कारण विज्ञान का आधार है। युगों की चर्चा द्वारा इसके रचनाकाल का भी अनुमान किया गया है। सांख्य का परिवर्धित वर्गीकरण शैव-दर्शन भी इस प्रसंग में वर्णित है। इनकी भूमिका रूप में विश्व-वृक्ष तथा माप की इकाइयों का परिचय दिया गया है। सांख्यकारिका तथा सांख्यसूत्र सामान्य अर्थ के साथ दिये गये हैं जो प्राय: पं. रामशङ्कर भट्टाचार्य की व्याख्या के अनुसार हैं तथा प्राय: सरल रूप में हैं। विस्तार से उनकी पुस्तकें देखनी चाहिये जो मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, से प्रकाशित हैं।

अरुण कुमार उपाध्याय,

३-१०-२००५, महालया कटक

विक्रमाब्द २०६२, आश्विन अमावास्या।

विषय सूची

अध्याय / विषय **पृष्ठ**

१.विश्व-वृक्ष और वेद **१-१५**

आगम-निगम-पुराण १,विद्या और महाविद्या १,त्रयी काअर्थ वेद-२,वृक्ष रूप में व्याख्या-३,विश्व-वृक्ष तालिका-४।

टिप्पणी-१.पञ्चाग्नि-४, २.अग्निसोम-५, अक्षरचिह्न-६, ४.पर्वों का आकार-६, ५.देवता-७, अक्षर पुरुष -७।

सारणी-८

टिप्पणी-(१).प्रकाश-गति से सम्बन्ध ८, (२)मन केस्तर ९,(३) सौर मण्डल १०. (४)साहस्री १०,(५)ग्रह प्रभाव ११, (६) क्षर पुरुष ११।

सात लोक १२-

टिप्पणी-(१) कोषिका १३, (२) छोटे विश्व १३, (३) अणु १४, (४) नाभिकी १४, (५) असत् विश्व १४, (६) ऋषि १४।

स्ट्रिंग सिद्धान्त, देव-असुर-पितर १५ ।

२.देश काल की माप **१६-८१**

१.संख्या का उपयोग-१६

२.भौतिक विज्ञान की माप पद्धति १७-

राशि १७,मूल ,व्युत्पन्न इकाई १७, लम्बाई की इकाइयां १८, समय की माप १९

३.सप्त-योजन १९-

(१) नर योजन २०,(२) भू योजन २१, (३) भ योजन २४, (४) धाम योजन २६- वषट्कार क्षेत्र २९, त्रिष्टुप् छन्द ३१, छन्दोमा स्तोम ३१, ब्रह्माण्ड के बड़े स्तर ३१। (५) सौर योजन ३२, (६) प्रकाश योजन ३२, (७) प्रमाण योजन ३४-पुराण माप ३४, जैन वेद की एकता ३५,, बड़े लोक ३६, माप सारणी ३८

४.सूक्ष्म माप ३७।

५.काल के ९ मान ३७-

९ सर्गों से तुलना ३७-४१। (१) ब्राह्म ४१, (२) प्राजापत्य ४१, (३) दिव्य मान ४२, (४)गुरु मान ४२, (५) सौर मान ४२, (६) चान्द्र मान ४२, (७) पितर मान ४२, (८) सावन मान ४३, (९) नाक्षत्र मान ४३।

अध्याय/विषय **पृष्ठ**

६.युग ४३-
(१) संस्कार युग ४३, (२) मनुष्य युग ४४, (३) परिवर्त युग ४५, (४) सहस्रयुग ४५, (५) ध्रुव या क्रौञ्च युग ४६, (६) अयन या इतिहास युग ४६, (७) ज्योतिषीय युग ४८।
७. युग चक्र ४९-
टिप्पणी -(१) तृतीय कल्प ५०, (२) ब्रह्मा का काल , ७ ब्रह्मा, २८ वसिष्ठ-५०, स्वायम्भुव, आदम-५१, (३) युग खण्ड ५२, (४) कश्यप और मन्वन्तर ५४, (५) जल-प्लावन ५५, (६) सप्तर्षि ५५।
८.व्यास-सूची ५६।
९.कलि पूर्व के राजवंश ५८-
सूर्य वंश ५८, चन्द्र वंश ६१, अन्य मुख्य वंश-(१) मिथिला ६३,(२) कान्यकुब्ज ६४, (३) शर्याति ६४, (४) काशी ६४, (५) बार्हद्रथ ६४, (६) चैद्य ६४, (७) पाञ्चाल, अनु, द्रुह्यु, यादव ६४, क्रोष्टु ६५।
१०.कलि के राजवंश ६६-
(१) चन्द्र ६६,(२) सूर्य ६६, (३) मगध का बार्हद्रथ ६६, (४) प्रद्योत ६७ (५) शिशुनाग ६७, (६) नन्द ६८, (७) मौर्य ६८, (८) शुङ्ग ६९, (९) कण्व ७०, (१०) आन्ध्र ७०, (११) गुप्त ७१, (१२) कश्मीर राजवंश ७२, (१३) मालवा राजा ७४, (१४) नेपाल राजवंश ७७, (१५) कुछ महापुरुषों का काल-परशुराम,राम,सिद्धार्थ-७९, शङ्कराचार्य, श्रीकृष्ण-८०, अन्य बुद्ध ८१, महावीर ८१ ।

३.वेदाङ्ग और सांख्य **८२-१३३**

१.वेद के पाद ८२- मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक-८२, उपनिषद् ८३, पौरुषेयता ८३।
२.दर्शन का कार्य ८५-भेद ८५, आस्तिक-नास्तिक वर्ग के ३-३ दर्शन ८६।
३.दशवाद ८६-(१) सदसद्वाद ८७-८९, (२-५) रजोवाद,व्योमवाद, अपरवाद, आवरणवाद-८९,(६-८) अम्भोवाद, अमृत-मृत्यु वाद, अहोरात्रवाद-९०, (९-१०) देववाद, संशयवाद-९१।
४.दस आयामों के ६ दर्शन-९१।
५. षड्दर्शनों का स्वरूप-९३, (१-२)लोकायत, वैनाशिक-९३,(३-५) जैन,

अध्याय / विषय **पृष्ठ**

वैशेषिक, प्राधानिक (सांख्य)-९४, (६) शारीरक ९५।
६.विस्तृत वर्गीकरण ९५-६ह्न६ वर्ग ९६, नास्तिक,ईश्वरमात्रिक,ब्रह्मप्रकृतिसम्बन्ध, ईश्वरविभूति, तन्त्र, एकत्व-९६।
७.वेद शाखायें ९६।
८.कुल और उपलब्ध शाखायें ९७-ऋग्वेद ९७,कृष्ण यजु ९८, शुक्ल यजु ९९, सामवेद, साम तर्पण में १३ शाखा, ब्रह्म-आदित्य सम्प्रदाय-१००। अथर्व शाखा १०१, उपलब्ध शाखायें १०१-१०३।
९.ब्राह्मण ग्रन्थ १०३-ऋग्, यजु (शुक्ल,कृष्ण), साम १०३,अथर्व, आरण्यक, उपनिषद्,स्मृति ग्रन्थ-१०४।
१०.इतिहास पुराण १०५-५ तथा १० लक्षण-१०५। १८ नियम, वर्ग,५ वाद-१०६, क्रम १०६-१०८, पुराण तालिका १०९, उपपुराण ११०।
११.वेदाङ्ग ११०-(१) शिक्षा ११०,(२) कल्प १११,(३) व्याकरण ११२-११५, (४-५) निरुक्त, छन्द ११६, (६) ज्योतिष ११६-११७।
१२.वेद के उपाङ्ग-११८- मीमांसा, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग-११८, पाश्चात्य ११८-१२०।
१३.उपवेद १२०-(१) अर्थशास्त्र परम्परा १२०, (२) आयुर्वेद १२१, (३) धनुर्वेद १२२, (४) गान्धर्ववेद १२३।
१४.आगम या तन्त्र १२३-खण्ड १२४, (१) पाञ्चरात्र १२४, (२) शैव आगम १२५-१२७, (३) शाक्त आगम १२७-१२९, (४) सौर तन्त्र १२९, (५-६) गाणपत्य, बौद्ध १३०।
१५.प्राकृत विद्या १३०-मनोविद्या, ज्ञानन्द्रिय,कर्मेन्दिअय विद्या-१३१,मूलविद्या, दिव्य अस्त्र १३२, शस्त्र, शिल्प १३३।

४.तत्त्व-समास **१३४-२२३**

१.सांख्य का प्रणयन १३४-कपिल का काल, स्थान १३४, तत्त्वसमास की ५ व्याख्या १३४,आसुरि, पञ्चशिख,वर्षगण्य, वाचस्पति मिश्र, महाभारत, युक्तिदीपिका, कपिल सूत्र तथा ईश्वरकृष्ण कारिका की तुलना, कारिका टीका, सांख्य आचार्य १३५, विज्ञानभिक्षु, भावागणेश १३६, ब्रह्माण्ड का वंशवृक्ष १३६।
२.तत्त्वसमास सूत्र १३७-२२ तथा २६ सूत्र १३७।

अध्याय / विषय **पृष्ठ**

(४.तत्त्वसमास)
सूत्र १-अथातस्तत्त्वसमास:-१३८-१४०
सूत्र २-अष्टौ प्रकृतय:१४१।
३.षोडश विकारा:-१४२
४.पुरुष-१४३-(१)प्रकृति-विकृति(२) वेद तथा शिव सूत्र के तत्त्व १४३,(३) शैवदर्शन १. तत्त्व १४४, २. कला और उन्मेष १४५, ३.सृष्टि के भाग १४६, ४.तत्त्व-रूप, ५.सृष्टि कला १४६, ६.कला का अर्थ १४७, ७.जीव की उन्नति कला १४७, ८ .अन्य कलायें, ९. उन्मेष १४८, १०.शुद्ध तथा अशुद्धतत्त्व १५२। नासदीय सूक्त १५०-१५२ ।सम्बन्धित सूत्र १५२। पुरुष का सवरूप १५३। एक और बहुत पुरुष १५५।
५.त्रैगुण्यम् १५५-व्याख्या १५६। ३ और ७ प्राण-१५७। ३ या ७ लोक-१५९। भौतिक विज्ञान में ३ भेद-१६०। गणित में त्रिगुण १६१। शरीर के षट्चक्र १६२। सांख्य तथा वेदान्त का चतु:सूत्री १६२।
६.सञ्चर प्रतिसञ्चर १६३, अर्थ, व्याख्या १६३, सृष्टि-प्रलय, सांख्य-वेदान्त चक्र १६४। रासायनिक क्रिया, प्रलय १६५। ऊष्मागतिकी, इलेक्ट्रानिक तरंग, योग-१६६। चक्रवत् गुण-१६७।
७.अध्यत्म अधिभूत अधिदैव १६७, व्याख्या १६८।
८.पञ्च अभिबुद्धि १७०,चित्तवृत्ति, अन्त:करण १७०,भावागणेश १७१।
९.पञ्च दृग्योनि १७१, ज्ञानन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय १७३।
१०.पञ्चवायु १७३-शक्ति १७३,सोम-औषधि, सृष्टि कर्म १७४, पुरुष कला. प्राणवायु १७५, मरुत् १७६,ऋषि, शरीर प्राण १७७, शिवरूपी प्राण १७८, शरीर के प्राण भेद १७८-१८०।
११.पञ्च कर्मात्मा १८०-दिव्यशक्ति, आयुर्वेद, सामगान १८०, मधुविद्या, हृदय के दिशाओं में तत्त्व, भावागणेश मत १८१, शरीर कर्म, पञ्चाग्नि,गति १८२।
१२.पञ्चपर्वा अविद्या १८२- ५० प्रत्यय १८३-१८५। विद्या अविद्या १८५-१८६। अविद्या के पर्व १८६। पर्व भेद १८७।
१३.२८ अशक्ति १८८-गणना १८८। साधना की बाधा १८९। २८ बुद्ध १८९।
१४.नवधा तुष्टि १९०-व्याख्या १९१। भक्तिमार्ग १९२।

अध्याय/विषय **पृष्ठ**

(४.तत्त्वसमास)

१५.अष्टसिद्धि १९३-सांख्य भेद, योग सिद्धि १९३-१९४, ऊह आदि १९५-१९८, प्रमोद१९८-१९९,मुदित, मोदमान १९९,सिद्धि के भेद २००,अङ्कुश २०१।

१६.दस मौलिकार्थ २०१-दस अर्थ क्यों २०२,मूलार्थ सूची २०३-२०७, उभय के गुण २०७।

१७.अनुग्रह सर्ग २०८-व्याख्या२०९।

१८.चतुर्दश भूतसर्ग २१०, नाम लोक,सर्ग २११, योनि २१२-२१४।

१९.त्रिविध बन्धन २१४।

२०त्रिविध मोक्ष २१७-शैव दर्शन २१७।

२१.त्रिविध प्रमाण २१७-प्रमा २१८, अनुमान, शब्द २१९।

२२.दु:ख निवारण २२०-त्रिविध दु:ख २२१, विषय दु:ख २२२, क्लेश, कृतकृत्यता, कर्मफल २२३।

५.सांख्यकारिका **२२४-२३७**

भूमिका २२४।

पृष्ठ	कारिका	पृष्ठ	कारिका
२२४	१	२३१	३७-४१
२२५	२-७	२३२	४२-४६
२२६	८-१२	२३३	४७-५२
२२७	१३-१७	२३४	५३-५९
२२८	१८-२४	२३५	६०-६४
२२९	२५-३०	२३६	६५-६८
२३०	३१-३६	२३७	६९-७२

६.सांख्यसूत्र **२३८-२९७**

अध्याय १/१-१६४ सूत्र -२३८-२५७। २/१-४७ पृ.२५७-२६१ ।अ.३/१-८४ पृ.२६२-२७१। अ.४/१-३२ पृ.२७२-२७५ ।अ.५/१-१२९ पृ.२७१-२७९। अध्याय ६/१-७० पृष्ठ २८९-२९७।

७.परिशिष्ट **२९८-३०९**

१.सांख्य सूत्र सूची २९८-३०७। २.पञ्चशिख सूत्र ३०७-३०९।

सांख्य-दर्शन का वैज्ञानिक आधार

अध्याय-१

विश्व-वृक्ष और वेद

१.आगम-निगम-पुराण-भारतीय या विश्व ज्ञान के ये तीन मूल स्रोत हैं। इन तीनों की उत्पत्ति एक साथ हुयी है-

प्रथमं सर्व शास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ।।
(वायु.पु.१/६१;मत्स्य पु.५३/३)

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा को समझ नहीं आ रहा था कि सृष्टि कार्य कैसे करें। तब उन्होंने पुराण द्वारा पूर्व कल्प की प्रक्रिया का स्मरण किया और वेदों की रचना की। ध्यान की विधि, प्रयोग, अनुसन्धान-ये सभी तन्त्र के विषय हैं जिनका बिना उल्लेख का वर्णन है।

विद्या और महाविद्या-वेद श्रुति है, इसका यह अर्थ नहीं कि ऋषि लिखना नहीं जानते थे जो अनपढ़ लोगों की धारणा है। ज्ञान का वातावरण से ग्रहण श्रुति है। मूल सृष्टि का आरम्भ आकाश से हुआ,उसका गुण शब्द है। अतः श्रुति का अर्थ अन्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा भी ग्रहण है। पुर का चेतन पदार्थ पुरुष है, वह बाहर से जो ग्रहण करता है वह विद्या या वेद है। पुर का बाहरी आवरण महर् है। पुरुष के कार्य का जो प्रभाव महर् द्वारा ग्रहण होता है, वह महाविद्या है।

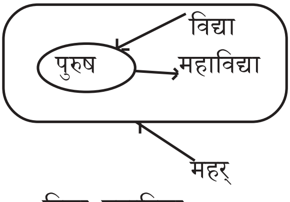

या

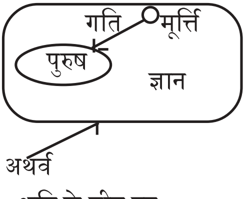

विद्या-महाविद्या

श्रुति के तीन पद

मूल आधार या ब्रह्म अथर्व (थर्व=हिलना, थरथराना, अथर्व=स्थिर, शान्त) है। इससे श्रुति के ३ पदों-पदार्थ का रूप, उससे सूचना का आगमन,ज्ञान-द्वारा तीन वेदों-ऋक्, यजुः, साम- की उत्पत्ति होती है। सम्पूर्ण सृष्टि में मूर्त्ति, गति, प्रभाव-क्षेत्र-ये ऋक्, यजुः, साम हैं। इन्हीं को अग्नि, वायु, रवि भी कहा जाता है। विद् धातु के ४ अर्थ ४ वेदों के अनुसार हैं।

तत्त्व	वेद	विद् धातु का अर्थ
मूर्त्ति	ऋक्	सत्ता (स्थिति)-विद सत्तायाम्(पा.धा. ४/६०)
गति	यजु:	लाभ (प्राप्ति)-विद्लृ लाभे(६/१४१)
ज्ञान	साम	ज्ञान-विद ज्ञाने(२/५७)
सन्दर्भ	अथर्व	विचार करना-विद विचारणे(७/१३)
		चेतनाख्यान निवासेषु(१०/१७७)

वेद के ४ विभागों का प्राय: ४० प्रकार से वर्णन है, उसमें एक है-
ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्त्तिमाहु:, सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेजं सामरूप्यं ह शश्वत्, सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्।।
(तैत्तिरीय ब्राह्मण३/१२/८/१)

इन्हें अग्नि, वायु, रवि भी कहते हैं-
अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयं बह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थं ऋग्यजु: साम लक्षणम्।।(मनुस्मृति १/२३)

इन दोनों श्लोकों में ब्रह्म का अर्थ अथर्व-वेद है, जो प्रथम वेद है-
ब्रह्मा देवानां प्रथमं सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्या सर्व विद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह।।१।।
द्वे विद्ये वेदितव्ये, इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैव अपरा च(४)
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद:,सामवेदो,अथर्ववेद:,शिक्षा,कल्पो, व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दो,ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते(५)(मुण्डक उप.१/१)

ऋक् तथा अन्य वेदों में भी अथर्व का प्रथम वेद के रूप में उल्लेख है-
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य बाधत:।।१३।।
तमु त्वा दध्यङ्ङृषि: पुत्र ईधे अथर्वण:। वृत्रहणं पुरन्दरम्।।१४।।
(ऋक्, ६/१६/१३-१४; वा.यजु.११/३२-३३,१५/२२-२३; साम ९/१०, तै.सं.३/५/११/३-४,४/१३/२-३,४/४/१)

एक मूल वेद से तीन और होने के कारण त्रयी का अर्थ ४ वेद होता है, क्योंकि मूल भी बना रहता है। इसका भ्रामक अर्थ लगाया जाता है कि पहले एक वेद था बाद में अथर्व हुआ। ४ वेद-स्रष्टा रूप में ब्रह्मा के ४ मुख हैं तथा उनका चिह्न पलाश वृक्ष है। पलाश में भी एक शाखा से तीन पत्र निकलते हैं, जैसे अथर्व से ३ अन्य। हिन्दी में उक्ति है-वही ढाक के तीन पात।

वृक्ष-रूप में व्याख्या-गीता में वेद को समझाने के लिये वृक्ष-रूप में व्याख्या है ।मूल स्रोत वृक्ष के मूल जैसा है, उसे ऊपर कहा गया है। उससे निर्माण की विभिन्न दिशायें उसकी शाखायें हैं। निर्माण का परिणाम वृक्ष के फल जैसा है, अतः दोनों को फल ही कहते हैं। मूल से शाखा, पत्र (फल) का निर्माण तथा उसमें पुनः लय होने का क्रम सदा चलता रहता है, अतःइसे अविनाशी अश्वत्थ या अव्यय पुरुष कहा जाता है-

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्(गीता १५/१)

अव्यय का अर्थ है, व्यय(खर्च) नहीं होना, मूल स्रोतसे जितना कम होता है, वह पुरुष को बनाने में लग जाता है, अतःयोग बराबर रहता है। भौतिक विज्ञान में ५ प्रकार के संरक्षण सिद्धान्त हैं-मात्रा,ऊर्ज्जा,(या सापेक्षवाद में दोनों का योग), आवेग, कोणीय आवेग,परमाणु के मूल कणों का स्पिन। अव्यय पुरुष का शरीर दारु (काष्ठ) का कहा गाता है। चारो ओर फैला हुआ पदार्थ समुद्र है, उससे अन्तःसंज्ञ वृक्ष अन्न का निर्माण करते हैं। इन्ही वृक्षों के फल आदि से मनुष्य का शरीर बनता है। अव्यय पुरुष क्षर से परे तथा अक्षर से भी श्रेष्ठ है, अतःउत्तम पुरुष (या पुरुषोत्तम=जगन्नाथ) कहा जाता है -

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।।(गीता १५/१७)

लोक तथ वेद(ज्ञान-विज्ञान) दोनों भाषायें एक साथ प्रचलित रहती हैं, अतः दोनों का वर्त्तमान काल में वर्णन है। पुरुषोत्तम प्रथित(first) है, अतः एक का क्रम एकीय नहीं, प्रथम होता है, और एक को (मर्यादा-पुरुषोत्तम) राम कहा जाता है। समुद्र (वातावरण) से वृक्ष के माध्यम से अव्यय मानव शरीर बनता है, अतःजगन्नाथ का शरीर भी समुद्र से बह कर आये काष्ठ से बनता है-

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्।
तदारभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम्।(ऋक्१०/१५५/३)

अर्थात् जो अपौरुषेय दारू(काष्ठ) समुद्र से बह कर आया उसकी आराधना कर दुर्गम संसार को पार करो।

विश्व-वृक्ष के ज्योतिषीय और आध्यात्मिक रूपों का सम्बन्ध आगे दिया जा रहा है। आधिभौतिक रूप कई व्यक्ति-रूपों का समन्वय है।

विश्व-वृक्ष

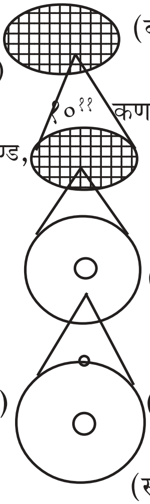

मण्डल	**रूप**	**देवता**	**माहेश्वर-सूत्र के वर्ण** स्वर	सवर्ण अन्तःस्थ	**शरीर के चक्र** सौन्दर्य लहरी ९का सृष्टि-क्रम
१.स्वायम्भुव (आकाश-गङ्गा समूह के रूप में सम्पूर्ण विश्व)	$१०^{११}$ कण	ब्रह्मा (बृहत्)	अ	ह	विशुद्धि (कण्ठ-मूल)
२.परमेष्ठी (आकाश-गङ्गा,ब्रह्माण्ड, कूर्म-चक्र,गोलोक)	$१०^{११}$ कण	विष्णु (बान्धना,वेष्टन)	इ	य	अनाहत (हृदय)
३.सौर (सूर्य का प्रभाव-क्षेत्र)		इन्द्र (विकिरण)	उ	व	स्वाधिष्ठान (नाभि)
४.चान्द्र (चन्द्र-कक्षा का गोला)		सोम (विरल पदार्थ)	ऋ	र	मणिपूर (मेरुदण्ड का मूल)
५.भू (पृथ्वी)		अग्नि (सघन पदार्थ)	लृ	ल	मूलाधार (मल-मूत्र द्वारों के बीच)

टिप्पणी -(१) विश्व के सभी ५ मण्डल निराकार के सघन रूप होने के कारण अग्नि(सृष्टि की अग्र या प्रथम क्रिया) हैं, सबसे सघन मण्डल पृथ्वी विशेष रूप से अग्नि है। इन ५ अग्नियों में प्रथम २ का अनुभव नहीं होता, अन्तिम ३ का मिला-जुला प्रभाव होता है-अतःइन्हें नाचिकेत (चिकेत=अलग-अलग, स्पष्ट) अग्नि कहा जाता है-ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके,गुहां प्रविष्टौ परमे <u>परार्द्धे</u> (परम-गुहा परमेष्ठी की परिधि परा=$१०^{१७}$ योजन का आधा है)

छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति, <u>पञ्चाग्नयो</u> ये च <u>त्रिणाचिकेताः</u> (कठ उ.१/३/१)

इनके मिलित प्रभाव से शान्ति है, अतः ये शिव के ३ नेत्र हैं। प्रति माङ्गलिक कार्य में इन तीन नेत्रों का स्मरण किया जाता है-

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ, दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः(मुण्डक उप.२/१/४)

शिव=उ+ऋ+लृ=हुलहुली(भाषा में होली)। अंग्रेजी में भी होली (holy) =पवित्र

अन्तिम पद होने के कारण पृथ्वी पद(पद्भ्यां भूमिः-पुरुष-सूक्त-१३)या पद्म है

तस्मिन्हि रणमये पद्मे बहु योजन विस्तृते। सर्व तेजो गुणमये पार्थिवैर्लक्षणैर्वृते।

तच्च पद्मं पुरा भूतं पृथिवी रूपमुत्तमम्।
नारायण समुद्भूतं प्रवदन्ति महर्षयः(पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड ४०/२-३)
पुष्कर-पर्ण और अग्नि-त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत(ऋक् ६/१६/१३)।
(२) अग्नि सघन तथा सोम विरल है। श्रद्धा द्वारा अग्नि सोम होता है। श्रद्धा अर्थात् सरल रेखा(श्रवा या श्रत्) में धारण (प्रसारण) से अग्नि फैलकर सोम हो जाता है- श्रद्धत्स्व सोम्येति(छान्दोग्य उ.६/१२/३)।
सोममध्ये हुताशनः(अग्निः)-(मैत्रायणी उप.६/३८)।
सघन पदार्थ के रूप में पृथ्वी अग्नि है, यह चन्द्र-कक्षा के केन्द्र में है। सूर्य भी सघन तेज या ऊर्जा केन्द्र के रूप में अग्नि है, उसके चारो तरफ सोम के कई स्तर हैं-शतरुद्री (१०० सूर्य-व्यास दूर पृथ्वी),सहस्र-रुद्री (शनि-कक्षा),लक्ष-रुद्री (मैत्रेय-मण्डल)
शतशीर्ष रुद्रशमनीयम्,ह वैतच्छतरुद्रियमित्याचक्षते परोऽक्षम्(शत.ब्रा.९/१/१/७)
शत योजने ह वा एष (आदित्यः) इतस्तपति(कौषीतकि ब्रा.८/३)
सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मयः(जैमिनीय उप.ब्रा.१/४४/५)
असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः।
ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशो हेड ईमहे(वा.यजु.१६/६)
भूमेर्योजन लक्षे तु सौरं मैत्रेय मण्डलम्।
लक्षाद्दिवाकरस्यापि मण्डलः शशिनः स्थितम्(विष्णु पु.२/७/५)
सूर्य-मण्डल की सीमा कोटि (=सीमा,या १०० लक्ष) व्यास दूरी पर है। इसके भीतर विष्णु के ३ पद हैं,मित्र-क्षेत्र में रुद्र के ३ स्तर।उसके बाहर वरुण-क्षेत्र है जिसमें महर्लोक का सोम है-
महत्तत्सोमो महिषश्चकार अपां यद्गर्भे अवृणीत् देवम्(ऋक्९/१७/४१)
सूर्य किरणों की अन्तिम सीमा ब्रह्माण्ड है-यह विष्णु का परम पद है और सूर्यो का समूह (सूरयः) है। मनुष्य का मस्तिष्क उसका प्रतिरूप होने के कारण विद्वानों को भी सूरयः कहा जाता है-
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् (ऋक् १/२२/१७)
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः (ऋक्१/२२/२०)
(३) व्याकरण तथा तन्त्र (सृष्टि) के आधार रूप माहेश्वर-सूत्र में १४ सूत्र (१४ बार डमरू-वादन या १४ भुवन) तथा ४३ अक्षर हैं। प्रथम २ सूत्रों के अक्षर ५ मूल स्वर हैं-अइउण्। ऋलृक्।(अन्तिम हलन्त वर्ण सूत्र-समाप्ति का चिह्न मात्र है)

स्वर वर्ण स्वः या आकाश के प्रतीक या स्वरूप हैं। उनके सवर्ण (एक ही स्थान से उच्चारण) अन्तःस्थ वर्ण शरीर के आन्तरिक विश्व के चक्रों के बीज मन्त्र हैं-हयवरट्। लण्। इन बीज-मन्त्रों के क्रम में मणिपूर-स्वाधिष्ठान का क्रम बदल गया है। साधना- क्रम में मेरुदण्ड का मूल स्वाधिष्ठान है, उसके उपर मणिपूर है। सौन्दर्य-लहरी(शङ्कराचार्य) श्लोक ९ में है-

महीं मूलाधारे कमपिमणिपूरे हुतवहं,स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपिभित्वा कुलपथं,सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।

(४) इन पर्वों की माप ७ प्रकार के योजनों में वेद पुराणों में दी गयी है। ७ योजन तथा ७ युग अस्य वामीय-सूक्त के अनुसार हैं-

सप्त युञ्जन्ति रथमेक चक्रो एको अश्वो वहति सप्तनामा(ऋक् १/१६४/२)

मनुष्य से आरम्भ कर पृथ्वी, सौर-मण्डल, ब्रह्माण्ड, स्वयम्भू-क्रमशः कोटि-कोटि गुणा बड़े हैं। पृथ्वी के लिये सौर- मण्डल आकाश है, पुनः उसके लिये ब्रह्माण्ड आकाश है, ब्रह्माण्ड के लिये स्वयम्भू आकाश है। इन आकाशों के लिये पृथ्वी, सौर-मण्डल, ब्रह्माण्ड भूमि हैं। तीनों भूमि सूर्य-चन्द्र से प्रकाशित हैं-दोनों से प्रकाशित पृथ्वी, सूर्य से प्रकाशित सौर-मण्डल, तथा सूर्य-प्रकाश की अन्तिम सीमा ब्रह्माण्ड है-

रवि चन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते। स समुद्र सरिच्छैला पृथिवी तावती स्मृता।
यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तार परिमण्डलात्।
नभस्तावत्प्रमाणं वै व्यास मण्डलतो द्विज।।(विष्णु पु.२/७/३-४)

तीन भूमि को ३ माता तथा आकाश को ३ पिता कहा गया है (ऋक्१/१६४/१०,२/२७/८)। प्रत्येक पृथ्वी के बाहर वायु (गतिशील पदार्थ) के क्रमशः १० गुणा बड़े ७ आवरण हैं, अतः अन्तिम आवरण कोटि गुणा होगा। $१०^७=२^{२४}$, अतः कोटि गुणा का अर्थ है, २४ बार २ गुणा करना। अतः२४ अक्षरों का छन्द गायत्री ही सभी लोकों की माप है -

इमे वै लोका गायत्री (ताण्ड्य महाब्राह्मण १५/१०/९, १६/१४/४)।

मनुष्य से आरम्भ कर गायत्री ($२^{२४}$) से गुणा करने पर पृथ्वी(गायत्री), सौर-मण्डल (सावित्री), ब्रह्माण्ड (सरस्वती), स्वयम्भू(नियती या संयती) का आकार होता है(आपस्तम्ब गृह्य सूत्र परिशिष्ट)।

(५) स्वयम्भू अति विरल होने के कारण आकाश जैसा है। गति का आरम्भ यज्ञ या

परमेष्ठी मण्डल से है। सौरमण्डल का केन्द्र सूर्य तेज या प्रकाश के स्रोत के रूप में इन्द्र है, उसी से सृष्टि चल रही है, अतः वह जगत् की आत्मा है। सौर तेज चन्द्र के पास आकर मन्द तथा विरल हो जाता है, अतः यह सोम है। सौर मण्डल में सबसे घनीभूत पृथ्वी है, अतः यह अग्नि हुआ। इन ५ पर्वों का आरम्भ २ अव्यक्त स्तरों से हुआ। सबका मूल ब्रह्म है जो रस-रूप है, अर्थात् हर स्थान, काल, तथा दिशा में समान है। उसकी सृष्टि अनेक प्रकार की हो सकती है, प्रति भेद एक बल्शा या शाखा है, अतः इसे सहस्र-बल्शा का कहा जाता है। सृष्टि करने की इच्छा शून्य-रूप रस से हुयी-इस मन को श्वोवसीयस(शून्य में निवास करनेवाला) मन कहा जाता है। उत्पत्ति-क्रम है-असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत।..यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।(तैत्तिरीय उ.२/७/१)। तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः।। आकाशाद्वायुः।वायोरग्निः।अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः....(तैत्तिरीय उ.२/१/३)।
मनुष्य शरीर में इसकी प्रतिमा सहस्रार तथा श्वोवसीयस-मन का आज्ञा-चक्र हैं।

अक्षर-पुरुष-अक्षर पुरुष क्रिया या यज्ञ रूप है। विश्व के प्रत्येक पर्व से मानव शरीर का एक कोष या एक आत्मा का गतिशील सम्बन्ध है।

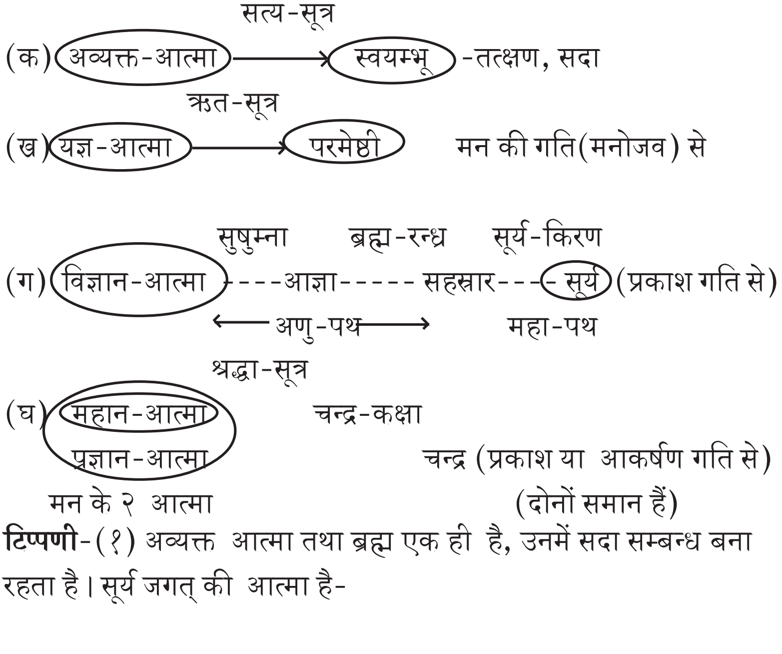

टिप्पणी-(१) अव्यक्त आत्मा तथा ब्रह्म एक ही है, उनमें सदा सम्बन्ध बना रहता है। सूर्य जगत् की आत्मा है-

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च (वाज.यजु.७/२२)

सूर्य का अंश विज्ञान आत्मा है, जो बुद्धि का नियन्त्रक है।अत: सूर्य को आत्मा-कारक भी कहते हैं। विज्ञान-आत्मा का निवास मुख्यत: हृदय में है। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में हृदय से सुषुम्ना द्वारा आज्ञा-चक्र तक तथा उसके बाद ब्रह्म-रन्ध्र से सहस्रार तक का सम्बन्ध अणु-पथ कहलाता है। उसके बाद सूर्य तक का सम्बन्ध महा-पथ है जो किरण द्वारा होता है-

तदेते श्लोका भवन्ति-अणु: पन्था वितत: पुराणो मां स्पृष्टोऽनुवित्तो मयैव।
तेन धीरा अपियन्ति ब्रह्मविद: स्वर्गं लोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ता: ॥८॥
तस्मिञ्छुक्लमुत नीलमाहु: पिङ्गलं हरितं लोहितं च।
एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तैजसश्च॥
(बृहदारण्यक उप.४/४/८,९)

अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ता: पिङ्गलाणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्य: पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहित: ॥१॥ तद्यथा महापथ आतत उभौ ग्रामौ गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादित्यात्प्रतायन्ते ता आसु नाडीषु सृप्ता आभ्यो नाड़ीभ्य: प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये सृप्ता: ॥२॥....अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रामते स ओमिति वा होद्वामीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषा प्रपदनं निरोधोऽवदुषाम्॥५॥(छान्दोग्य उ.८/६/१,२,५)

ब्रह्म-सूत्र(४/२/१७-२०)-

१-तदोकोऽग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीत: शताधिकया।

२-रश्म्यनुसारी। ३-निशि नेति चेन्न सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वाद्दर्शयति च।

४-अतश्चायनेऽपि दक्षिणे।

मैत्रायणी उपनिषद् (६/३०) भी द्रष्टव्य।

प्रकाश-गति से सूर्य के साथ सम्बन्ध ८ मिनट में जाकर उतने ही समय में वापस आयेगा। अत: यह एक मुहूर्त्त (४८ मिनट) में ३ बार आता-जाता है-

त्रिर्ह वा एष (मघवा-इन्द्र:-आदित्य:-सौरप्राण:) एतस्या मुहूर्त्तस्येमां पृथिवीं समन्त: पर्य्येति(जैमिनीय ब्रा.उप.१/४४/९)

रूपं रूपं मघवा बोभवीति माया:कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम्।

त्रिर्यद्दिवः परिमुहूर्त्त मागात् स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ।।(ऋक् ३/५३/८)
चन्द्र तक जाकर लौटने में प्रकाश को प्रायः १.७ सेकण्ड लगता है। इसे प्रायः निमेष-मात्र कहा गया है।

(२) **मन के स्तर**-मन की उत्पत्ति शून्य-रूप रस से हुयी, जिसे श्वोवसीयस् मन कहा गया है। उसका प्रथम रूप है-स्वायम्भुव मन जो अनन्त है, किन्तु दृश्य जगत् में सौ अरब($१०^{११}$) कण रूप ब्रह्माण्ड हैं, अतः सौ अरब को खर्व(चूर्ण रूप) कहा जाता है। इसका वेद या ज्ञान अनन्त कहा गया है। दृश्य जगत् की प्रतिमा हमारा ब्रह्माण्ड है, जिसके खर्व कण सूर्य समान तारा हैं। इन दोनों की प्रतिमा मनुष्य का मस्तिष्क है, जिसमें खर्व कोषिका(neuron) हैं। इसके मूल ३ प्रकार के नक्षत्र हैं-ब्रह्माण्डों के समूह के रूप में स्वायम्भुव, तारा समूह के रूप में ब्रह्माण्ड, तथा सौर मण्डल के पिण्ड। नक्षत्रों की संख्या शतपथ ब्राह्मणमें है-

एभ्यो लोमगर्त्तेभ्य ऊर्ध्वानि ज्योतींष्यान्। तद्यानि तानि ज्योतींषिः एतानि तानि नक्षत्राणि। यावन्त्येतानि नक्षत्राणि तावन्तो लोमगर्त्ताः।(शतपथ ब्रा.१०/४/४/२)

पुरुषो वै सम्वत्सरः ... ।।१।।

दश वै सहस्राण्याष्टौ च शतानि सम्वत्सरस्य मुहूर्त्ताः। यावन्तो मुहूर्त्तास्तावन्ति पञ्चदशकृत्त्वः क्षिप्राणि। यावन्ति क्षिप्राणि, तावन्ति पञ्चदशकृत्त्वः एतर्हीणि। यावन्त्येतर्हीणि, तावन्ति पञ्चदशकृत्त्व इदानीनि। यावन्तीदानीनि,तावन्तः पञ्चदशकृत्त्वः प्राणाः। यावन्तः प्राणाः, तावन्तोऽनाः। यावन्तोऽनाः, तावन्तो निमेषाः।यावन्तो निमेषाः, तावन्तो लोमगर्त्ताः।यावन्तो लोमगर्त्ताः, तावन्ति स्वेदायनानि। यावन्ति स्वेदायनानि, तावन्त एते स्तोका वर्षन्ति।(शतपथ ब्रा.१२/३/२/५)

अर्थात् ,१ सम्वत्सर में जितने लोमगर्त्त हैं,उतने ही पुरुष में होंगे। पुरुष भूमि का १० गुणा है(पुरुष-सूक्त-१,स भूमिं विश्वतो वृत्त्वात्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम्)। मुहूर्त्त को क्रमशः १५ से विभाजित करने पर क्षिप्र,एतर्हि, इदम्, प्राण,अन,निमेष, लोमगर्त्त, स्वेदायन होते हैं। अतः,लोमगर्त्त=मुहूर्त्त x $१५^{-७}$=१ सेकण्ड का प्रायः ७५,००० भाग। १ सम्वत्सर में प्रायः $१०^{१२}$ लोमगर्त्त हैं। अतः ब्रह्माण्ड में $१०^{११}$ नक्षत्र होंगे।लोमगर्त्त सेकण्ड का ११,२०,००० भाग है जिसमें प्रकाश

किरण २७० मीटर जाता है,वर्षा की बून्द प्राय: उतनी दूरी तक अपना आकार स्थिर रखती हैं।
(३) सौर-मण्डल में ६०,००० बालखिल्य हैं, जिनका आकार अङ्गुष्ठ (पृथ्वी रूप पुरुष का ९६ भाग,अर्थात् १३५ कि.मी.व्यास)के बराबर है। यूरेनस तक क्रतु अर्थात् यज्ञ है(भागवत पुराण, स्कन्ध ५), जो १०० कोटि योजन का अलोक भाग है। इसका आधा ५० कोटि योजन का लोक(प्रकाशित) भाग या प्रियव्रत है। इस नक्षत्र-मण्डल की दूरी सूर्य तुलना में ६० गुणा है(सूर्य-सिद्धान्त, १२/८०)। इन नक्षत्रों का प्रभाव क्षेत्र ही मन है। अलग-अलग कण मन के परमाणु हैं, उनका समुद्र सरस्वती है। उस मानस-सरोवर में चन्द्र के परिभ्रमण से लहर उठती है, वह चित्त की वृत्ति है। अत: पुरुष-सूक्त में-चन्द्रमा मनसो जात:-कहा गया है।
(४) सूर्य तथा चन्द्र से सतत् सम्पर्क द्वारा आत्मा (बुद्धि) तथा मन(चित्त-वृत्ति) का नियन्त्रण होता है। इसमें अन्य ग्रहों के प्रभाव से सूक्ष्म परिवर्त्तन होते हैं- यह सूर्य से उसके सहस्र व्यास दूर तक(शनि-कक्षा) ही अनुभव-गम्य है। यह सहस्राक्ष (इन्द्र) क्षेत्र का आरम्भ है -अक्ष=चक्षु,सहस्राक्ष=इन्द्र-चक्षो: सूर्यो अजायत (पुरुष-सूक्त)। वहीं तक का प्रभाव इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होगा।
(५) ग्रहों का प्रभाव अन्य चर-अचर प्राणियों पर भी पड़ता है, पुन: उनका हमारे ऊपर। भौतिक वातावरण के परिवर्त्तन माध्यम से भी ग्रहों का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है।

क्षर-पुरुष-चरक-संहिता(शारीर-स्थान ५/२) के पूर्व उद्धृत वाक्य के अनुसार लोक के जितने भाग हैं, पुरुष के भी उतने ही भाग होगें। शरीर के ५ कोष विश्व के ५ पर्वो के समतुल्य हैं। चरक-संहिता,शारीर-स्थान, अध्याय ५ के अनुसार-
लोक की ६ धातु-१.आत्मा(अव्यक्त), २.आकाश, ३.वायु, ४.तेज, ५.जल, ६.पृथिवी। मनुष्य की ६ धातु-१. आत्मा(अव्यक्त), २.छिद्र-समूह(आकाश), ३.प्राण(वायु), ४.शारीरिक उष्णता(तेज), ५.क्लेद या गीलापन(जल), ६.पुरुष-मूर्त्ति या शरीर(पृथिवी)।

अन्य-	लोक	पुरुष
१.	प्रजापति	मन
२.	इन्द्र	अहंकार

३. आदित्य	आदान(रस ग्रहण करने की शक्ति)
४. रुद्र	रोष
५. सोम	प्रसाद(प्रसन्नता)
६. वसु	सुख
७. अश्विनी-कुमार	कान्ति
८. मरुद्गण	उत्साह
९. विश्वेदेव	इन्द्रिय और उनके विषय
१०. अन्धकार	मोह
११. ज्योति	ज्ञान
१२. चतुर्युग	बाल्य-यौवन-वानप्रस्थ-वृद्ध.........आदि।

शरीर का स्थूल रूप जिस स्रोत से निर्मित होता है, उसी में मिल जाता है। पार्थिव शरीर अग्नि-जल-पृथ्वी-वायु से संस्कार होकर पृथ्वी में मिल जाता है। प्रेत शरीर(प्रज्ञान+महान) चन्द्र-मण्डल में जाता है -विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति। वहां तक की गति के लिया मासिक श्राद्ध होता है। महान-आत्मा सौर मण्डल को पार करता है-

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य-मण्डल भेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तो वा रणे चाभिमुखं हतम्(विदुर-गीता,शुक्र-नीति४/७/३०२)

सौर मण्हल सौर वायु(प्रकाश तथा ऊर्ज्जा का रैखिक प्रवाह=गोजा-ऋक्१/१०२/६,या ईषा-ईषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ:-यजु:१/१) के दबाव से धीरे-धीरे ६० वर्षों में पार होता है-आदित्याश्च ह वा आङ्गिरसश्च स्वर्गे लोकेऽस्पर्द्धन्त-वयं पूर्वे एष्यामो वयमिति। ते हाऽऽदित्या:पूर्वे स्वर्गं लोकं जग्मु:,पश्चेवाङ्गिरस:,षष्ठ्यां वा वर्षेषु।(ऐतरेय ब्राह्मण १८/३/१७)

आदित्याश्चाङ्गिरसश्च सुवर्गे लोकेऽस्पर्द्धन्त, वयं पूर्वे सुवर्गं लोकमिष्याम:,वयं पूर्वे इति। त आदित्या एतं पञ्चहोतारमपश्यन्। तं पुरा प्रातरनुवाकादाग्नीध्रेऽजुहवु:। ततो वै ते पूर्वे सुवर्गं लोकमायन्। य: सुवर्गकाम: स्यात्, स पञ्चहोतारं पुरा प्रारनुवाकादाग्नीध्रेऽजुहुयात्। सम्वत्सरो वै पञ्चहोता, सम्वत्सर:, सुवर्गो लोक:।(तैत्तिरीय ब्राह्मण २/२/३/५-६)

यहां ६० वर्षों के चक्र को आङ्गिरस कहा गया है, वृहस्पति ही आङ्गिरस है, अत: यह ज्योतिष का गुरु-वर्ष चक्र है। इसके ५ होता १२ वर्षीय गुरु परिक्रमा-काल

है। ५-५ वर्षों के भी १२ युग होते हैं।

सात लोक- विश्व के ५ पर्वों में ४ मण्डल हैं-चान्द्र मण्डल पृथ्वी का ही प्रभाव-क्षेत्र है। ४ मण्डल और उनके बीच के ३ अन्तरिक्ष-ये ७ लोक कहलाते हैं। ७ लोक ३-३ लोकों में बंटे हुए हैं-बीच के दो लोक दो त्रिलोकियों में हैं।भू मण्डल भू लोक है, वह अपने आकाश सौर मण्डल में है, जो उसका स्वः लोक हुआ। सौर मण्डल रूपी भू-लोक के लिये उसका आकाश परमेष्ठी स्वः हुआ जिसे जनः लोक कहा जाता है। परमेष्ठी रूप भू के लिये स्वयम्भू स्वः हुआ। इस प्रकार इनकी सारणी है-

	१	२	३	४	५
मण्डल-	भू	(चान्द्र)	सौर	परमेष्ठी	स्वयम्भू

	१	२	३	४	५	६	७
लोक	भू	भुवः	स्वः	महः	जनः	तपः	सत्य

त्रिलोकी	रोदसी	क्रन्दसी	संयती
समुद्र	अर्णव	सरस्वान्	नभस्वान्
धाम	अवम	मध्यम	परम
देवता	शिव	विष्णु	ब्रह्मा
देवी	महाकाली	महालक्ष्मी	महासरस्वती

५ मण्डलों के बाद मनुष्य ६ठा विश्व है। ७ छोटे विश्व-

	१	२	३	४	५	६	७
विश्व-	कलिल	जीव	कुण्डलिनी	जगत्	देव-दानव	पितर	ऋषि
	cell	atom	nucleus	particles	quarks	prototype	string
आकार-	10^{-5}m,	10^{-10}m,	10^{-15}m,	10^{-20}m,	10^{-25}m,	10^{-30}m,	10^{-35}m

टिप्पणी-(१)-वालाग्र(केश का अग्रभाग) भी एक विश्व है-

अनाद्यन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेक रूपम्।

विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः(श्वेताश्वतर उ.५/१३)

इसका आकार वालाग्र है-

वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातरूपं वरेण्यम्।(अथर्वशिर उ.५)

इसीसे मनुष्य का जन्म होता है, अतः इसे जातरूप कहा गया है। गर्भ में आते ही यह धातुओं का कलन(collection) आरम्भ करता है, अतः यह कलिल (cell)

है-तत्र प्रथमे मासि कललं जायते(सुश्रुत शारीरस्थान ३/९)
स सर्वगुणवान् गर्भत्वमाप्तः प्रथमे मासि सम्मूर्छितः
सर्व धातु कलनीकृतः .....अव्यक्त विग्रहः .....(चरक शारीरस्थान ४/९)
बृहत्संहिता (५६/२) में वालाग्र का आकार दिया है-
परमाणु रजो-वालाग्र-लिक्षा-यूकं यवोऽङ्गुलं चेति अष्ट गुणानि यथोच्चरन् अङ्गुलमेकं भवति संख्या।
अर्थात् अङ्गुल को ८ से भाग देने पर क्रमशः यव, यूक, लिक्षा, वालाग्र होते हैं।
२४ अङ्गुल = हस्त = ४५ से.मी.।
अतः वालाग्र=४५/(२४ x ८^{४})=४ x १०$^{-४}$ से.मी.=४ माइक्रोन।
(२) वालाग्र और उससे छोटे विश्व क्रमशः १ लाख भाग छोटे हैं-
वालाग्र शतसाहस्रं तस्य भागस्य भागिनः।
तस्य भागस्य भागार्धं तत्क्षये तु निरञ्जनम्।।(ध्यानबिन्दु.उप.४)
छोटे विश्व ऋषि से आम्भ होकर,पितर, देव-दानव होते हैं। दानव से कुछ नहीं होता,देव से जगत् कण ३ प्रकार के हैं-चर(गतिशील हल्के=Lepton), स्थाणु(स्थिर भारी= Baryon), अनुपूर्वशः(आगे-पीछे,जोड़नेवाले=Meson)-
ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देव दानवाः।
देवेभ्यश्च जगत्सर्वं चरं स्थण्वनुपूर्वशः।।(मनुस्मृति ३/२०१)
(३) कलिल से छोटा विश्व जीव है, उसका आकार अणु के बराबर है तथा यह कल्प या रासायनिक क्रिया में नष्ट नहीं होता-
वालाग्र शत भागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।।(श्वेताश्वतर उ.५/९)
(४) कुण्डलिनी का आकार वालाग्र का कोटि भाग है। उसके भीतर दो १०-१० भाग छोटे आवरण हैं। भीतरी आवरण वालाग्र का १०० कोटि भाग या परमाणु की नाभि(nuceus) के बराबर है-एतस्या मध्यदेशे विलसति परमाऽपूर्वानिर्वाणशक्तिः कोट्यादित्य प्रकाशां त्रिभुवनजननी कोटिभागैकरूपा। केशाग्रस्यातिगुह्या निरवधि विलसत ...।९।
अत्रास्ते शिशु-सूर्यसोदरकला चन्द्रस्य सा षोडशी शुद्धा नीरजसूक्ष्मतन्तु शतधा भागैकरूपा परा।७।(षट्चक्रनिरूपण,७)

(५) कुण्डलिनी तक की माप होती है। उससे छोटे कण प्रकाश-पदार्थ दोनों रूप में हैं। मापदण्ड का सबसे छोटा रूप वही है अत: उसकी माप नहीं है। किन्तु परमाणु के मूलकण तथा उनके स्रोत क्वार्क का सिद्धान्त और प्रयोग द्वारा ज्ञान है। उससे छोटे दो स्तरों-पितर तथा ऋषि का किसी प्रकार का ज्ञान सम्भव नहीं है। अत: इन्हें असत् कहा जाता है। केवल सत् गिनने पर इन विश्वों की शक्ति ५ प्राण हैं, असत् मिलाने पर ७ प्राण हैं-

पञ्चस्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां <u>पञ्चप्राण</u>ोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्।

(श्वेताश्वतर उ. १/५)

<u>सप्त प्रणा:</u> प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिष: समिध: सप्त होमा:।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति <u>प्राणा गुहाशया निहिता: सप्त सप्त</u> ।।

(मुण्डक उ. २/१/८)

(६) ऋषि असत् प्राण हैं जिनसे सृष्टि हुयी है। ये श्रम और तप से खींचते हैं, अत: ऋषि (रस्सी) कहलाते हैं-

असद्वाऽइदमग्रऽआसीत्। तदाहु:-किं तदासीदिति। ऋषयो वाव तेऽग्रेऽ सदासीत्। तदाहु:-के ते ऋषय इति। ते यत्पुराऽऽस्मात्सर्वस्मादिदमिच्छन्त: श्रमेण तपसारिषन्-तस्मादृषय:।(शतपथ ब्रा.६/१/१/१)

(७) मनुष्य के आकार(लम्बाई चौड़ाई का औसत) १.३ मीटर का कोटि गुणा करने पर १३,००० कि.मीटर पृथ्वी का व्यास है। उसका लाख भाग $१०^{-५}$ मी. कलिल या शरीर कोष का आकार है। उसका लाख भाग परमाणु $१०^{-१०}$ मी. तथा परमाणु का लाख भाग उसकी नाभि है। मनुष्य आकार का ७ बार लाख भाग करने पर ऋषि का आकार $१.३x१०^{-३५}$ मीटर है। इसे क्वाण्टम मेकानिक्स में सबसे छोटी दूरी प्लांक दूरी कहा जाता है। यह स्ट्रिंग सिद्धान्त के सभी ५ वैकल्पिक वर्णनों का आधार है। ऋषि की परिभाषा तथा माप दोनों आधुनिक मान्यताओं के आधार हैं।

(८) पितर के समान किसी पदार्थ का वर्णन नहीं है। यह बाद की रचनाओं का आधार होने के कारण पितर (Prototype) कहा जा सकता है। इससे देव-दानव हुए जिनमें केवल देव से सृष्टि हुयी। ३३ देव सौर मण्डल के ३३ धामों के

प्राण हैं, जिनकी चर्चा बाद में होगी। प्रत्येक क्षेत्र में ३ असुर होने से इनकी संख्या ९९ है। यह तम या बाधक होने से इससे सृष्टि नहीं होती। अतः केवल १ पाद या चतुर्थ भाग से ही पूरा विश्व है, तीन पाद बिना निर्माण के स्थिर(अमृत) हैं-

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।३।
त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।४।(पुरुष सूक्त,ऋक् १०/९०,वा यजु.३१, अथर्व १९/६, साम.६१९, तैत्तिरीय आ.३/१२)

-******-

अध्याय-२

देश-काल की माप

१. संख्या का उपयोग-सांख्य-दर्शन विज्ञान की माप का दर्शन है। माप के दो आधार हैं-एक संख्या तथा माप की इकाई। उदाहरणार्थ, ५ मिनट में ५ संख्या है तथा मिनट माप की इकाई है। वेद के संख्यावाचक शब्द सांख्य के अनुसार वर्गीकरण हैं या किसी पदार्थ की माप हैं। इनका अर्थ समझने के लिये माप की किन इकाइयों का प्रयोग हुआ है, यह जानना जरूरी है। सम्भवत: सभी प्रकार की इकाइयों का प्रयोग है, किन्तु उनका रहस्य समझाने वाले शास्त्र उपलब्ध नहीं हैं। प्राय: प्रति ऋचा में छोटी-बड़ी कई प्रकार की संख्याओं का प्रयोग है, वह माप की शुद्धता दिखाते हैं, उसे बिना समझे केवल कल्पना पर आधारित मानना अपनी अज्ञानता को वेद और ऋषियों पर डालना है। यहां सिर्फ देश(लम्बाई) तथा काल(समय) की माप का वर्णन किया जा रहा है जिनके बारे में ज्योतिष ग्रन्थों में चर्चा है किन्तु काफी भ्रम है। इसका कारण है कि कई प्रकार की इकाइयों का व्यवहार हुआ है, किन्तु सबको एक ही मानकर व्याख्या की जाती है। यदि एक से अधिक माप-इकाई की चर्चा की जाय तो कहा जाता है कि वेद में सिर्फ भ्रम और कल्पना है। साहित्य के अध्येता यह जानते ही नहीं हैं, विज्ञान के छात्र भी भूल जाते हैं कि आधुनिक विज्ञान में भी एक ही माप के लिये कई सुविधावादी इकाइयां हैं जिनकी परिभाषा बदलती रहती है। उनकी तुलना में वेद में माप की इकाइयों का ज्यादा तर्कसंगत आधार है। तुलना के लिये भौतिक विज्ञान की आधुनिक इकाइयों की भी चर्चा की गयी है। वेद में ७ प्रकार के युग तथा ७ योजनों का उल्लेख है। युग तथा योजन दोनों युज् धातु से बने हैं, जो कि वेद में ७ प्रकार के कहे गये हैं-

सप्त युञ्जन्ति रथमेक चक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा(ऋक् सं.१/१६४/२)।

काल के ९ मान हैं क्योंकि सृष्टि के ९ सर्ग पुराणों में वर्णित हैं, उनके अनुसार सूर्य सिद्धान्त में ९ कालमान हैं । वेद में भी ९ द्वारा सृष्टि कही गयी है-

नवो नवो भवति जायमान:(ऋक् १०/८५/१९,अथर्व७/८१/२,१४/१/२४; तै.सं.२/३/५/३,४/१४/१)

अथर्व वेद के दो काल-सूक्तों (१९/५३,५४) में १०+५ सूक्त हैं। वहां ७ रश्मि

७ चक्र, ७ अश्वों का अर्थ ७ युग हैं-

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ।।१ ।।
सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नभीरमृतं न्वक्षः।
स इम विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ।।२ ।।
पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।..आदि।

२. भौतिक विज्ञान की माप पद्धति - परिभाषायें -

राशि-किसी घटना, वस्तु या आकृति के गुण को राशि कहा जाता है । विशेष रूप से उनके परिभाषित या माप योग्य गुण हैं । जैसे पदार्थ की मात्रा या विद्युत् आवेश राशि हैं । चन्द्रमा की मात्रा या प्रोटोन का आवेश की माप राशि की माप है । ज्योतिष में वृत्तीय ग्रह पथ पर ३०° अंश का क्षेत्र राशि है ।

भौतिक राशि वह राशि है जिसे विज्ञान और यान्त्रिकी के गणितीय समीकरणों में व्यवहार किया जाता है ।

इकाई वह भौतिक राशि है जो व्यवहार में परिभाषित और स्वीकृत है तथा उसकी तुलना द्वारा उसी प्रकार की अन्य भौतिक राशियों की माप होती है ।

भौतिक राशि की माप एक संख्या तथा इकाई का गुणनफल है । यह संख्या उसका सांख्यिक मान है जो इकाई के व्यवहार पर निर्भर है । जैसे किसी मनुष्य की ऊंचाई १.६७ मीटर, १६७ सेंन्टीमीटर या ५ फुट ६ इंच या १ गज २$^{१/२}$ फुट कही जा सकती है ।

मूल इकाई तथा व्युत्पन्न इकाई - यान्त्रिकी में तीन प्रकार की राशियों के माप के द्वारा सभी इकाइयाँ मापी जा सकती हैं, बाकी राशियों की इकाई इन्हीं के विभिन्न प्रकार के गुणन हैं । व्यवहार में लम्बाई, मात्रा, समय की माप इकाइयों को मूल इकाई मानना सुविधा जनक है, बाकी इकाइयाँ इनके विभिन्न घातों के गुणनफल हैं । १९०१ में जियोर्गी ने प्रमाणित किया कि इनके साथ एक विद्युतीय इकाई (जैसे प्रतिरोध, या धारा के लिए ओम, अम्पियर) मिलाकर सभी विद्युत् चुम्बकीय राशियों की भी माप की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त विद्युत और चुम्बकीय गुणों का सम्बन्ध दिखाने के लिये आकाश के मूलभूत गुण से सम्बद्ध एक इकाई ली जाती है, जैसे प्रकाश की गति, आकाश का माध्यम गुण आदि । अतः सांख्य दर्शन के ५ तन्मात्राओं के समान ५ इकाइयां पर्याप्त होती हैं। व्यवहार में

अनेक प्रकार की इकाइयों का प्रयोग होता है -

(१) प्रामाणिक मापदण्ड सब जगह सब समय सुलभ और स्थायी हो ।

(२) माप की पद्धति सुलभ और सूक्ष्म हो ।

(३) अलग प्रकार के प्रयोगों के लिये अलग परिभाषा और मापदण्ड ।

(४) सहज तुलना के लिये छोटी संख्या का प्रयोग हो... आदि ।

अतः व्यवहार में अन्तारािष्ट्रय संस्था (SI) ने ७ मूल और २ अतिरिक्त इकाइयां स्वीकृत की हैं -

लम्बाई- मीटर, मात्रा - किलोग्राम, समय-सेकण्ड, विद्युत् धारा- अम्पीयर, तापक्रम- के ल्विन या सेल्सियस, पदार्थ की माप- मोल।

अतिरिक्त-कोण-रेडियन, आकाशकोण-स्टेरेडियन।

माप की इकाइयों के बड़े और छोटे मानों के लिये हजार के अनुपात में $१०^{-१८}$ से $१०^{१८}$ तक के उपसर्ग प्रयुक्त होते हैं ।

लम्बाई की इकाइयां - (१) पुरानी इकाइयां - मनुष्य के पद की माप या पद-त्राण (जूता) को फुट कहा गया । फुट - पैर या ३०.४८ सेन्टीमीटर । इसमें १२ इञ्च हैं । ३ फुट का एक गज । गज का अर्थ हाथी या मापदण्ड दोनों होता है । २ गज का फैदम (पुरुष - हाथ ऊपर करने पर उच्चता) २२० गज का फर्लांग ८ फर्लांग का मील होता है ।

(२) सामुद्रिक मील - पृथ्वी की ध्रुवीय परिधि का १ कला कोण अर्थात् ३६० X ६० भाग= १८५२ मीटर या ६०७६.११५ फीट।

(३) मीटर की चार परिभाषायें- १८ वीं शताब्दी में दो परिभाषायें दी गयीं-१ सेकण्ड अर्धचक्र के पेण्डुलम की लम्बाई। यह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के साथ बदलता है। दूसरी परिभाषा है-पृथ्वी के ध्रुवीय परिधि पाद का कोटि भाग। १७९१ में दूसरी परिभाषा फ्रेञ्च विज्ञान अकादमी ने स्वीकृत की -पेरिस से गुजरने वाली याम्योत्तर रेखा पर विषुव से ध्रुव दूरी का कोटि भाग। इसका मापदण्ड १/५ मिली मी. छोटा रह गया, अतः इस छोटे मापदण्ड को ही १८८९ में मीटर कहा गया। १९२७ में पेरिस में रखे प्लैटिनम-इरीडियम छड़ पर ०° ताप पर दो चिह्नों के बीच की दूरी को मीटर कहा गया।१९६० में क्रिप्टन गैस के ८६ भार वाले परमाणु के (२ पी१०) से (५-डी-५) के बीच इलेक्ट्रन स्थानान्तर से उत्पन्न प्रकाश के तरंग- दैर्घ्य का १६,५०,७६३.७३ गुणा दूरी को मीटर कहा गया ।

१९८३ से परिभाषा है - शून्य आकाश में सेकण्ड के २९,९७,९२,४५८ भाग में प्रकाश द्वारा तय की गयी दूरी ।

(४) ज्योतिषीय इकाई -सूर्य केन्द्र से पृथ्वी केन्द्र की मध्यम दूरी

= १.४९६ x $१०^{११}$ मीटर= A

इस दूरी द्वारा जितनी दूरी पर १ सेकण्ड कोण बनता है उसे 'परसेक' कहते हैं । १ परसेक = ३.०८५६ x $१०^{१६}$ मीटर । बड़े माप के लिये किलो ($१०^{३}$) तथा मेगा ($१०^{६}$) परसेक का प्रयोग होता है ।

१ वर्ष में प्रकाश द्वारा तय की गयी दूरी प्रकाश वर्ष है । यह ऋतु वर्ष है । १ प्रकाश वर्ष = ९.४६०५ x $१०^{१५}$ मीटर।

१ परसेक = ३.२६ प्रकाश वर्ष।

समय की माप - सेकण्ड की परिभाषा थी १ मध्यम सौर दिन का ८६,४०० भाग । सौर दिन सूर्य के उच्चतम स्थान पर दुबारा आने का समय है । भारत में व्यावहारिक सौर दिन सूर्योदय से सूर्योदय का काल है । पृथ्वी की कक्षा में कई प्रकार के परिवर्त्तन होते हैं तथा पृथ्वी का धूर्णन भी धीमा हो रहा है, अतः १९०० ई.के सौर वर्ष को प्रमाणिक माना गया था । पृथ्वी के घूर्णन तथा परिभ्रमण में कई अनियमित अन्तरों के कारण १९६७ में नयी परिभाषा स्वीकार की गयी-सीजियम-१३३ अणु के निम्न आधार स्तरों के बीच इलेक्ट्रन परिवर्त्तन से उत्पन्न प्रकाश के कम्पन काल का ९,१९,२६,३१,७७० गुणा समय सेकण्ड है ।

(३) सप्त योजन -

ऋग्वेद के अस्यवामीय सूक्त में 'सप्त युञ्जन्ति' का प्रयोग है । उसी सूक्त में तथा अन्य कई स्थानों पर ७ छन्दों द्वारा वाक् (शब्द या शब्द द्वारा व्याप्त आकाश) की माप का उल्लेख है । युज् या युजिर् (योग अर्थ में- पाणिनि धातुपाठ ७/७) से इस शब्दकी व्युत्पत्ति है । कर्मणि कृत्यल्युटो... (३/३/११३) युजिर्+ल्युट्=योजन जोड़ना । किसी पदार्थ या आकाश के विस्तार को मापदण्ड से जोड़ कर मापा जाता है या प्रकाश गति से तुलना कर मापते हैं, अतः योजन कहा जाता है । युग भी इसी धातु से बना है-युज् + घञ् = युग । अन्य रूप युग्म या युगपत् का अर्थ २ है, युग के ४ पादों के अनुसार युग शब्द ज्योतिष में ४ अर्थ में लिखा जाता है । ७ प्रकार के योजनों के समान ७ प्रकार के युग भी हैं, यह दो काल-चक्रों का

समन्वय है । ९ प्रकार के कालमानों से ७ प्रकार के युग होंगें । अभी ७ प्रकार के योजनों का वर्गीकरण दिया जाता हैं -

१) नर योजन -

गणित ज्योतिष के व्याख्याकारों ने दो प्रकार के योजन की चर्चा की है - आर्यभट योजन तथा भास्कर या सिद्धान्त योजन । आर्यभटीय में पृथ्वी का व्यास १०५० योजन तथा भास्कर २ के सिद्धान्तशिरोमणि या सूर्य सिद्धान्त में १६०० योजन माना गया है । अर्थात् पृथ्वी व्यास का उतना भाग । यह वर्गीकरण भ्रमात्मक है क्योंकि एक ही लेखक भास्कराचार्य ने अपने दो ग्रन्थों में दो प्रकार का योजन व्यवहार किया है । सिद्धान्त शिरोमणि में ५००० योजन की परिधि या १५८१ योजन व्यास पृथ्वी का माना गया है । पृथ्वी व्यास = १२,७५६.२८० कि.मी. सूर्य सिद्धान्त में १६०० योजन है । सूर्य सिद्धान्त का योजन = १२७५६.१८ ÷ १६०० = ७.९७२७ कि.मी. ।

भास्कराचार्य ने ५००० कि.मी. परिधि के लिये १५८१ (१५९१ होना चाहिये) योजन व्यास लिया है ।

लीलावती में ३२,००० हाथ का योजन कहा गया है । यह मनुष्य के काम आनेवाला योजन है, इसके आधार पर खेत, जमीन की माप -जोख की जाती है । इसका मूल आधार अंगुल अपरिभाषित है । २४ अंगुल का हाथ आजकल १८ इञ्च या ४५ से. मी. का माना जाता है । अतः १ अगुंल = ४५ह्न२४ = १.८७५ से. मी. । इससे छोटी इकाई वालाग्र (केश की मोटाई) का व्यवहार है तथा सबसे छोटे दृश्यकण को त्रसरेणु कहा गया है । मान-क्रम में सबसे छोटा मान परमाणु कहा गया है, अथवा परमाणु की माप के लिये प्रयुक्त मान को भी परमाणु कहा है।

वराहमिहिर की वृहत्संहिता के अनुसार-

८ परमाणु = १ रज (मानसार के अनुसार रथरेणु)

८ रज = १ वालाग्र, ८ वालाग्र = १ लिक्षा, ८ लिक्षा = १ यव,

यव (मानसार में ४) = १ अंगुलि (बड़ी),

२४ अंगुलि = १ हस्त (१८ इंच) । अतः वालाग्र=१.८७५÷ $८^{४}$ से.मी.

=४.५७८×$१०^{-४}$ से.मी.,या ४.५ माइक्रोन ।

परमाणु=४.५७८ ×$१०^{-४}$÷$८^{२}$=७.१५३×$१०^{-६}$ से.मी. ।

श्रीपति के अनुसार यह वास्तव में सूर्य प्रकाश में दिखने वाले धूलि कणों का आकार है । यह त्रसरेणु है जिसमें आयुर्वेद के अनुसार ६० अणु हैं ।

अतः अणु का आकार = $१.२ X १०^{-७}$ से.मी.

ललित विस्तर के अनुसार परमाणु रज = अंगुल $X ७^{-१०}$ = $०.६ X १०^{-८}$ से.मी. जो वास्तव में हाइड्रोजन परमाणु की त्रिज्या है ।

तिलोय पन्नति का त्रसरेणु = अंगुल $X ८^{-९}$=$१.४ X १०^{-८}$ से.मी.

एक ही ब्रह्म का आकार बताने के लिये अंगुष्ठ का व्यवहार है ।

पुरुष सूक्त में पुरुष अंगुल के अतिरिक्त भूमि (पृथ्वी, ब्रह्माण्ड, सौर मण्डल आदि मण्डलों) की माप को भी अंगुल कहा गया है-

स भूमिं विश्वतो वृत्त्वात्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम् (१)

भूमि = भू (क से २४ वां अक्षर, २४ भाग या प्रकृति के २४ तत्त्व)+ मि (२५ वां अक्षर, २५ वां भाग या सांख्य का पुरुष तत्त्व)

पृथ्वी के प्रसंग में भू या पृथ्वी की त्रिज्या का २४ भाग करने पर १ भाग वायुमण्डल की उंचाई होगी । पुरुष के सहस्र शीर्ष होने पर २००० आंखें और पैर होंगे । अंगुल माप में यह वायुमण्डल सहित पृथ्वी की परिधि होगी । अतः

भू परिधि = २४/२५ X १००० X २००० X २००० अंगुल

= २४/२५ X १/९६ X ४ X $१०^{९}$ दण्ड = ४ X $१०^{७}$ (४ कोटि) दण्ड। मीटर की मूल परिभाषा के अनुसार पृथ्वी की ध्रुवीय परिधि भी ४ कोटि मीटर है । अतः यहाँ दण्ड = मीटर।

(२) भू योजन -

पृथ्वी की माप के लिये नौटिकल मील की तरह पृथ्वी के व्यास या परिधि के खण्डों के अनुसार योजन का मान है -

सूर्य सिद्धान्त(१/५९) व्यास =१६०० योजन।

पञ्चसद्धातिका(१/१८)-परिधि=३२०० योजन।

आर्यभटीय(१/१०) तथा लल्ल-व्यास=१०५० योजन।

सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय,भुवनकोष ५२, व्यास = १५८१ $^{१}/_{२४}$ योजन; परिधि=४९६७ योजन।

पुराणों में पृथ्वी को सहस्रदल पद्म कहा गया है, अर्थात् पृथ्वी के व्यास का हजार भाग योजन है-तस्मिन्हिरण्मये पद्मे बहुयोजन विस्तृते।
सर्व तेजो गुणमये पार्थिवैर्लक्षणैर्वृते।तच्च पद्मं पुराभूतं पृथिवी रूपमुत्तमम्।
नारायण समुद्भूतं प्रवदन्ति महर्षय:। (पद्म पुराण, सृष्टिखण्ड ४०/२-३)
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाधत:।
तमुत्वादध्यङ् ऋषि पुत्र ईधे अथर्वण:। वृत्रहणं पुरन्दरम्(ऋक्६/१६/१३-१४)
वायुमण्डल मिलाने पर पृथ्वी का हजार भाग प्राय: आर्यभट योजन के बराबर होगा। इसमें १ योजन=१२.७५६२८ कि.मी.। इसी माप से भागवत पुराण में यूरेनस तक की ग्रह कक्षा को ५० कोटि योजन की पृथ्वी कहा गया है। इसके मण्डलों का विस्तार हजार योजन इकाई में इस प्रकार है-

क्रम	**त्रिज्या**	**चौड़ाई**	**नाम**
१	५०	५०	जम्बूद्वीप
२	१५०	१००	लवणसमुद्र
३	३५०	२००	प्लक्ष द्वीप
४.	५५०	२००	इक्षुरस सागर
५	९५०	४००	शाल्मलि द्वीप
६.	१३५०	४००	मद्य समुद्र
७	२१५०	८००	कुश द्वीप
८.	२९५०	८००	घृत समुद्र
९.	४५५०	१६००	क्रौञ्च द्वीप
१०.	६१५०	१६००	क्षीर सागर
११.	९३५०	३२००	शकद्वीप
१२.	१२,५५०	३२००	दधि समुद्र
१३.	१५,७५०	३२००	मानसोत्तर पर्वत
१४.	१८,९५०	३२००	पुष्कर द्वीप
१५.	२५,३५०	६४००	मधुर जल समुद्र
१६.	४१,१००	१५,७५०	लोक वर्ष (प्रकाशित भाग)
१७.	१,२५,०००	८३,९००	हिरण्य वर्ष
१८.	२,५०,०००	१,२५,०००	अ-लोक वर्ष(बिना प्रकाश का)

इसमें जम्बू-द्वीप पृथ्वी का आकर्षण क्षेत्र है, जिसमें प्राय: ३०,००० योजन त्रिज्या की कक्षा में चन्द्रमा है (औसत दूरी ३,८४,००० कि.मी.)। उसके बाद कुश-द्वीप को वराह-क्षेत्र कहा गया है, जिसकी त्रिज्या पृथ्वी की ४००० गुणी (शुक्र-कक्षा की दूरी का ६०% भाग) मानी गयी है (यहां ५० से १५०० गुणा)। इससे पृथ्वी की उत्पत्ति हुयी है। उसके भीतर भी ७ क्षेत्र माने गये हैं।अन्य क्षेत्र पृथ्वी के चारो तरफ ग्रह कक्षाओं से बने हैं। यहां-

किसी ग्रह की निकटतम दूरी= पृथ्वी और ग्रह कक्षा का अन्तर

बाहरी वलय की त्रिज्या= पृथ्वी और ग्रह कक्षा का योग

पृथ्वी आदि ठोस ग्रहों को दधि कहा गया है। अत: सूर्य का परिभ्रमण क्षेत्र दधि समुद्र कहा गया है। १ योजन =८.५७५ मील मानने पर कलि आरम्भ(३१०१ ई.पू.) की ग्रह कक्षाओं के अनुसार द्वीप वलयों का आकार है-

क्रम	**ग्रह**	**विन्दु**	**त्रिज्या**	**द्वीप-त्रिज्या**	**अशुद्धि%**	**क्षेत्रनाम**
१.	बुध	निकट	५९७६.०	६,१५०	२.१	क्षीरसागर
२.	बुध	दूर	१५,७०१.१	१५,७५०	०.३	मानसोत्तर पर्वत
३.	शुक्र	निकट	२८५१.०	२,९५०	३.५	घृत सागर
४.	शुक्र	दूर	१८,८१३.०	१८,९५०	०.७	पुष्कर द्वीप
५.	मंगल	निकट	४,०९०.०	४,५५०	११.२	क्रौञ्च द्वीप
६.	मंगल	दूर	२५,७३६.५	२५,३५०	-१.५	जलसमुद्र
७.	गुरु	निकट	४३,४२२.८	४१,१००	-५.३	जनस्थान
८.	शनि	दूर	१,२१,५९९.६	१,२५,०००	२.८	हिरण्य वर्ष
९.	सूर्य	मध्यम	१०,८४०.४	१०.९५०	१.०	दधिसमुद्र का मध्य
१०.	सिरिस*	निकट	१६,३१२.८	१५,७५०	-३.४	मानसोत्तर पर्वत
११.	सिरिस*	दूर	४२,६८३.२	४१,१००	-३.७	जनस्थान
१२.	यूरेनस	दूर	२,२९,८११.०	२,५०,०००	८.८	अलोक वर्ष

टिप्पणी*-मंगल तथा बृहस्पति के बीच के अवान्तर ग्रहों में मुख्य सिरिस है। उसकी कक्षा का आकार २,००० ई. की गणना के आधार पर है।

आकाश-गङ्गा को परा लोक या परमेष्ठी कहा गया है। यह पिता सूर्य का पिता होने से पितामह है। परा का अर्थ $१०^{१७}$ होता है। अत: यह पृथ्वी व्यास का

$१०^{१४}$ गुणा या १.२७५६×१०^{१८} कि.मी. या १,३०,००० प्रकाश वर्ष है (आधुनिक अनुमान १,००,००० प्रकाश वर्ष)। इसका दस गुणा क्षेत्र कूर्म कहा गया है-मानेन तस्य कूर्मस्य कथयामि प्रयत्नतः ।।७।।
शङ्कोः शतसहस्राणि योजनानि वपुः स्थितम्(नरपति जयचर्या में कूर्म-चक्र)
यह सृष्टि करता है, अतः कूर्म है-
स यत्कूर्मो नाम। एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत। यदसृजत अकरोत् तत् यद् अकरोत् तस्मात् कूर्मः(शतपथ ब्रा.७/५/१/५)
आधुनिक ज्योतिष में इसे आकाशगङ्गा का आभामण्डल कहा गया है। इसके बाद शक्करी(रात्रि या सृष्टि कार्य में सक्षम-ऋग्वेद का रात्रि-सूक्त १०/१०/१२७) है, अतः इस क्षेत्र की माप का छन्द शक्करी है(१४×४=५६ अक्षर) या पृथ्वी का $२^{५३}$ गुणा,और इस संख्या की माप शंकु=$१०^{१३}$ में होती है-
शङ्कु भवत्यह्नो धृत्यै यद्वा अधृतं शङ्कुना तद्दाधार(ताण्ड्य ११/१०/११)
यदिमान् लोकान् प्रजापतिः सृष्ट्वेदं सर्वमशक्नोद् तत् शक्करीणां शक्करीत्वम्(ऐतरेय ब्रा.५/७)

(३) भ-योजन-पृथ्वी के आकर्षण केन्द्र में ही चन्द्र है। अतः चन्द्र कक्षा तक की माप भू-योजनों में मानना उचित है। किन्तु सौर परिधि की माप के लिये सौर व्यास और दूरी की वर्त्तमान माप से तुलना करनी चाहिये।
सूर्य व्यास=१३,९२,००० कि.मी.=६,५०० योजन(सूर्य सिद्धान्त ४/१)।
अतः १ योजन=१३,९२०÷६५=२१४.१५३८ कि.मी.।
यह सूर्य सिद्धान्त के भू-योजन ७.९७२७ कि.मी.का २६.८६ या २७ गुणा है। अतः इसे भ-योजन कहा गया है। भ=नक्षत्र या २७।
सूर्य कक्षा=४३,३१,५०० योजन(सूर्य सिद्धान्त १२/८६)परिधि।
त्रिज्या=१.४७×१०^{८} कि.मी.(आधुनिक मत १.५०×१०^{८} कि.मी.)।
नक्षत्र कक्षा=सूर्य कक्षा × ६० (सूर्य सिद्धान्त १२/८०)।
सभी ग्रहों की कक्षा इसके भीतर ही है। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार नेपचून सूर्य से ३० गुणा दूरी पर है तथा प्लूटो ३९ गुणा। प्लूटो चन्द्रमा से भी बहुत छोटा है। ३६-४४ गुणा दूरी पर १०० कि.मी. से बड़े आकार के प्रायः ७०,००० पिण्ड सूर्य का चक्कर लगा रहे हैं। पहली बार १९९२ में इनका पता चला। इसे भागवत

में १०० कोटि व्यास का अलोक भाग कहा गया है(पञ्चम स्कन्ध) । सूर्य कक्षा के ६० गुणा दूरी पर यही सौर मण्डल की नक्षत्र कक्षा है। इनका आकार अङ्गुष्ठ के बराबर अर्थात् पृथ्वी का ९६ भाग या १३५ कि.मी. व्यास है। इनकी संख्या ६०,००० है जिनकी उत्पत्ति यज्ञ(क्रतु) से हुयी है-

क्रतोश्च सन्ततिर्भार्या वालखिल्यानसूयत ।षष्टिपुत्र सहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्। अङ्गुष्ठ पर्व मात्राणां ज्वलद्भास्कर तेजसाम् (विष्णु पु.१/१०/११)

तथा वालखिल्यां ऋषयोऽङ्गुष्ठ पर्वमात्राः षष्टि सहस्राणि पुरतः सूर्य सूक्त वाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति ।(भागवत पु.५/२१/१७)

ब्रह्माण्ड का की परिधि = १.८७×१०^{१६} भ-योजन(सूर्य सिद्धान्त १२/९०)

व्यास=$१.८७\times१०^{१६}\times$ २१४.१५३८ $\div$ π (=३.१४१५९) कि.मी.

=१.२७×१०^{१८} कि.मी.=१.३×१०^{५} प्रकाश वर्ष।

आधुनिक अनुमान $१०^{५}$ प्रकाश वर्ष का है।

सूर्य-सिद्धान्त(१२/८६-८९) में चन्द्र-कक्षा से चक्र-भ्रमण काल के अनुपात में ग्रह कक्षायें बढ़ायी गयी हैं। यहां सीधा अनुपात मानना उचित नहीं है। किन्तु वास्तविक गणना के लिये शीघ्र-परिधि में ग्रह-कक्षा का सही मान है-

$$\frac{\text{बुध, शुक्र की परिधि}}{\text{सूर्य कक्षा}} = \frac{\text{शीघ्र-परिधि}}{३६०^\circ}$$

बुध, शुक्र की छोटी कक्षा होने के कारण इन्हें शीघ परिधि कहा गया है। मंगल, गुरु, शनि के लिये सूर्य कक्षा ही शीघ्र परिधि है। उनके लिये-

$$\frac{\text{ग्रह कक्षा}}{\text{सूर्य कक्षा}} = \frac{३६०^\circ}{\text{शीघ्र-परिधि}}$$

सूर्य सिद्धान्त(२/३४-३७) के अनुसार शीघ्र परिधियों के मध्यम-मान-

तारा-ग्रह	**मध्यम शीघ्र-परिधि**	**ग्रह-कक्षा**	**आधुनिक मान**
		(दोनों सूर्य की तुलना में)	
बुध	१३३.५	०.३६८	०.३८६
शुक्र	२६१	०.७२५	०.७२३
मंगल	२३३.५	१.५४	१.५२४
गुरु	७१	५.०७०	५.२०२८

शनि	३९.५	९.११४	९.५५

४. धाम-योजन-धाम दो प्रकार के हैं-क्षर-धाम और अक्षर-धाम। इसके अनुसार सूर्य के ३० धामों की दो प्रकार की व्याख्या है-

त्रिंशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते(ऋक् १०/१८९/३)

(क) क्षर-धाम-यह पृथ्वी परिधि के अनुसार रैखिक माप है। पृथ्वी क्षर है तथा यह धाम बदलता रहता है, अतः इसे क्षर नाम दिया गया है(लेखक द्वारा)। यह उषा सूक्त में वर्णित है कि उषा काल सूर्योदय स्थान से ३० धाम पश्चिम (वरुण दिशा में) तक रहता है-

सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम।

अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परियन्ति सद्यः।(ऋक् १/१२३/४)

आधुनिक ज्योतिष में सन्ध्या काल १८° माना जाता है, किन्तु भारतीय पुराणों में दिन या रात्रि का १२वां भाग =१५° सन्ध्या माना गया है। यथा १२०० दिव्य वर्ष के कलियुग में १०० वर्ष की सन्ध्या है। जहां सूर्योदय हुआ है, उससे १५° पश्चिम तक उषा माना जायेगा। १५° परिधि में ३० धाम हैं, अतः १ धाम १°/२ का हुआ। यह हर अक्षांश पर अलग-अलग होगा, विषुवत रेखा पर आधे अंश की दूरी को धाम योजन कहा गा सकता है।

१ धाम योजन=विषुव-परिधि ÷७२० =४०,०००÷७२०=५५.५ कि.मी.।

इस योजन मान से आकाश-गङ्गा को परम-परार्ध कहा गया है-

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके,गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।

छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति,पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः(कठ उ.१/३/१)

आकाशगङ्गा की परिधि = $१०^{५}$ प्रकाश वर्ष।

$=१०^{५} \times १०^{१६} \div ५५.५ = ०.५५ \times १०^{१७}$ कि.मी.।

(ख) अक्षर-धाम-सूर्य के ३० धामों का आकाश में अर्थ है कि पृथ्वी को ३० बार २ गुणा करने से जो क्षेत्र होगा वहां तक सूर्य का प्रकाश अन्य तारों की तुलना में अधिक रहता है। इस माप का आधार पृथ्वी का आकार है-

मा छन्दः, तत् पृथिवी-.. (मैत्रायणी सं.२/१४/९३, काठक सं.३९/३९)

पृथ्वी को माप-दण्ड मानकर क्रमशः २-गुणे आकार के धाम हैं। पृथ्वी के भीतर ३ स्तरों को गिनने पर धाम-संख्या छन्द के अक्षर-संख्या के बराबर होती है,

अत: इसे अक्षर-धाम नाम दिया गया है(लेखक द्वारा)।

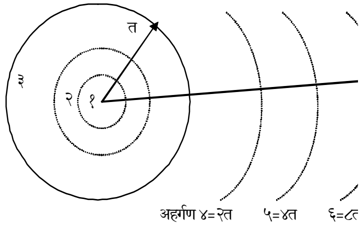

सौर मण्डल का व्यास = पृथ्वी व्यास ह्न $२^{३०}$ = ६३७८.१४ कि.मी.ह्न $२^{३०}$ =१.४४८ प्रकाश वर्ष (आधुनिक मान १-२ प्रकाश वर्ष)

छन्दों के अनुसार माप करने के लिये पृथ्वी के भीतर दो बाह्य पृथ्वी की प्रतिमारूप दो क्षेत्र माने गये हैं।प्रथम क्षेत्र पृथ्वी का १/४ है जो ब्रह्माण्ड की प्रतिमा है। द्वितीय क्षेत्र पृथ्वी का आधा है जो सौर मण्डल के पृथ्वी की प्रतिमा है।तीन पृथ्वी (भूमि, माता) तथा तीन द्यु(पिता)-

तिस्रो मातृस्त्रीन् पितृन् विभृदेक ऊर्ध्वतस्थौ नेमवग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वमिदं वाचमविश्वमिन्वाम्(ऋक् १/१२३/८)
तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुतद्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु(ऋक् २/२७/८)

पृथ्वी के भीतर ३ लोक-
पृथिव्यामिमे लोका:(पृथ्वी,अन्तरिक्ष,द्यौ)प्रतिष्ठिता:(जै. ब्रा.उ.१/१०/२)

भीतर और बाहर पृथ्वी से माप-
तस्या एतत् परिमितं रूपं यदन्तर्वेदि(भूपिण्ड:) अथैष भूमाऽपरिमितो यो बहिर्वेदि:(महापृथिवी)-ऐतरेय ब्रा.(८/५)।

पृथ्वी से गिनने पर धाम संख्या को अहर्गण कहा जाता है। पञ्चाङ्ग गणना में अहगण का अर्थ दिन संख्या है। यहां अहर्गण का अर्थ २ का घात है। अहर्गण लम्बाई की माप है। उस त्रिज्या क्षेत्र के गोले का आयतन स्तोम तथा उसकी सतह का क्षेत्रफल पृष्ठ कहलाता है। पृथ्वी की सतह पर केन्द्र से तीसरा अहर्गण होता है जिसकी दूरी पृथ्वी की त्रिज्या के बराबर है।

अत: क अहर्गण=त ह्न $२^{(क-३)}$, जहां त = पृथ्वी की त्रिज्या।

अहर्गण माप से सौर मण्डल का विस्तार ३३ है; पृथ्वी के भीतर ३ तथा बाहर ३०। इसके प्राण देवता भी ३ और ३० अर्थात् ३३ कहे गये हैं-इतिस्तुतासोअसथा रिसादशो येस्थ त्रयश्च त्रिंशच्च मनोर्देवा यज्ञियास:(ऋक्८/३०/२)।

अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादश आदित्या: प्रजापतिश्च वषट्कारश्च।
(ऐतरेय ब्रा.२/१८,३/७,३/२२)

उसी के अनुसार अक्षर होते हैं, अत: क से ह तक ३३ व्यञ्जन वर्ण हैं। यह चिह्न रूप में ३३ देवों का नगर है, अत: लिपि को देवनागरी कहा जाता है। अहर्गण माप में पृथ्वी की सतह (३ अहर्गण) से सौर मण्डल की सतह (३३ अहर्गण) के क्षेत्र को ६-६ अहर्गण के अन्तर से ६ क्षेत्रों में बांटा गया है। यह ६ वाक्(शब्द या आकाश) का परिमाण है, अत: वषट्कार कहा गया है-

एष एव वषट् कारो य एष:(सूर्य:) तपति (शतपथ ब्रा.१/७/२/११,११/२/२/५)।

वाग्वै वषट्कारो षडित्यृतवो वै षट् तस्मादेवं वषट्करोति (शतपथ ब्रा.१/७/२/११)।

आधुनिक ज्योतिषीय गणनाओं के सूक्ष्मतम मान इन पुस्तकों में है-

(1)Solar system Dynamics-C.D.Murray, S.F.Dermott-Cambridge University Press-1998

(2) The Nine Planets, The Kuiper Belt and the Oort Cloud-W.Arnett

(3) Appendix of the commn textbook 'Fundamentals of Physics' by Halliday, Resnick and Walker.

(4) Introduction to Cosmology-J.V.Narlikar, Cambridge University Press-First chapter, appendix.

वैदिक साहित्य में हर स्थान पर अहर्गण माप में क्षेत्रों की माप है। पृथ्वी के साम हैं-रथन्तर, वैरूप, शक्वर। सूर्य के हैं-बृहत्, वैराज, रैवत।

यद्वै रथन्तरं सद्वैरूपं, यद् बृहत् तद्वैराजम्। यद्रथन्तरं तच्छाक्वरम्। यद् बृहत् तत् रैवतम् (ऐतरेय ब्रा.१७/७/१३)

इसके अतिरिक्त ऐतरेय ब्रा.(१९/६/१), तैत्तिरीय ब्रा.(१/४/६) भी देखें।

रथन्तर साम के स्तोम हैं-९,१५,१७,२१-प्राणो वै त्रिवृत्, अर्धमास: पञ्चदश:, संवत्सर: सप्तदश, आदित्य एकविंशं-एते वै स्तोमा:(ताण्ड्य म.ब्रा.६/२/२)

१७ वां स्तोम प्रजापति (सूर्य पिण्ड) है-

सप्तदश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै प्रजापत्यै(ताण्ड्य म.ब्रा.१२/६/१३)।
४९ मरुत्-सप्त सप्त हि मारुता गणा:(७ह्न७=४९,वा.यजु.१७/८०-८५,३९/७, शतपथ ब्रा.९/३/१/२५)
ब्रह्म तप: लोक में है तथा ब्राह्मी में ६४ अक्षर हैं-
ब्रह्मा तपसि(प्रतिष्ठितम्)-ऐतरेय ब्रा.(३/६), गोपथ ब्रा.उत्तर(३/२)
त्रिषष्टि: चतु:षष्टिर्वा वर्णा: शम्भुमते मता:(पाणिनीय शिक्षा ३)
३३ अहर्गण स्वर्ग(नाक) की सीमा है-
तम्(त्रयस्त्रिंशं स्तोमं) उ नाक इत्याहु:(ताण्ड्य म.ब्रा.१०/१/१८)
छन्दोमा स्तोम-गायत्रमयनं(२४) भवति ब्रह्मवर्चसकामस्य, त्रैष्टुभमयनं(४४) भवति ओजस्कामस्य, जागतमयनं(४८) भवति पशुकामस्य(ता.१४/१/१०)
तद्यच्छन्दोभिर्निर्मिता: तस्मात् छन्दोमा:(कौषीतकि ब्रा.२६/७)।
कूर्म चक्र का आकार $१०^{१८}$ योजन है। शंकु=$१०^{१३}$ ।
मानेन तस्य कूर्मस्य कथयामि प्रयत्नत:(७)
शङ्को: शतसहस्राणि योजनानि वपु:स्थितम् ।।
(नरपति जयचर्या,स्वरोदय में कूर्म चक्र)
शङ्कु शक्वर साम का आधार है, इसी में सृष्टि होती है, जिसे ब्रह्म वैवर्त्त पुराण प्रकृति खण्ड, अध्याय ३ में गोलोक कहा गया है। वेद में यह कूर्म है-
तद् (शङ्कु साम) उसीदन्ति इयमित्यमाहु: (१२)।
शङ्कु भवत्यह्नो धृत्यै यद्वा अधृतं शङ्कुना तद्दाधार(११)-ताण्ड्य म.ब्रा.११/१०
यदिमान् लोकान् प्रजापति: सृष्ट्वेदं सर्वमशक्नोद् तद् शक्वरीणां शक्वरीत्वम् (ऐतरेय ब्रा.५/७)
स यत्कूर्मो नामा एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापति: प्रजा असृजत, यदसृजत अकरोत्- तद् यद् अकरोत् तस्मात् कूर्म:(शतपथ ब्रा.७/५/१/५)।
वषट्कार क्षेत्र-(१) ९ अहर्गण= पार्थिव क्षेत्र या अग्निमण्डल=$२^{६}$ या ६४ त्रिज्या
आधुनिक मान से चन्द्र की मध्यम दूरी=६०.२७ त्रिज्या(५५.५-६३.२५)
(२)१५ अहर्गण वराह क्षेत्र या वायु भाग=$२^{१२}$ त्रिज्या=२.६१२५ह्न$१०^{७}$ कि.मी.
पृथ्वी और शुक्र कक्षाओं का अन्तर=(१५०-१०८)ह्न $१०^{६}$ कि.मी.।
अत: वराह भाग=(२६.१२५ह्न४२)ह्न१००=६२.२%।

इसके मध्य भाग की सूर्य से दूरी=१५०-१३=१३७ह्ल१०^{६} कि.मी. ।

वायु पुराण(६/१२) के अनुसार वराह १०० योजन ऊंचा तथा १० योजन विस्तार का है । १५ अहर्गण का वराह होने के कारण १५$^{\circ}$ उत्तर अक्षांश पर तिरुपति में भू -वराह क्षेत्र है।

सूर्य व्यास=१.३९२ह्ल१०६ कि.मी. ।

अत: वराह क्षेत्र का मध्य भाग सूर्य से प्राय: १०० सूर्य व्यास की दूरी पर है। १०९ सूर्य व्यास की दूरी पर पृथ्वी कक्षा है जो ११० व्यास तक जाती है।

(३) २१ अहर्गण-आदित्य या सूर्य क्षेत्र=२^{१८} त्रिज्या=१६७२ह्ल१०^{६} कि.मी. ।

यह पृथ्वी कक्षा से बड़ा है अत: इसकी माप सूर्य केन्द्रित मानी जायेगी। पृथ्वी कक्षा से मध्यम दूरी उसके केन्द्र सूर्य से दूरी होगी। शनि कक्षा तक सूर्य रथ का चक्र माना गया है, जिसकी त्रिज्या=१४३०ह्ल१०^{६} कि.मी.। इस रथ को पार करने के कारण इसे रथन्तर साम कहा गया है। इसके भीतर २०$^{\circ}$ उत्तर अक्षांश पर पुरी में रथ यात्रा होती है।

इन तीन क्षेत्रों-अग्नि, वायु, रवि में यज्ञ अर्थात् सृष्टि होती है, अत: मनुस्मृति (१/२३) में इनसे यज्ञरूप वेद की उत्पत्ति मानी गयी है।

(४) २७ अहर्गण= मैत्रेय मण्डल = पृथ्वी त्रिज्या ह्ल २^{२४}=१.०७ह्ल१०^{११} कि.मी.

=सौर त्रिज्या का १.५३७ह्ल१०^{५} गुणा।

प्राय: आधा अहर्गण कम पर यह सौर त्रिज्या का लाख गुणा या पृथ्वी का कोटि गुणा होता है। पृथ्वी से २३$^{१/२}$ अहर्गण अधिक होने के कारण इसे माप के अनुसार गायत्री या सृष्टि क्रिया के कारण सावित्री कहा गया है। अत: २४ अक्षर के छन्द गायत्री द्वारा लोकों की माप होती है।

(५) ३३ अहर्गण=सौर मण्डल की सीमा। इसकी त्रिज्या=पृथ्वी त्रिज्याह्ल२^{३०}

=६.८४८ह्ल१०^{१२} कि.मी.=मध्यम सौर दूरी का ४५,७७८.५८ गुणा।

आधुनिक अनुमान(१९९२) के अनुसार ५० से १०० हजार सूर्य दूरी पर ऊर्ट मेघ है जो सौर मण्डल का गोलाकार टुकड़ों से बना आवरण है। कुछ धूमकेतु यहां से निकलते हैं। इसकी बाहरी सीमा ३४ अहर्गण पर प्रजापति होगा। ३३ अहर्गण के

बाद सूर्य तेज मरे अण्डे के समान है, अत: ३३$^{\circ}$ उत्तर अक्षांश पर कश्मीर में मार्त्तण्ड मन्दिर(मट्टन साहब) है।

त्रिष्टुप् छन्द-सौर केन्द्र से गिनने पर सौर मण्डल को त्रिष्टुप् छन्द (११ह्न४ अक्षर) के चरणों के आधार पर ११, २२, ३३ अहर्गण क्षेत्र में बांटा गया है।

११ अहर्गण= १६,३१,८०३.४ कि.मी.= सूर्य त्रिज्या ह्न २.३४६

=सूर्य का आभामण्डल (Corona)।

२२ अहर्गण=पृथ्वी त्रिज्या ह्न २^{१९}=३३४४ह्न१०^{६} कि.मी.।यूरेनस कक्षा की त्रिज्या २८७०ह्न१०^{६} कि.मी.है, अत: यह भागवत वर्णित चक्राकार पृथ्वी का आलोक भाग है।त्रिष्टुप् छन्द का पूर्ण माप महर्लोक है। त्रिष्टुप् छन्द के ४४ अक्षरों के बदले माहेश्वर सूत्र के ४३ अक्षर लेना ज्यादा उचित होगा।

अत:, महर्लोक की त्रिज्या = पृथ्वी त्रिज्या ह्न २^{४०}=७.०१३ह्न१०^{१५} कि.मी.

= ७४१.२८ प्रकाश वर्ष।

यह आकाशगङ्गा की सर्पाकार भुजा की मोटाई है जहां सूर्य स्थित है। इस त्रिज्या के क्षेत्र में प्राय: १००० तारे हैं जिसमें एक तारे सूर्य के क्षेत्र में बहुत छोटे कण के समान पृथ्वी है। आकाशगङ्गा की सर्पाकार भुजा को ही शेषनाग कहा गया है, जिसके हजार सिरों (सूर्य) में से एक पर पृथ्वी है।

छन्दोमा स्तोम-आकाश-गङ्गा की माप छन्दों या स्तोम से है। गायत्री छन्द सूर्य का सावित्र या मैत्रेय मण्डल है। त्रिष्टुप् महर्लोक है। जगती छन्द ब्रह्माण्ड है। इसके ४८ अक्षरों के बदले ४९ मरुत् के कारण ४९ अहर्गण लेने चाहिये।

ब्रह्माण्ड या आकाश-गङ्गा की त्रिज्या=पृथ्वी त्रिज्या ह्न २^{४६}

=४.४८८ ह्न १०^{१७} कि.मी.=४७,४४१.६५ प्रकाश वर्ष।

आधुनिक अनुमान प्राय: ५०,००० प्रकाश वर्ष है।

ब्रह्माण्ड से बड़े स्तर-ब्रह्माण्ड का आभामण्डल, गोलोक या कूर्म-चक्र का विस्तार अतिजगती छन्द के ५२ अक्षर हैं।

इसकी त्रिज्या=पृथ्वी त्रिज्या ह्न २^{४९} =३.५९ह्न १०^{१८} कि.मी.=३,७९,५३३ प्रकाश वर्ष (आधुनिक अनुमान ४-५ लाख प्रकाश वर्ष=५२.५ अहर्गण)

ब्रह्माण्ड के ४९ अहर्गण के अनुसार देवनागरी लिपि में ४९ अक्षर हैं तथा कूर्म

=कर्त्ता या क्षेत्रज्ञ के लिये ३ अतिरिक्त क्ष,त्र,ज्ञ हैं।

शक्वरी छन्द के ५६ अहर्गण स्थानीय समूह(Local clusture) है।

इसकी त्रिज्या=पृथ्वी त्रिज्या ह्न १०^{५३}=५.७४५ ह्न १०^{१९} कि.मी.

=५.९६ह्न१०^{६} प्रकाश वर्ष =१.८२ मेगापरसेक।

आधुनिक अनुमान २.५ मेगापरसेक या ५६.४ अहर्गण है।

अतिशक्करी = ६० अहर्गण= पृथ्वी त्रिज्या ह्न १०^{५७}=२९.७८ मेगापरसेक (प्राय: ९७० लाख प्रकाश वर्ष)। स्थानीय बृहत् समूह (Local Super Clusture) की त्रिज्या प्राय: २५ मेगापरसेक अनुमानित है।

अष्टि(६४ अहर्गण) इससे १६ गुणा बड़ा प्राय: ४७६.५ मेगापरसेक होगा। ५०-१०० मे.प.त्रिज्या के शून्यस्थान तथा बृहत् आकर्षक का आकार है। प्राय:१००० मेगापरसेक क्वासर की दूरी है।

अत्यष्टि =६८ अहर्गण=२.३५३ ह्न १०^{२३} कि.मी.=२.४८७ह्न१०^{१०} प्रकाश-वर्ष। इसका आधा भाग पृथ्वी सतह से ६४ अहर्गण पर है अर्थात् १२.४४ अरब प्रकाश वर्ष की दूरी पर। ब्राह्मी लिपि के ६३ या ६४ वर्णों के कारण यह तप: लोक का आकार है। ब्रह्मा का ८.६४ अरब वर्ष का अहोरात्र ६३.५ अहर्गण दूर होगा। यह तप: लोक या आधुनिक भाषा में दृश्य जगत् की सीमा है जिसका आधुनिक अनुमान ८ से १५ अरब प्रकाश वर्ष तक का है। धृति ७२ अहर्गण का है जो सत्यलोक या स्वयम्भू मण्डल का काल्पनिक मान है।

(५) सौर योजन-सौर मण्डल की माप के लिये सौर व्यास को ही योजन माना गया है। इसके अनुसार सौर मण्डल में रुद्र मूर्त्ति वामन सूर्य पिण्ड है जिसका व्यास १३,९२,००० कि.मी. है। सौ व्यास की दूरी पर वराह है जिसके १० योजन मोटे शरीर में १/१०९ योजन की पृथ्वी है। यहां रुद्र क्षेत्र शान्त हो जाता है, अत: इसे शतरुद्रिय(शान्त=शत=१००) कहा जाता है। १०० तक ताप तथा १००० योजन तक रश्मि क्षेत्र है। वहां शनि का के पास सूर्य ताम्र-अरुण रंग का दीखता है। यहां तक आदित्य का मुख्य क्षेत्र है क्योंकि इन्द्रियों द्वारा इन्द्र क्षेत्र तक का ही अनुभव होता है। इन्द्र को सहस्राक्ष कहा गया है, तथा सूर्य अक्ष है-

चक्षो: सूर्यो अजायत(पुरुष सूक्त-१३)। अक्ष का अर्थ चक्षु(आंख) तथा धुरी (Axis) दोनों होता है। अत: सूर्य को धुरी या केन्द्र मानकर उससे सहस्र

(१०००) अक्ष की दूरी पर इन्द्र होगा। उसके बाद लक्ष व्यास तक मैत्रेय मण्डल होगा। इनके उदाहरण हैं-

ताप-क्षेत्र-शतयोजने ह वा एष (आदित्य) इतस्तपति (कौषीतकि ब्रा.८/३) स एष (आदित्य:) एकशतविधस्तस्य रशतमय: शतं विधा एष एवैकशततमो य एष तपति(शतपथ ब्रा.१०/२/४/३)

तद्यदेतं शतशीर्षाणं रुद्रमेतेनाशमयंस्तस्मच्छतशीर्षरुद्रशमनीयं शतशीर्षरुद्र शमनीयं ह वै तच्छतरुद्रियमिस्याचक्षते परोऽक्षम्(शतपथ ब्रा.९/१/१/७)

रश्मि-क्षेत्र-युक्ता ह्यस्य(इन्द्रस्य) हरय: शतादशेति। सहस्रं हैत आदिस्यस्य रश्मय:(इन्द्र:=आदित्य:)-जैमिनीय ब्रा.उ.(१/४४/५)

ताम्र-अरुण रंग-असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रु: सुमङ्गल:।

ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिता:सहस्रशोऽवैषां हेड ईमहे।।(वा.यजु.१६/६)

सूर्य का रथ ९,००० योजन का है अर्थात् उसकी त्रिज्या ४,५०० व्यास योजन है (प्राय: प्लूटो कक्षा तक)। उसका ईषादण्ड इसका दूना है अर्थात् वालखिल्य नक्षत्रों की सीमा-इनका मध्यम मान ६७५० योजन या सूर्य से प्राय: ६० गुणा दूरी की नक्षत्र-कक्षा(सूर्यसिद्धान्त १२/८०) है। इनकी उत्पत्ति क्रतु(यज्ञ) से हुयी है जिसका क्षेत्र २७ अहर्गण=पृथ्वी त्रिज्या ह्न $२^{२४}$ =७६,८७६ व्यास। सूर्य रथ का विस्तार १५७ लाख योजन = २.३१० प्रकाश वर्ष है। आधुनिक ज्योतिष में वालखिल्य नक्षत्रों को कुइपर वलय(Kuiper Belt) तथा सौर मण्डल की सीमा को वूर्ट मेघ (Woort Cloud) कहा गया है।

(६) प्रकाश योजन-आकाश में पृथ्वी को ही सहस्रदल कमल कहा गया है(पृष्ट २५-भू योजन)। इसके १ दल अर्थात् व्यास के हजारवें भाग को प्रकाश जितने समय में पार करता है उस समय को त्रुटि कहा गया है-

कमलदलन तुल्य: काल उक्तस्त्रुटिस्तच्छतमिह लवसंज्ञस्तच्छतं स्यान्निमेष:।

(वटेश्वर सिद्धान्त,मध्यमाधिकार,७)

योऽक्ष्णोर्निमेषस्य खराम भाग: स तत्परस्तच्छत भाग उक्ता।

त्रुटिर्निमेषैर्धृतिभिश्च काष्ठा तत् त्रिंशता सद्गणकै: कलोक्ता।।

(सिद्धान्त शिरोमणि,मध्यमाधिकार,२६)

जालार्क रश्म्यवगत: खमेवानुपतन्नगात्।

त्रसरेणु त्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः(भागवत पु.३/११/५)
पृथ्वी की परिधि प्रायः ३००० त्रुटि होगी जो निमेष के बराबर है। ब्रह्मा की सृष्टि का आधार या पद(पद्म) पृथ्वी है, इसे मर्त्य ब्रह्मा कहते हैं, स्वायम्भुव अमृत ब्रह्म है -पद्भ्यां भूमिः(पुरुष सूक्त,१३)। यही सूर्य रूपी विष्णु का नाभि-कमल है। अतः विष्णु के १ निमेष में ब्रह्मा की २ परार्द्ध आयु पूरी होती है-
कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेषो उपचर्यते।
अव्याकृत स्यानन्तस्य अनादेर्जगदात्मनः।(भागवत पु.३/११/३७)।
त्रुटि सेकण्ड का ३३,७५० भाग है।१ सेकण्ड में प्रकाश २,९९,७९२.४५६ कि.मी. जाता है। अतः प्रकाश योजन= २९९७९२.४५६ह्व३३७५०=८.८८२७४ कि.मी.।
सौर मण्डल का प्रतिरूप मनुष्य शरीर में विज्ञान आत्मा है जो हृदय में रहकर बुद्धि का नियन्त्रण करती है।ब्रह्मरन्ध्र रूपी अणुपथ से होकर सूर्य तक प्रकाश के महापथ से इसका सम्पर्क होता है (पृष्ठ ११,१२)। यह सम्पर्क प्रकाश की गति से ८ मिनट में सूर्य तक पहुंचेगा। अतः ऋक् (३/५३/८) में कहा गया है कि यह एक मुहूर्त्त में ३ बार सूर्य तक जाकर लौटता है। इसी अर्थ में आदित्य(जिस क्षेत्र से सूर्य की उत्पत्ति हुयी-आदि हुआ) को सम्वत्सर कहा गया है। जहां तक १ वर्ष या सम्वत्सर में प्रकाश जाता है वह १ प्रकाश वर्ष का सूर्य केन्द्रित क्षेत्र आदित्य है -
संवत्सरः स्वर्गा (सौर क्षेत्र) -कारः(तैत्तिरीय ब्रा.२/१/५/२)
वाक्(=सूर्य क्षेत्र) संवत्सरः(ताण्ड्य म.ब्रा.१०/१२/७)
इस प्रजापति में ही देव उत्पन्न होते हैं-संवत्सरः प्रजापतिः(शतपथ ब्रा.१/६/३/३५,१०/२/६/१,ऐतरेय ब्रा.१/१,१३,२८;२/१७,४/२५,आदि)
संवत्सरो वै देवानां जन्म(शतपथ ब्रा.८/७/३/२१)।
इसके बाद वरुण क्षेत्र है-संवत्सरो वरुणः(शतपथ ब्रा.४/४/५/१८ आदि)
ब्रह्मा के अहोरात्र में प्रकाश जहां तक जाता वह दृश्य जगत् या तपःलोक है।
ब्रह्म तपसि(प्रतिष्ठितम्)-(ऐतरेय ब्रा.३/६,गोपथब्रा.उ.३/२)
तपोऽसि लोके श्रितम्। तेजसः प्रतिष्ठा।(तैत्तिरीय ब्रा.३/११/१/२)
(७) प्रमाण योजन-पुराण(विष्णु२/७,ब्रह्माण्ड ३/६,७, वायु, ब्रह्म आदि) में लोकों की माप इस प्रकार है-
भूलोक-सहस्र योजन।

भुव: लोक-१ लाख योजन।
स्व: लोक=सूर्य-रथ १५७ लाख योजन या अन्य माप से सूर्य-ध्रुव दूरी १४ लाख।
महर्लोक-१ कोटि योजन त्रिज्या।
जन: लोक-२ कोटि योजन त्रिज्या।
तप:लोक-८ कोटि योजन त्रिज्या।
सत्य लोक-१२ कोटि योजन त्रिज्या।

प्रथम ३ कृतक (वेद की रोदसी) त्रिलोकी हैं, उनका मध्य या अन्तरिक्ष भुव: लोक है। अन्तिम ३ अकृतक (संयती) त्रिलोकी हैं, उनका मध्य या अन्तरिक्ष तप: लोक है। दोनों त्रिलोकी के बीच मह: भी अन्तरिक्ष लोक है। तीन अन्तरिक्षों के पूर्व के लोकों भू:, स्व:, तथा जन: लोकों को पृथिवी कहा जायेगा तथा उनके बाद स्व:, जन:, सत्य को स्व: कहा जायेगा।

छन्द क्रम में मा को पृथिवी तथा प्रमा को अन्तरिक्ष कहा गया है-

मा छन्द:,तत् पृथिवी..। प्रमा छन्द:,तदन्तरिक्षम्।(मैत्रायणी सं.२/१४/९३, काठक सं.३९/३९)।

जैन-वेद की एकता-इसके अनुसार जैन ज्योतिष में (Jain Astronomy-By Sajjan Singh Lishk-Vidya Sagara Pulication,B-5/263, Yamuna Vihar, Delhi-53-Pages28,29)-

१ प्रमाण योजन=५०० आत्मा योजन= १००० उत्सेध योजन।

यहां सूर्य पिण्ड को आत्मा मानना चाहिये-

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।(वा.यजु.७/४२)

उसके बाद का अन्तरिक्ष प्रमा है जिसकी माप प्रमाण योजन में होगी। इसी प्रकार प्रत्येक लोक की एक आत्मा है, माप के लिये उसका अगला लोक अन्तरिक्ष होगा, जिसकी माप ५०० गुणा बड़े प्रमाण योजन में होगी। उत्सेध योजन आत्मा के १००० खण्ड हैं, जैसे पृथ्वी व्यास का १००० भाग उत्सेध योजन होगा। इसी प्रकार सूर्य पिण्ड आदि के १००० भाग को भी उत्सेध योजन माना जा सकता है। यहां ३ पृथ्वी हैं जो सूर्य-चन्द्र से प्रकाशित हैं-१. सूर्य-चन्द्र दोनों से प्रकाशित पृथ्वी।२.सूर्य से प्रकाशित सौर मण्डल का मैत्रेय या यज्ञ भाग। ३.सूर्य प्रकाश की अन्तिम सीमा ब्रह्माण्ड (पृष्ठ ६-विष्णु पु.१/२/३-४,सूर्य सिद्धान्त १२/८६, ऋक् वेद १/१६४/१०,२/२७/८-पृष्ठ २६)।

यहां जैन ज्योतिष के आधार पर वैदिक अर्थ और पौराणिक माप लेने पर आपत्ति हो सकती है कि वे परस्पर विरुद्ध हैं। वास्तव में वे एक ही वस्तु का अलग-अलग प्रसंगों में वर्णन कर रहे हैं। स्वयं वेद तथा पुराण में एक माप का प्रसंगवश कई अर्थों में प्रयोग किया गया है-(१) पुरुष-सूक्त-१ में भूमि संपूर्ण विश्व को कहा गया है तथा उसका १० गुणा पृथ्वी को कहा गया है। यहां विश्व ही १ अंगुल है। यहां मनुष्य अंगुल उसकी तुलना में नगण्य होगा और उसका कोई अर्थ नहीं है।

(२) सूक्ष्म अन्तरात्मा को भी अंगुष्ठ आकार का कहा गया है (श्वेताश्वतर उ. ४/२१, ५/८; कठ उ.६/१७,४/१२; मैत्रायणी आ.६/३८)(३) सभी लोकों का आकार १ वितस्ति(बित्ता) कहा गया है। यह निश्चित रूप से मनुष्य हाथ का नहीं है तथा सभी लोकों के लिये अलग-अलग है-

क्वाहं तमो महदहं खचराग्निवार्भू: संवेष्टिताण्ड घट सप्त-वितस्ति-काय:।

(भागवत१०/१४/११)

(३) आकाश में सभी पिण्ड गोलाकार हैं। किन्तु पुस्तक के पृष्ठ पर उसे समतल में वृत्ताकार दिखाया जाता है। एक गोले की माप(Map) दो वृत्तों द्वारा होती है। पुस्तक के लिये जैन ज्योतिष में २-२ सूर्य,चन्द्र, २७ह्न२ नक्षत्र दिखाये जाते हैं। पृथ्वी सतह पर सूर्य गति उत्तर में कर्क रेखा तक होती है, चन्द्र उससे ५° अंश उत्तर तक जाता है। अत: इस पद्धति से पुराणों में भी चन्द्र को सूर्य के ऊपर का गया है। जैसे ज्योतिष में कहा जाय कि दिल्ली से मथुरा ३० योजन है, उसे यदि २४० कि.मी. कहा जाय तो उसमें कोई विरोध नहीं है।

(४) जैन धर्म ऋषभ देव द्वारा आरम्भ हुआ था जो कूर्म, वायु पुराणों में ११वें व्यास कहे गये हैं। अत: जैन शास्त्रों का अन्तर कुछ काल्पनिक है, कुछ बाद में अपनी विशेषता दिखाने के लिये बनाया गया है।

(५) महर्लोक सौर मण्डल से बड़ा है इसीलिये मह: कहा जाता है पर उसका आकार सौर से छोटा कहा गया है।

बड़े लोक-मनुष्य के अनुपात में जो पृथ्वी का आकार है, पृथ्वी के अनुपात में उसके आकाश का वही आकार होगा (विष्णु पु.१/२/७/४)। पृथ्वी के चारो तरफ क्रमश: वायु के १०-१० गुणे ७ स्तर हैं। अत: उसका आकार पृथ्वी का कोटि ($१०^७$) गुणा होगा। वैसे भी ज्योतिष ग्रन्थों में पृथ्वी का आकार स्पष्ट रूप से दिया गया है जो मनुष्य का कोटि गुणा है। अर्थात्-

$१०^{७}$ = पृथ्वी व्यास / मनुष्य = मैत्रेय मण्डल / पृथ्वी व्यास = ब्रह्माण्ड / मैत्रेय मण्डल = स्वयम्भू मण्डल / ब्रह्माण्ड

१ लाख भू योजन का सौर मैत्रेय मण्डल है-इसके २ अर्थ हैं-पृथ्वी के व्यास को १००० योजन मानने पर सूर्य का व्यास १ लाख योजन है। अथवा, सूर्य पिण्ड से आरम्भ कर उस व्यास का १ लाख गुणा दूरी तक मैत्रेय मण्डल है। सूर्य पिण्ड का उत्सेध योजन उसका हजार भाग होगा, उस माप से सूर्य से १ लाख योजन पर चन्द्र कक्षा है। चन्द्र की तुलना में १ लाख गुणा दूरी पर(६०,००० सूर्य व्यास) नक्षत्र मण्डल (सौर का वालखिल्य) है।

नक्षत्र मण्डल का केन्द्र सूर्य है। वहां से बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि को क्रमश: २-२ लाख योजन दूरी पर कहा गया है। सूर्य से इन ग्रहों की दूरी लेने पर १ योजन क्रमश: २९०, २७०, ३८०, ९७३, १४३० कि.मी. होगा। २-२ ग्रहों के बीच का भाग लेने पर १ योजन २९०, २५०, ६००, २७५०, ३२६० कि.मी. है। यह किसी क्रम में नहीं है तथा सिर्फ चित्र की समरूपता दिखाने के लिये बनाया गया है।

सूर्य रथ का वर्णन सौर व्यास की इकाई में है। इसके बाद अन्तरिक्ष लोकों में योजन मान क्रमश: ५०० गुणा बढ़ाने पर लोकों का आकार है-

महर्लोक त्रिज्या = १ कोटि योजन = $१०^{७}$ह्न ५०० सूर्य व्यास

= ६.९६ ह्न $१०^{१५}$ कि.मी. = ७३५ प्रकाश वर्ष।

सूर्य से ध्रूव(गोले का ध्रुव, तारा नहीं) की दूरी तक सौर मण्डल है। यह ५०० पृथ्वी व्यास की इकाई में १४ लाख योजन है =१४ह्न$१०^{५}$ह्न५००ह्न पृथ्वी व्यास=८.९२ह्न$१०^{१२}$ कि.मी. = ०.४९ प्रकाश वर्ष।

महर्लोक से जन: लोक २ गुणा तथा ५०० गुणा बड़ी इकाई में है।

जन: लोक की त्रिज्या=६.९६ह्न$१०^{१८}$ कि.मी.=७३,५०० प्रकाश वर्ष।

तप: लोक की त्रिज्या ५०० गुणा बड़ी इकाई में जन: लोक का ४ गुणा अर्थात् ८ कोटि योजन है। १४.७ कोटि प्रकाश वर्ष या ४५.१ मेगा परसेक त्रिज्या का क्षेत्र स्थानीय सुपर क्लस्चर की दूरी है।

सत्य लोक इससे ५०० गुणा बड़ी इकाई में १२ कोटि योजन अर्थात् ९८ अरब प्रकाश वर्ष है।

पुरुष-सूक्त(१) के अनुसार पुरुष विश्व से १० गुणा बड़ा है, अत: दृश्य जगत् की त्रिज्या ९.८ अरब प्रकाश वर्ष होगी।

माप-सारणी-(१) **भुव: लोक**-(क) पृथ्वी केन्द्रित १० सूर्य व्यास का वराह।

(ख) पृथ्वी ह्व $२^{१२}$ (ग) सूर्य केन्द्रित ४५०० योजन दूरी तक रथ या दूना बड़ा ईषादण्ड।

वराह ५ प्रकार के हैं-(क) आदि वराह-यह रस रूप ब्रह्म है जिससे स्वयम्भू मण्डल बना है।(ख) यज्ञ वराह-यह कूर्म चक्र या गोलोक का पूर्वरूप है जिससे परमेष्ठी मण्डल के साथ यज्ञ का आरम्भ हुआ।(ग) श्वेत वराह-आदित्य क्षेत्र(या उसका ईषा दण्ड) है जिससे सौर मण्डल बना।(घ) भू वराह- पृथ्वी के ४००० गुणा बड़ा क्षेत्र जिसके पदार्थ (मधु-कैटभ का मेद) से पृथ्वी बनी (ङ) एमूष वराह -पृथ्वी के चारों तरफ का वायुमण्डल जिसकी उंचाई त्रिज्या का २४वां भाग है।

(२) **सौर मण्डल**-(क) १ प्रकाश वर्ष (संवत्सर) त्रिज्या का सूर्य केन्द्रित गोला।

(ख) सूर्य व्यास का १५७ लाख गुणा बड़ा।

(ग) ५०० पृथ्वी व्यास का १४ लाख गुणा त्रिज्या।

(घ) पृथ्वी के बाहर क्रमश: १०-१० गुणे बड़े वायु के ७ स्तर।

(ङ) पृथ्वी का $२^{३०}$ गुणा।

(च) पृथ्वी का कोटि गुणा मैत्रेय मण्डल (सौर मण्डल का क्रियात्मक भाग)।

(३) **महर्लोक**-(क) ५०० सूर्य व्यास का कोटि गुणा त्रिज्या।

(ख) शेष नाग के १००० सिर या सौर मण्डल का १००० गुणा।

(ग) पृथ्वी ह्व $२^{४०}$ ।

(घ) भू तथा सत्य($१०^{२०}$ गुणा) का मध्य या $१०^{१०}$ गुणा बड़ा।

(४) **जन:लोक(आकाश-गंगा)**-

(क) सूर्यसिद्धान्त में १.८७ह्व$१०^{१६}$ भ-योजन(=२१६ कि.मी.)।

(ख) पृथ्वी ह्व $२^{४६}$, गोलोक या कूर्म= पृथ्वी ह्व $२^{४९}$ ।

(ग) मैत्रेय मण्डल या सावित्री का $२^{२४}$=$१०^{७}$ गुणा।

(घ) नरपति जयचर्या में कूर्म-चक्र=$१०^{१८}$ योजन।

(ङ) ५५.५ कि.मी. के धाम योजन से परिधि=०.५ह्ल $१०^{१७}$ (परार्ध) योजन।

(च) ५००ह्ल५०० सूर्य व्यास के योजन से २ कोटि योजन त्रिज्या।

(५) **तप:लोक**-(क) पृथ्वी का $२^{६४}$ गुणा।

(ख) $५००^{३}$ सूर्य व्यास से ८ कोटि योजन त्रिज्या।

(ग) ब्रह्मा के अहोरात्र ८६४ कोटि प्रकाश वर्ष की त्रिज्या।

(घ) $\frac{\text{पृथ्वी कक्षा}}{\text{पृथ्वी}} = \frac{\text{तप लोक}}{\text{आकाशगङ्गा}}$

(६) **सत्यलोक**-(क) आकाशगङ्गा ह्ल $२^{२४}$ (या $१०^{७}$)

(ख) $५००^{४}$ सूर्य व्यास से १२ कोटि योजन त्रिज्या।

(ग) महर्लोकह्ल पृथ्वी = सत्यलोकह्ल महर्लोक = $१०^{१४}$।

(४) सूक्ष्म माप-पृष्ठ २० पर वराहमिहिर की बृहत्संहिता के सबसे छोटे माप वालाग्र का आकार ४ माइक्रोन दिया गया है। यहां सबसे छोटा माप ही परमाणु कहा गया है। किन्तु परमाणु का वास्तविक आकार भी जैन और बौद्ध ग्रन्थों में दिया गया है। परमाणु से छोटे मण्डल क्रमश: १ लाख भाग छोटे हैं, अत: उनका मापदण्ड भी उसी अनुपात में छोटा होना चाहिये, किन्तु उसका उदाहरण नहीं मिला। प्रसंग से लगता है कि सभी छोटे मापों को अङ्गुष्ठ कहा जाता था और उनके खण्ड का आकार बताया जाता था।

(५) काल के ९ मान-सूर्य सिद्धान्त (१४/१) के अनुसार ९ प्रकार के काल मान हैं- ब्राह्मं पित्र्यं तथा दिव्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।

सौरं सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव।।

बड़े मान से आरम्भ करने पर इनका क्रम है-ब्राह्म,प्राजापत्य, दिव्य, गुरु, चान्द्र, सौर, सावन, नाक्षत्र।विष्णु पुराण(१/५/१९-२५) में ९ सर्ग कहे गये हैं -

प्राकृत-१.महत्तत्व, २.तन्मात्रा, ३.वैकारिक (इन्द्रिय सम्बन्धी)।

वैकृत- ४.मुख्य (पर्वत वृक्ष आदि स्थावर), ५.तिर्यक्स्रोत (कीट-पतंग आदि), ६. ऊर्ध्व स्रोत (देवसर्ग), ७.अर्वाक् स्रोत(मनुष्य-सर्ग),८.अनुग्रह सर्ग(सात्विक और तामसिक)।

प्राकृत तथा वैकृत-९.कौमार सर्ग।

भागवत पुराण(३/१०) में अव्यक्त को मिला कर १० सर्गों का वर्णन है। सर्ग के साथ तुलना करना कठिन है। ९ कालमान सृष्टि के विभिन्न चक्रों के माप हैं। सूर्य सिद्धान्त(१/१०) में दो प्रकार के कालों का वर्णन है-नित्य, जन्य-

लोकानामन्तकृत्काल: कालोऽन्य: कलनात्मक:।

इनकी विशद व्याख्या तिथ्यादि तत्त्व में है-

अनादिनिधन: कालो रुद्र: संकर्षण: स्मृत:।
कलनात् सर्वभूतानां स काल: परिकीर्त्तित:॥
कालस्तु त्रिविधो ज्ञेयोऽतीतोऽनागत एव च।
वर्त्तमानस्तृतीयस्तु वक्ष्यामि शृणु लक्षणम्।
काल: कलयते विश्वं तेन कालोऽभिधीयते॥
कालस्य वशगा: सर्वे देवर्षि सिद्ध किन्नरा:।
कालो हि भगवान् देव: स साक्षात् परमेश्वर:॥
सर्ग पालन संहर्त्ता स काल: सर्वत; सम:।
कालेन कल्यते विश्वं तेन कालोऽभिधीयते॥
येनोत्पत्तिश्च जायेत येन वै कल्यते कला।
सोऽन्तवच्च भवेत् कालो जगदुत्पत्ति-कारक:॥
य: कर्माणि प्रपश्येत प्रकर्षे वर्त्तमानके।
सोऽपि प्रवर्त्तको ज्ञेय: काल: स्यात् प्रतिपालक:॥
येन मृत्यु वशं याति कृतं येन लयं व्रजेत्।
संहर्त्ता सोऽपि विज्ञेय: काल: स्यात् कलनापर:॥
काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा:।
काल: स्वपिति जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रम:॥
काले देवा विनश्यन्ति काले आसुर पन्नगा:।
नरेन्द्रा: सर्वजीवाश्च काले सर्वं विनश्यति॥
त्रिकालात् परतो ज्ञेय आगन्तुर्गत-चेष्टक:।
तथा वर्षा हिमोष्णाख्यास्त्रय: काला इमे मता:॥
तथा त्रयोऽन्येऽपि ज्ञेया उद्यन्मध्यास्तरूपिण:।
सूक्ष्मोऽपि सर्वग: स वै व्यक्ताद्व्यक्ततर: शुभ:॥

संक्षेप में-नित्य काल लोकों का क्षरण करता है , अत: मृत्यु भी कहा जाता है। जन्य काल यज्ञ के चक्रीय क्रम की माप है और इससे गणना की जाती है। इसके अतिरिक्त गीता में अक्षय काल भी कहा गया है , जो अव्यय पुरुष का काल है। लोकों के क्षय (Disorder, decay) की दिशा में जो बढ़ता है वह नित्यकाल है। जब काल नित्य होता है तब पुरुष(विश्व) अनित्य या क्षर हो जाता है-
कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः(गीता ११/३२)
जन्य काल यज्ञ से सम्बन्धित है , जो चक्रीय क्रम में उपयोगी उत्पादन है-
सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।१०।
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।१६।(गीता ३)
इस की गणना सबसे कठिन है, आज भी इसका वास्तविक रूप तय नहीं है, अत: गणना करने वालों में सबसे कठिन काल ही कृष्ण का रूप है-
कालः कलयतामहम् (गीता १०/३०)।
अव्यय पुरुष का न क्षय होता है न चक्रीय क्रम में परिवर्त्तन होता है, उसके लिये-
अहमेवाक्षयः कालो (गीता १०/३३)।
इसे ही ग्रन्थ साहब में अकाल-पुरुष कहा गया है। विभिन्न चक्रों की माप के अनुसार ९ प्रकार के काल-मानों का वर्णन-
(१) ब्राह्म-अव्यक्त से व्यक्त की सृष्टि को ब्रह्मा का दिन तथा उसके लय को रात्रि कहा जाता है (गीता ८/१८)-
अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे। रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके। पुराणों और सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिष ग्रन्थों के अनुसार १२,००० दिव्य वर्षों का १ युग होता है। प्रति दिव्य वर्ष ३६० सौर वर्षों का है। अत:
ब्रह्मा का दिन=१००० युग -१०००ह्व३६०ह्व१२०००=४३२ कोटि वर्ष।
उतने ही मान की रात्रि है। आधुनिक भौतिक ज्योतिष के अनुसार दृश्य जगत् की सीमा प्राय: उतनी ही है जितनी दूर तक ब्रह्मा की अहोरात्रि में प्रकाश जा सकता है, अर्थात् ८६४ कोटि प्रकाश वर्ष त्रिज्या का क्षेत्र।
२. प्राजापत्य-प्रजापति ने यज्ञ आरम्भ किया(गीता ३/१०)। अत: प्रजापत्य मान उस चक्र का मान है जिससे यज्ञ का आरम्भ हुआ। विश्व में रचना का आरम्भ आकाशगंगाओं से हुआ। उनकी निरुद्देश्य गति कर्म है, यज्ञ नहीं। किन्तु

उनका अक्ष भ्रमण यज्ञ चक्र का आरम्भ करता है। अत: वह प्राजानत्य मान या मन्वन्तर है। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा के दिन में १४ मन्वन्तर हैं, अत: १ मन्वन्तर ७१ युगों या ३१ कोटि ६८ लाख वर्षों का है। आकाश गंगा का परिभ्रमण काल आधुनिक ज्योतिष में ठीक तरह से ज्ञात नहीं है। पर आकाशगंगा केन्द्र से त्रिज्या की २/३ दूरी पर सूर्य है जो प्राय: २०-२५ कोटि वर्ष में उस केन्द्र की परिक्रमा करता है। अत: आकाशगंगा का परिभ्रमण काल प्राय: मन्वन्तर के बराबर होना चाहिये।

३.दिव्य मान-दिव्य वर्ष ३६० वर्षों का होता है। यह तीन प्रकार से परिभाषित है। वायु पुराण के २८ व्यासों की सूची में इसे परिवर्त्त युग कहा गया है, अर्थात् ऐतिहासिक परिवर्त्तन का चक्र है। १०० कोटि योजन का लोकालोक भाग की सीमा पर यदि कोई काल्पनिक ग्रह रहेगा तो उसका परिभ्रमण काल प्राय ३६० वर्ष होगा। उससे कुछ कम दूरी पर प्लूटो का चक्र २४८ वर्ष का है। तीसरी व्याख्या है कि किसी स्थान पर उदय-अस्त चक्र के दिन-रात होते हैं। उसी प्रकार उत्तर-दक्षिण गति को भी दिव्य दिन-रात (गीता ८/२४,२५) मानने पर सौर वर्ष ही दिन के बराबर होगा। अत: ३६० दिन के सावन वर्ष की तरह ३६० दिव्य दिनों का दिव्य वर्ष होगा।

४.गुरु मान-गुरु वर्ष १२ वर्ष का चक्र है जिसमें गुरु ग्रह सूर्य की एक परिक्रमा करता है। मध्यम गुरु ग्रह एक राशि जितने समय में पार करता है वह ३६१.०४८६ दिन (सूर्य सिद्धान्त,अध्याय १४) का गुरु वर्ष कहा जाता है। दक्षिण भारत में पैतामह सिद्धान्त के अनुसार सौर वर्ष को ही गुरु वर्ष कहा गया है।

५. सौर मान-सूर्य की १° गति १ दिन, १ राशि गति १ मास तथा परिभ्रमण काल १ वर्ष होता है।

६.चान्द्र मान-सूर्य की तुलना में चन्द्र गति अर्थात् चन्द्रमा की कला (प्रकाशित भाग) का चक्र प्राय: २९.५ दिन का चान्द्र मान है। दर्श से पूर्णिमा तक शुक्ल पक्ष में १५ तिथि (प्राय: १५ दिन) तथा उसके बाद पूर्णिमा से दर्श तक कृष्ण पक्ष में १५ तिथि होती हैं। १२ चान्द्र मास अर्थात् प्राय: ३५४ दिन का चान्द्र वर्ष होता है। उसमें ३१ महीनों के अन्तर से अधिक मास जोड़ कर इसे सौर वर्ष के बराबर किया जाता है।

७. पितर मान-चन्द्रमा के ऊपरी (विपरीत)भाग में पितर रहते हैं। अत: चान्द्र

मास को पितरों का दिन-रात कहा गया है। विपरीत भाग(पृथ्वी से दूर) में रहने के कारण कृष्ण पक्ष पितरों का दिन तथा शुक्ल पक्ष पितरों की रात्रि होती है।३० चान्द्र मास का पितर मास तथा ३० चान्द्र मास का पितृ वर्ष होता है।

८.सावन मान-सूर्योदय से आगामी सूर्योदय तक का सावन दिन, ३० दिन का मास और १२ मास का वर्ष होता है।

९. नाक्षत्र मान-स्थिर नक्षत्रों की तुलना में पृथ्वी का अक्ष भ्रमण काल (२३ घण्टा ५६ मिनट) नाक्षत्र दिन है। उसके हिसाब से ३० दिनों का मास, ३६०दिनों का वर्ष होता है।

६. युग-दो प्रकार के चक्रों के योग से युग होता है। मुनीश्वर ने सिद्धान्त सार्वभौम में ५ प्रकार के युग बताये हैं-

(१) ५ वर्ष, (२) १२ह्न५=६० वर्ष, (३) १२ह्न६०=७२० वर्ष, (४) ६०० ह्न ७२० = ४३२००० वर्ष का कलियुग, (५) कलि ह्न १० = युग।

७ प्रकार के योजन की तरह ७ प्रकार के युग होने चाहिये। यज्ञ या सृष्टि क्रिया की पूर्णता के अनुसार ७ प्रकार के युग इस प्रकार हैं-

(१) संस्कार युग-४ से १९ वर्षों में शिक्षा के क्रम पूरे होते हैं। यह ५ प्रकार के हैं-

(क) **गोपद युग**-४ वर्ष के लीप ईयर की पद्धति में ३६५ १/४ वर्ष की दिन संख्या पूर्ण होती है। यह दिन और वर्ष के चक्रों का योग है तथा ऐतरेय ब्रा. के निम्नलिखित श्लोक पर आधारित है-

कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठन् त्रेता भवति, कृतं सम्पद्यते चरन्।।(७/१३)

प्रथम वर्ष (कलि=गणना का आरम्भ) की गो-धूलि वेला यदि १ जनवरी सन्ध्या ६ बजे आरम्भ हुआ तो उसकी पूर्णता द्वितीय वर्ष १ जनवरी को रात्रि १२ बजे होगी। अत: कलि को सोया हुआ कहा है। द्वितीय या द्वापर वर्ष तीसरे वर्ष २ जनवरी को प्रात: ६ बजे पूर्ण होगा जब संजिहान (जगने का समय) होगा। तृतीय वर्ष त्रेता चौथे वर्ष २ जनवरी दिन १२ बजे पूर्ण होगा जब लोग खड़े होंगे। चौथा वर्ष कृत (पूर्ण) २ जनवरी सन्ध्या ६ बजे समाप्त होगा जब लोग घर लौटते होंगे। इसमें १ लीप ईयर होने से ४ वर्षीय युग पुन: १ जनवरी को ही पूर्ण होगा।

(ख) **५ वर्षीय युग**-याजुष ज्योतिष में ५ वर्षों का युग माना गया है जो माघ शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होता था क्योंकि उसके बाद उसी तिथि नक्षत्र में सूर्य-चन्द्र

की युति होती थी -स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।

स्यात् तदाऽऽदि युगं माघस्तपः शुक्लोऽयनं ह्युदक्।(याजुष् ज्योतिष् ६)

इन वर्षों के नाम वत्सर में-सम्, परि, इदा, अनु, उप-उपसर्ग लगाने से होते थे। सिर्फ वत्सर या इद् वत्सर का अर्थ ३६०दिनों का सावन वर्ष है।

(ग) **१२ वर्षीय युग**-गुरु का परिभ्रमण काल है। चान्द्र मास के अनुकरण पर १२ वर्षीय युग में वर्षों के नाम चैत्र, वैशाख आदि हैं।

(घ) **१९ वर्षीय युग**-प्रभाकर होले की वेदाङ्ग-ज्योतिष व्याख्या (आप्टे भवन, नागपुर) के अनुसार ऋक् ज्योतिष का युग १९ वर्ष का होता है। वहां " पञ्च सम्वत्सरमयं युगम्" (प्रथम श्लोक) का अर्थ है कि १९ वर्षीय युग में ५ वर्ष सम्वत्सर हैं तथा बाकी १४ वर्ष अन्य ४ प्रकार के हैं। याजुष ज्योतिष में भी ५ युगों के ५ह्न५=२५ वर्षों में ६ क्षय वर्ष होने से १९ वर्षों का युग होता है-

क्षयं सम्वत्सराणां च मासानां च क्षयं तथा(महाभारत, शान्तिपर्व,३०१/४६)।

(ङ) **ग्रहण युग**- सूर्य -राहु की संयुक्त गति से १८ सौर वर्ष १०.५ दिनों में ग्रहण चक्र पूर्ण होता है। इसमें १९ वर्षीय ऋक् युग की ३७१ तिथियों में प्रत्येक के ९ भाग करने पर ३७१ह्न९=३३३९ भांश होते हैं-

त्रीणि शतानि त्रीसहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चा सपर्यन्।

(ऋक् ३/९/९, १०/५२/६, वा.यजु.३३/७)

३३३९ तिथि = १११ चान्द्र मास + ९ तिथि।

यह २२३ चान्द्र मास के सरोस चक्र का आधा है।

(२) मनुष्य युग-मनुष्य जीवन का कर्म समय प्रायः६० वर्षों का होता है जो गुरु वर्षों का चक्र है। इसमें गुरु की ५ तथा शनि की २ परिक्रमायें होती हैं। यह सभी ज्योतिष ग्रन्थों तथा कई पुराणों में है। इसे वेद में अङ्गिरा काल कहा गया है-

आदित्याश्च ह वा आङ्गिरसश्च स्वर्गे लोके स्पर्धन्त-वयं पूर्वे एष्यामो वयमिति। ते हाऽऽदित्याः पूर्वे स्वर्गं लोकं जग्मुः, पश्चेवाङ्गिरसः, षष्ट्यां वा वर्षेषु (ऐतरेय ब्रा.१८/३/७)। आदित्याश्चाङ्गिरसश्च सुवर्गे लोकेऽस्पर्धन्त ...त आदित्या एतं पञ्च होतारमपश्यन्(तैत्तिरीय ब्रा.२/२/३/५)।

यहां, आदित्य=१२, पञ्च होता=५ह्न१२=६० वर्ष।

शताब्दी -काल में सप्तर्षि १ नक्षत्र चलते हैं। ऋक् ज्योतिष के १९ वर्षीय युग समाप्त होने पर पुनः वही नक्षत्र आता है। ५ युगों के १९ह्न५ वर्षों के बाद ५ वर्षों

का याजुष युग लेने पर चन्द्रमा १ नक्षत्र अधिक चला जाता है। कल्हण की राजतरङ्गिणी में इसे ही लौकिक वर्ष कहा है।

३६० वर्षों के दिव्य वर्ष का १/३ भाग १२० वर्ष भी ग्रहदशा चक्र में मनुष्य आयु मानी गयी है।

(३) परिवर्त्त युग-१ दिव्य वर्ष या ३६० सौर वर्ष में ऐतिहासिक परिवर्त्तन होते हैं। अत: यह परिवर्त्त युग कहा गया है। वायु पुराण(२३/११४-२२६) में २८ व्यासों की गणना के समय कभी उसे द्वापर कभी परिवर्त्त कहा गया है। अत: युगों का विभाग भी इन्हीं परिवर्त्त खण्डों में है। उन्हें ही १०वां या १५ वां त्रेता आदि कहा गया है। इसी प्रकार का वर्णन कूर्म(अध्याय ५२), ब्रह्माण्ड पुराणों में भी है। ब्रह्माण्ड पुराण (१/२/२९/१९) में २६,००० वर्षों का युग कहा गया है। उसे ही (१/२/९/३६,३७) में ७१ युगों का मन्वन्तर कहा गया है-

षड् विंशति सहस्राणि वर्षाणि मानुषानि तु। वर्षाणां तु युगं ज्ञेयं-२/९/१९

तस्यैकसप्तति युगं मन्वन्तरमिहोच्यते-२/९/३७

७१ह्न३६० =२५,५६० या प्राय: २६,००० वर्ष।

(४) सहस्र युग-भागवत पुराण(१/१/४) में शौनक ऋषि के हजार वर्ष के सत्र का वर्णन है। एक मनुष्य सौ वर्ष तक ही जीता है पर धर्म संस्कार आदि के मानदण्ड हजारों वर्षों तक चलते हैं। शौनक सत्र के बाद पुराणों का पुन: सम्पादन ३००० वर्ष बाद विक्रमादित्य के समय हुआ जो अभी २००० वर्षों से चल रहा है (भविष्य पुराण ३/३/१/२-४)।

प्राय: सहस्र वर्ष २ दिव्य वर्षों (७२० वर्ष-मुनीश्वर) या ३ दिव्य वर्षों (१,०८० वर्ष) का होगा। २७०० दिव्य वर्ष या ३०३० मनुष्य वर्ष का सप्तर्षि युग होता है-

त्रीणि वर्ष सहस्राणि मानुषेण प्रमाणत:। त्रिंशदधिकानि तु मे मत:सप्तर्षि वत्सर:। (ब्रह्माण्ड पु.१/२/२९/१६, वायु पु.५७/१७)

सप्तविंशति पर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्र मण्डले। सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ते पर्ययेण शतं शतम्। (वायु पु.९९/४१९)।

यहां,मानुष वर्ष =

चान्द्र-परिक्रमा वर्ष =२७.३ दिन चन्द्र परिक्रमा ह्न१२=३२७.५३६४ दिन।

३०३० मानुष वर्ष =२७१७ सौर वर्ष (३६५.२५ दिन का)

तारे प्राय: स्थिर होते हैं, अत: उन्हें नक्षत्र (क्षत्र=चलना) कहा जाता है।

किन्तु सप्तर्षि मण्डल के पूर्व भाग में स्थित पुलस्त्य, क्रतु तारों को मिलाने वाली रेखा विपरीत गति से नक्षत्र को १०० वर्षों में पार करती है-

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते ह्युदितौ दिवि।
तयोऽस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यस्तमं निशि।।१०५।।
तेन सप्तर्षयो युक्ता तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम्(विष्णु पु.४/२४/१०५; वायु पु.९९/४२१,४१२; ब्रह्माण्ड पु.२/३/७४/२३३,२३४)।

रोमक सिद्धान्त का युग २८५० (१९ वर्ष का ऋक् युगह्न१५०) वर्षों का है-वराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका।

५.ध्रुव या क्रौञ्च युग-यह सप्तर्षि युग का ३ गुणा या अयन चक्र(२६००० वर्ष) का प्राय: १/३ है। इसमें ९०९० मानव वर्ष या ८१०० सौर वर्ष होंगें-

नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषानि तु।
अन्यानि नवतिश्चैव ध्रुव: सम्वत्सर: स्मृत:।।
(ब्रह्माण्ड पु.१/२/२९/१८; वायु पु.५७/१८ में क्रौञ्च सम्वत्सर)

प्राय: इसी आकार का गुरु महायुग भी माना जा सकता है। सौर मत से मध्यम गुरु गति का गुरु वर्ष लेने पर ८५ वर्ष में १ वर्ष कम अर्थात् ८४ सौर वर्ष होते हैं। ६० वर्षों का चक्र ८५ बार होते से ५१०० वर्षों का युग होगा। वाल्मीकि रामायण के जन्मकालिक ग्रह स्थिति के अनुसार राम का जन्म ११-२-४४३३ ई.पू. १०-४७-४८ बजे स्थनीय समय को हुआ था। उस समय विष्णुधर्मोत्तर पुराण (८२/७,८) के अनुसार सौर तथा पैतामह दोनों मतों से प्रभव वर्ष से गुरु वर्ष का चक्र आरम्भ हुआ था। उससे ५१०० वर्ष पूर्व ९५३३ ई.पू. में भी मत्स्य अवतार के समय दोनों चक्र एक साथ आरम्भ हुए थे। होमर के इलियड के अनुसार एटलाण्टिस का अन्तिम भाग ९५६४ई.पू में डूबा था। पारसी गाथाओं के अनुसार जल प्रलय ९८४४ ई.पू में हुआ।

६. अयन या इतिहास युग- आधुनिक ज्योतिष के अनुसार प्राय: २६,००० वर्षों में पृथ्वी का अक्ष शंकु के आकार में एक चक्र लगाता है। इसी काल को ब्रह्माण्ड पुराण में एक युग कहा गया है (३.परिवर्त्त युग में वर्णित)। किन्तु पृथ्वी पर जल -प्लावन का चक्र दो कारणों से होता है-पृथ्वी के अक्ष या धुरी का भ्रमण चक्र विपरीत दिशा में २६००० वर्ष में, तथा पृथ्वी कक्षा के दूर विन्दु (मन्दोच्च) का भ्रमण १ लाख वर्षों में। इन दोनों कारणों से २१,६०० वर्षों में जल-प्लावन का चक्र होता है-

१/२१,६००=१/२६,००० +१/१,००,०००

इनका मध्यम २४,००० वर्षों का चक्र लेने पर बाकी अयन गति २१,६०० वर्ष अर्थात् प्रति वर्ष १ कला होती है। उसके कारण ग्रह कक्षा में २४,००० वर्ष के चक्र में संशोधन करना पड़ता है-१२,००० वर्ष के अर्ध चक्र में धनात्मक तथा दूसरे अर्ध चक्र में ऋणात्मक। यह प्राचीन काल में (आगम द्वारा) निर्धारित हुआ था, यह भास्कराचार्य ने माना है, उसका अन्य प्रमाण नहीं खोज पाये-

खाभ्रखार्कै (१२,०००) हृता: कल्पयाता: समा: शेषकं भागहरात् पृथक् पातयेत्।
यत्तयोरल्पकं तद् द्विशत्या(२००) भजेल्लिप्तिकाद्यं तत् त्रिभि: सायकै:(५) ।।
पञ्च पञ्चभूमि:(१५) करा(२)भ्यां हतं भानु चन्द्रेज्यशुक्रेन्दुतुङ्गेष्वृणम्।
इन्दुना(१०) दस्रबाणै:(५२) करा(२) भ्यां कृतैर्भौमसौम्येन्दुपातार्किषु स्वं क्रमात्।
(भास्कराचार्य-२ का सिद्धान्त शिरोमणि, भूपरिधि-७,८)

स्वोपज्ञ भाष्य-अत्रोपलब्धिरेव वासना। यद्वर्ष सहस्रषट्कं यावुपचयस्ततोऽपचय इत्यत्रागम एव प्रमाणं नान्यत् कारणं वक्तुं शक्यत इत्यर्थ:।

इसके पूर्व ब्रह्मगुप्त ने भी बिना कारण बताये इस संशोधन का उल्लेख किया है-

खखखार्क(१२०००) हृताब्देभ्यो गतगम्याल्पा: खशून्ययमल (२००) हृता:।
लब्धं त्रि(३) सायकं (५) हतं कलाभिरूनौ सदाऽर्केन्दू।६०।
शशिवत् जीवे द्विहतं चन्द्रोच्चे तिथि (१५) हतं तु सितशीघ्रे।
द्वीषु(५२)हतं च बुधोच्चे,द्वि(२)कु(१) वेद हतं च पात कुज शनिषु।६१।
(ब्रह्मगुप्त का ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, सुधाकरद्विवेदी संस्करण १९०२, मध्यमाधिकार)

सूर्य सिद्धान्त, त्रिप्रश्नाधिकार(९,१०) भी १८०० वर्षों में २७° अयन-दोलन का उल्लेख करता है, जो २४,००० वर्षों में ३६०° के चक्र के बराबर है।

धन और ऋण संस्कारों के कारण १२,००० वर्षों के युग आरोही तथा अवरोही क्रम से होते हैं, जिसे जैन ज्योतिष तथा पुराणों में उत्सर्पिणी तथ अवसर्पिणी कहा गया है। इसे वेद में उद्ग्राभ तथा निग्राभ कहा गया है। १२,००० दिव्य वर्षों का युग सभी पुराणों में है-इतिहास के प्रसंग में दिव्य वर्ष का अर्थ सौर वर्ष है, जो सप्तर्षि वर्ष के वर्णन में वायु पुराण में है। इसमें कलि १२०० वर्षों का तथा २,३,४ गुणा द्वापर, त्रेता, और सत्य युग आते है। सत्य युग, त्रेता, द्वापर, कलि का क्रम अवरोही है। इस क्रम में कलि का आरम्भ ३१०२ ई.पू. में हुआ जो १९०२ ई.पू. तक रहा। उसके बाद आरोही क्रम के युग में कलि ७०२ ई.पू.तक, उसके बाद २४०० वर्ष का

द्वापर १७०१ ई.तक रहा। इसके बाद से ३६०० वर्ष का त्रेता चल रहा है, जिसमें यज्ञ अर्थात् वैज्ञानिक उत्पादन की प्रधानता रहती है-

त्रेता युगे विधिस्त्वेष यज्ञानां न कृतेयुगे।द्वापरे विप्लवं यान्ति यज्ञा:कलियुगे तथा। त्रेतायां तुसमस्ता ये प्रादुरासन् महाबला: ।संयन्तार:स्थावराणांजङ्गमानां चसर्वश: (महाभारत, शान्तिपर्व,२३२/३१,३४)।

आरोही-अवरोही क्रम का वर्णन स्वामी युक्तेश्वर गिरि ने अपनी पुस्तक(The holy Science) में किया है,जो योगोदा सत्संग आश्रम,रांची से प्रकाशित है। पर वहां २४००० वर्षो का अयन चक्र माना है। अयन-चक्र २६००० वर्ष का, किन्तु अयनाब्द-युग २४००० वर्षों का है , जिसमें पुराणों की घटनायें वर्णित हैं-

त्रेता युगमुखे पूर्वमासन् स्वायम्भुवेऽन्तरे।...ये वै ब्रजकुलाख्यास्तु आसन् स्वायम्भुवेऽन्तरे। कालेन बहुनातीता अयनाब्द-युगक्रमै: (वायुपु. ३१/३,२९)

७.ज्योतिषीय युग-३६० सौर वर्षों का दिव्य वर्ष मानकर १२,००० दिव्य वर्षों का ज्योतिषीय युग सभी पुराणों तथा ज्योतिष पुस्तकों में वर्णित है। इसकी ३ व्याख्यायें हैं-(क)भास्कराचार्य-२ ने सिद्धान्त शिरोमणि,भगणोपपत्ति अध्याय में कहा है कि इस काल में सभी ग्रह अपना भगण(परिक्रमा) पूर्ण करते हैं।

(ख) एक अन्य मत है कि पृथ्वी का उत्तर ध्रुव वर्त्तमान पामीर से उत्तर ध्रुव गया है। इसका विषुव रेखा से उत्तर ध्रुव जाकर लौटने के चक्र के ४ खण्ड कलि, द्वापर, त्रेता, और कृत युग हैं(पं. मधुसूदन ओझा का इन्द्र-विजय-जोधपुर विश्वविद्यालय प्रकाशन)।चुम्बकीय ध्रुवों का परिवर्त्तन चक्र भी प्राय: इसी काल में होता है। ज्योतिषीय काल में महाद्वीपों की उत्तर दिशा में गति दीख रही है। यह दोनों सम्भवत: ग्रह गतियों का संयुक्त प्रभाव है।

(ग) पृथ्वी की कक्षा का छोटा बड़ा होना या उसका आकार दीर्घवृत्त से प्राय: वृत्ताकार होने का चक्र भी प्राय: इसी काल का है। इन मतों का सटीक अध्ययन नहीं हुआ है।

ज्योतिषीय युग ४३,२०,००० वर्ष का है।इसके ४ खण्ड सदा अवरोही क्रम में होते हैं - हैं-सत्य,त्रेता,द्वापर,कलि। इनका मान ४,३,२,१ अनुपात में बताते हैं,किन्तु आर्यभट(४७६ई.) ने इनको बराबर माना है। दोनों मतों से कलि का आरम्भ ३१०२ ई.पू. में हुआ है। अत: इनको ऐतिहासिक युग मानने की भूल होती है। १००० युगों का १ कल्प या ब्रह्मा का दिन है। इतने ही मान की रात्रि है।

३६० अहोरात्र का ब्रह्मा का वर्ष है, तथा १०० वर्षों की ब्रह्मा की परमायु या परा है। इस काल में प्राय: ३ह्न$१०^{१७}$ दिन हैं, अत: $१०^{१७}$ को परा कहते हैं।

७.युग-चक्र-६२००० ई.पू. तक का कालमान -

चक्र क्रम ई.पू.वर्ष युग-आरम्भ ग्लेसियल चक्र

६१,९०२ सत्य शीतयुग ६९,२००(पूर्व काल का त्रेता)
अवरोही ५७,१०२ त्रेता जलप्लावन ५८,१००-मणिजा युग,च्युति गणना के
५३,५०२ द्वापर अनुसार कई सूक्तों का काल(पं.दीनानाथ शास्त्री
अन्धयुग <u>५१,१०२ कलि</u> चुलेट का वेदकाल-निर्णय,१९२५,इन्दौर)
(प्रथम) ४९,९०२ कलि
आरोही ४८,७०२ द्वापर
४६,३०२ त्रेता शीतयुग-४५,५००
<u>४२,७०२ सत्य</u>

३७,९०२ सत्य
अवरोही ३३,१०२ त्रेता जलप्लावन-३१,२००
२९,५०२ द्वापर आद्यत्रेता-ब्रह्मा-वराहकल्प
आद्ययुग <u>२७,१०२ कलि</u> २९,१०२
(स्वाम्भुव)२५,९०२ कलि २७,३७६-ध्रुव-०
द्वितीय २४,७०२ द्वापर ४३ह्न३६०=१६,०००
आरोही २२,३०२ त्रेता शीतयुग-२०,००० १९,२७६-ध्रुव-१
<u>१८,७०२ सत्य</u>

१३,९०२ सत्य १३,१००-वैवस्वत मनु
अवरोही ९,१०२ त्रेता जलप्लावन-९,२०० ११,१७६-ध्रुव-२
५,५०२ द्वापर २८ह्न३६०=१०,००० ८,४७६-इक्ष्वाकु-१
वर्त्तमान <u>३,१०२ कलि</u> ३१०२-कलि ५,७७६-सप्तर्षि-२
(वैवस्वत)१९०२ कलि १८०५-सिद्धार्थबुद्ध का निर्वाण ३०७६-लौकिक-३
तृतीय ७०२ द्वापर ७५५-शूद्रक,७२५-मालवगण,६१२-शाकम्भरी शक
आरोही १६९९ई.त्रेता १७००-औद्योगिक क्रान्ति
<u>५२९९ई. सत्य २०००</u>-त्रेता-सन्ध्या का अन्त-सूचना विज्ञान युग

टिप्पणी-(१) **तृतीय कल्प या युग**-वर्त्तमान २४,००० वर्षीय युग वैवस्वत मन्वन्तर से आरम्भ हुआ है जिसमें सत्य,त्रेता के बाद द्वापर का अन्त ३१०२ ई.पू. में हुआ तथा कलि का आगमन हुआ। इससे स्पष्ट है कि पहले अवरोही क्रम(अवसर्पिणी) का १२००० वर्षीय युग होता है, तब आरोही या उत्सर्पिणी क्रम का १२००० वर्ष आता है। इसे ऐतिहासिक ब्रह्मा का दिन कहा जा सका है। भविष्य पुराण,प्रतिसर्ग के अनुसार अभी ब्रह्मा का तीसरा कल्प चल रहा है-

कल्पाख्ये श्वेतवाराहे ब्रह्माब्दस्य दिनत्रये (१/१/३)।

(२) **ब्रह्मा का काल**-महाभारत, शान्तिपर्व,अध्याय ३४८ में **७ ब्रह्मा** का वर्णन है-१.मुख्य(नारायण के मुख से)-वैखानसको उपदेश,२.नेत्र से-सोम से उपदेश पाकर रुद्र ,वालखिल्यों को,३.वाणी से(इन्हें शान्तिपर्व ३४९/३९ में वाणी का पुत्र अपान्तरतमा कहा है)-त्रिसुपर्ण ऋषि,४.आदि कृत-युग में(३४)कर्ण से-आरण्यक,रहस्य,और संग्रह सहित वेद-क्रम से स्वारोचिष मनु,शंखपद,दिक्पाल सुवर्णाभ को उपदेश,५. आदि कृतयुग(४१) में ही नासिका द्वारा ब्रह्मा-क्रम से वीरण, रैभ्यमुनि,दिक्पाल कुक्षि को उपदेश, ६.अण्डज ब्रह्मा(शान्तिपर्व३४९/१७ में भी) से बर्हिषद् मुनि, ज्येष्ठसामव्रती हरि राजा अविकम्पन को उपदेश।७.पद्मनाभ ब्रह्मा से दक्ष,विवस्वान्,वैवस्वत मनु,इक्ष्वाकु को उपदेश। शङ्कराचार्य के मठाम्नाय सेतु में कृत का विश्वगुरु ब्रह्मा,त्रेता में वसिष्ठ,द्वापर में व्यास तथा कलि में शंकराचार्य-कृते विश्वगुरुर्ब्रह्मा त्रेतायामृषिसत्तमः(वसिष्ठ) द्वापरे व्यास एव स्यात् कलावत्र भवाम्यहम् ।।७३ ।।

शिवपुराण कोटिरुद्रसंहिता में ज्ञान-स्रोत के रूप में शिव को ब्रह्मा,वसिष्ठ,व्यास कहा गया है(अध्याय ३५-३५,नामसंख्या ५०,४९८,९८२)। विष्णुपुराण आदि में **२८ वसिष्ठों** का वर्णन है।ऋक् ९/९७/१-३० के वसिष्ठ ऋषि-१.वृषगण,२.मन्यु,३.उपमन्यु,४.व्याघ्रपाद,५.मैत्रावरुणि-पैजवन सुदास का समकालीन(ऋक् ७/३२,३३),६.उसका पुत्र शक्ति, ७.शक्तिपुत्र पराशर, ८.इन्द्रप्रमति, ९.कर्णश्रुद्,१०.मृळीक,११.वसुक। अन्य मन्त्रद्रष्टा वसिष्ठ हैं-१२.कुण्डिन्,१३.सुद्युम्न,१४.वसुमत्। पुराणों के अन्य वसिष्ठ हैं-१५.धर्म- नारायण के शिष्य और शिव के अवतार,१६.देवराज-अयोध्या के राजाओं त्रय्यारुण, त्रिशङ्कु,हरिश्चन्द्र के काल में,१७.आपव-महिष्मती के कार्त्तवीर्य अर्जुन का काल,१८.अथर्व निधि-अयोध्या राजा बाहु का काल,१९.श्रेष्ठभाज-अयोध्या राजा

मित्रसह सुदास या कल्मषपाद के साथ,२० अथर्वनिधि(द्वितीय)-अयोध्या राजा दिलीप खट्वाङ्ग के साथ,२१.दाशरथि राम के गुरु,२२.सुवर्चस-हस्तिनापुर राजा संवरण का काल,२३.राजा हस्तिन् के काल का,२४.अयोध्या राजा मुचकुन्द के काल का,२५.वसिष्ठ-स्मृति का लेखक,२६.चैकितानव-गार्ग्य स्थिरक का शिष्य,२७.विद-पुत्र,वसिष्ठ , काम का रचयिता,२८.ऊर्ज-सप्तर्षि।
वर्त्तमान श्वेताश्वतर कल्प के मुख्य ब्रह्मा स्वायम्भुव मनु थे जो कलि आरम्भ से २६,००० वर्ष पूर्व हुये थे। इन्हें ही बाइबिल में आदम कहा गया है-
स वै स्वायम्भुवः पूर्वपुरुषः मनुरुच्यते(३६)
तस्य एकसप्तति युगं मन्वन्तरमिहोच्यते(३७)-ब्रह्माण्ड पु.(१/२/९)
षड्विंशति सहस्राणि वर्षाणि मानुषानि तु।
वर्षाणां युगं ज्ञेयं...(ब्रह्माण्ड१/२/२९/१९)।
आदमोनाम पुरुषो पत्नी हव्यवती तथा..(भविष्य प्रतिसर्ग १/४/१६)
वैवस्वत मनु १६००० वर्ष या ४३ युग (=४३ह३६० वर्ष) बाद-
षोडशाब्द सहस्रे च तदा द्वापरे युगे(भविष्यपु.प्रतिसर्ग पर्व.१/४/२६)
अष्टाविंशति समाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे(७६)(२८ह३६० वर्ष बाद कलि)
चत्वारिंशत् त्रयश्चैव भवितास्ते महात्मनः।(वैवस्वत तक ४३ह३६० वर्ष)
अवशिष्टं युगाख्याते ततो वैवस्वतो ह्ययम्(७७)-मत्स्यपु.(अ.१२९)
स्वायम्भुव ब्रह्मा का काल १२००० वर्ष के सावन युगमें आद्य त्रेता कहा गया है-
तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेता युगमुखे तदा(वायु.९/४६)
त्रेतायुगमुखे पूर्वमासन् स्वायम्भुवेऽन्तरे(वायु.३१/३)
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेता युगे तदा(वायु.३३/५)
किन्तु व्यास रूप में इनका काल द्वापर(द्वितीय पुराण निर्माण) कहा है-
अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदा व्यस्ता महर्षिभिः।
प्रथमे द्वापरे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा।(वायुपु.अध्याय २३)।
इसके अतिरिक्त अजपृश्नि ऋषियों या अथर्वा-अङ्गिरा से भी वेद उत्पन्न हुये हैं-
अजान् ह वै पृश्नीन् तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भू-अभ्यानर्षत्।तद् ऋषयोऽभवन्।
त एवं ब्रह्मयज्ञमपश्यन्।(तैत्तिरीय आ.२/९/१)
आदङ्गिरा प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया।
सर्वं पणेःसमविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः(ऋक् सं१/८३/४)

यज्ञैरथर्वा प्रथम: पथस्तते तत: सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।
आ गा आजदुशना काव्य: स चा यमस्य जातममृतं यजामहे(ऋक्.१/८३/५)

(३) युग-खण्ड-पुरानी सृष्टि के बाद यह (श्वेत-) वाराह-कल्प आरम्भ हुआ-
यश्चायं वर्तते कल्पो वाराह: सांप्रत: शुभ:(ब्रह्माण्ड पु.१/२/६/६-८)
युग-खण्डों की गणना इसी कल्प के लिये है। व्यास गणना में हर युग को परिवर्त कहा गया है। १ परिवर्त=३६० वर्ष (वृत्त के अंश)
१ त्रेता = ३६०० वर्ष = १० परिवर्त युग।
दो त्रेताओं का आरम्भ २२,३०२ तथा ९,१०२ ई.पू.में हुआ। इनमें १०+१०=२० परिवर्त युग हैं। यह ५,५०२ ई.पू. में समाप्त होने पर भी त्रेता परिवर्तों की गणना चलती रही। उसके बाद ३ चक्र ५५०२-३ह्व३६०= ४४२२ ई.पू. में पूर्ण हुये। वाल्मीकि रामायण में राम जन्म की ग्रह-स्थिति के अनुसार उनका जन्म ११-२-४४३३ ई.पू. में हुआ था।११ वर्ष के बाद चौथा त्रेता आरम्भ हुआ। अत: पूर्व के २ त्रेता मिलाकर वह २४वें त्रेता में थे (वायु पु.७०,८६,९८ अध्याय)। दत्तात्रेय १०वें त्रेता में थे जिसका अन्त १८७०२ ई.पू. में हुआ।परशुराम १९वें त्रेता अर्थात् द्वितीय चक्र के ९वें खण्ड में थे, अर्थात् ५५०२+२ह्व३६०= ६२२२ से ६५८२ ई.पू. तक।उनके काल से ६१७७ ई.पू.में कोल्लम संवत् आरम्भ हुआ। मान्धाता १५वें त्रेता अर्थात् दूसरे त्रेता के ५वें खण्ड में थे=९१०२ह्व४ह्व३६०=७६६२ से ७३०२ ई.पू. तक। उनके १८ पीढ़ी बाद बाहु था जिसे यवनों ने पराजित किया था -
रुरुकात्तु वृक: पुत्रस्तस्माद् बाहुर्विजज्ञिवान्।११९।
हैहयैस्तालजंघैश्च निरस्तो व्यसनी नृप:।
शकैर्यवनकाम्बोजै: पारदै: पह्लवैस्तथा ।१२०।(ब्रह्माण्ड पु.२/३/६३)
मेगास्थनीज के अनुसार जुलाई(पुरु युद्ध के समय वर्षा काल) ३२६ ई.पू.के सिकन्दर आक्रमण के ६४५१ वर्ष ३ मास पूर्व प्रथम यवन आक्रमण हुआ था, अर्थात् अप्रैल ६७७७ ई.पू. या मान्धाता से ८-९ सौ वर्ष बाद। उसके बाद बाहुपुत्र सगर ने यवनों को भगाया। ये ययातिपुत्र अनु के वंशजथे अत: आनव(Ionian) कहलाते थे। सगर के ७० पीढ़ी बाद बृहद्बल था जो ३१३८ ई.पू. के महाभारत युद्ध में मारा गया। उसके बाद ३० पीढ़ी तक सूर्यवंश सुमित्र तक चला जिसका १६३४ ईपू. में महापद्मनन्द ने अन्त किया। नन्द और उसके ८ पुत्रों(२ पीढ़ी) ने १०० वर्ष तक शासन किया। तब १२ मौर्य+१० शुंग+४ कण्व+३० आन्ध्र राजाओं ने

शासन किया। उसके बाद गुप्त काल के चन्द्रगुप्त-१ के समय ३२६ ई.पू. में सिकन्दर का आक्रमण हुआ। इस प्रकार १६० पीढ़ी होती है, किन्तु मेगास्थनीज ने १५३ कहा है। संभवत: बीच की कुछ पीढ़ी के व्यक्ति राजा नहीं हुये थे, या आन्ध्र वंश आदि में एक ही पीढ़ी के २ व्यकित राजा हुये। इस काल में २ बार गणतन्त्र था-१२० वर्ष के लिये परशुराम काल में(२१ गणतन्त्र या २१ बार क्षत्रियों का विनाश), तथा ३०० वर्ष के लिये मालवगण। यह ७५६ ई.पू. के शूद्रक शक से ४५६ ई.पू. के श्रीहर्ष विक्रम संवत् तक था। यल्लयाचार्य के ज्योतिष-दर्पण में २३४५ कलि वर्ष या (३१०१-२३४५)=७५६ ई.पू. से शूद्रक संवत् का आरम्भ है-
बाणाब्धिगुणदस्रोना(२३४५) शूद्रकाब्दा: कलेर्गता:।७१।
भविष्य पु.प्रतिसर्ग(३/६/४४-४७) के अनुसार इस काल में पश्चिम एसिया के असुरों के आक्रमण के प्रतिकार के लिये अर्बुद पर्वत पर ४ मुख्य राजकुलों का संघ बना-परमार,प्रतिहार,चालुक्य,चाहमान। ४ कुलों को एकत्र करना के कारण शूद्रक (मूल नाम इन्द्राणीगुप्त-अवन्तिसुन्दरी कथा ४/१७५) को शूद्रक तथा ७२५ई.पू.के इस वर्ष को कृत संवत् (मन्दसौर शिलालेख-श्रीर्मालिवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते)कहा गया। मालव(भारत मे पश्चिम भाग में माला की तरह) क्षेत्र का संघ हाने से यह मालव-गण हुआ। अग्नि के सामने ४ कुलों द्वारा देशरक्षा का प्रण लेने या अग्रणी(अग्रि)होने से इन्हें अग्निकुल तथा शूद्रक को अग्निमित्र कहा गया(अमरकोष की क्षीरस्वामी टीका-शूद्रकस्त्वग्निमित्राख्यो,२/८/१)।
वराहमिहिर ने ६१२ ई.पू.का शक-काल बृहत्संहिता(१३/३) में कहा है-
आसन् मघासु मुनय: शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्-द्विक-पञ्च-द्वि(२५२६ युधिष्ठिर शक३६ कलिपूर्व से)शककालस्तस्यराज्ञस्य
परिहार-प्रतिहार कुलों ने असुर आक्रमण रोका, किन्तु ६१२ ई.पू. में उसका पूर्ण विनाश चाहमान ने किया(असीरिया की राजधानी निनेवे ध्वस्त हुयी)। इस काल में मगध के ब्राह्मण वंश में अजिन-पुत्र बुद्ध का जन्म हुआ जो विष्णु अवतार थे। शक्ति अवतार शाकम्भरी भी हुआ(दुर्गासप्तशती ११/४९), अत: शाकम्भरी के चौहान कहे जाते हैं। बाद में परमार वंशी श्रीहर्ष ने भी ४५७ ई.पू. में शकों को पराजित कर अपना संवत् चलाया(अलबरूनी का-भारत)। यह हर्ष- विक्रम शंकराचार्य के गुरु गोविन्दपाद के द्वितीय पुत्र थे।

(४) कश्यप और मन्वन्तर-वायु, कूर्म, ब्रह्माण्ड पुराणों में २८ व्यासों की सूची है, जिसमें प्रथम स्वायम्भुव मनु ब्रह्मा थे। द्वितीय कश्यप भी ब्रह्मा थे, अतः दोनों के बीच पर्याप्त समय बीता होगा। २८वें व्यास कृष्णद्वैपायन महाभारत काल में थे।ज्योतिषीय कल्प में १४ मनु एक के बाद एक आते हैं। पहले ७ मनु का काल सूर्योदय से मध्याह्न की तरह है। उसी प्रकार अगले ७ मनु में ह्रास होता है, अतः इन्हें सावर्णि(=एक समान) मनु कहा जाता है। ऐतिहासिक युग में, सावर्णि मनु प्रथम ७ मनु के भाई(एक वर्ण या गोत्र के) तथा एक ही काल के हैं।

क्रम	**मुख्य मनु**	**सावर्णि मनु**
१.	स्वायम्भुव	मेरु सावर्णि
२.	स्वारोचिष	दक्ष सावर्णि
३.	उत्तम	ब्रह्म सावर्णि
४.	तामस	धर्म सावर्णि
५.	रैवत	रुद्र सावर्णि
६.	चाक्षुष	रौच्य
७.	वैवस्वत	भौत्य

ब्रह्माण्ड पुराण(१/२/३६/६५) के अनुसार ४ मनु-स्वारोचिष,उत्तम, तामस, रैवत-स्वायम्भुव के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत के वंशज थे। इनमें स्वारोचिष की माता स्वायम्भुव मनुकी पुत्री आकूति थी जिसका विवाह रुचि प्रजापति(रौच्य मनु के पिता) से हुआ था। अन्य ३ प्रियव्रत के पुत्र थे-

स्वारोचिषश्चोत्तमोऽपि तामसो रैवतस्तथा।
प्रियव्रतान्वयाह्येते चत्वारो मनवः स्मृताः ।।

५ सावर्णि मनु दक्ष पुत्री प्रिया(या क्रिया) की सन्तान थे-

सावर्ण मनवस्तात पञ्च तांश्च निबोध मे।(ब्रह्माण्ड पु.३/४/१/२३,२४)
परमेष्ठिसुतास्तात मेरु सावर्णतां गताः। दक्षस्येते दौहित्राः प्रियायाः तनयः नृप।

हरिवंश पुराण(२/१५) के अनुसार ध्रुव के पौत्र रिपु का पुत्र चाक्षुष मनु थे। उसके बाद रौच्य तथा भौत्य मनु हुये-

चाक्षुष स्यान्तेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य च।
रुचेःप्रजापतेःपुत्रो रौच्यो नामाभवत्सुतः(वायु पु.१००/५४)

वायु पु.(४/१००,५८/३०) में प्रायःयही वर्णन है।

पुराणों में स्वायम्भुव से चाक्षुष तक ४० तथा उसके बाद वैवस्वत मनु तक १२ पीढ़ी दी हुयी है जो स्पष्टत:अपूर्ण सूची है। कश्यप(ब्रह्मसावर्णि) का काल चाक्षुष से पृथु तक ५ पीढ़ी का है। बीच में वृ,अंग,वेन हुये।

स्वायम्भुव.................चाक्षुष.................वैवस्वत

४० पीढ़ी १२ पीढ़ी

५२ पीढ़ी (अपूर्ण सूची)= १५,१२० वर्ष।

अत: १ पीढ़ी = १५१२०ह्न५२=२९० वर्ष।

चाक्षुष काल=२९१०२(स्वायम्भुव)-४०ह्न२९०=१७,५०० ई.पू.

पृथु=१७,५००५ह्न२९०=१६,०५० ई.पू.

अत: कश्यप काल १७,५०० से १६,०५० ई.पू. तक है।

इसके बाद ११वें व्यास ऋषभ तक प्रत्येक का काल २ परिवर्त्त माना जा सकता है। षष्ठ व्यास वैवस्वत यम का समय ४ परिवर्त्त माना गया है क्योंकि उस समय जलप्लावन हुआ था। बाकी व्यासों का काल १-१ परिवर्त्त है।

(५) जलप्लावन का काल आधुनिक ग्रन्थों जैसे मीर प्रकाशन, मास्को का The Earth है। ये सभी त्रेता में हैं,अत: पुराणों का सावन युग विज्ञान-सम्मत है। इसके बाद यज्ञ या विज्ञान का युग आता है, उदाहरणत: आधुनिक युग में त्रेता १७०० ई.से वैज्ञानिक विकास शुरु हुआ जो सन्ध्या पूर्ण होने पर २००० ई.से सूचना क्रान्तिका युग हुआ।

(६) सप्तर्षि या लौकिकाब्द का आरम्भ ३०७६ ई.पू.(कलि २५) में हुआ जब युधिष्ठिर का कश्मीर में देहान्त हुआ (राजतरङ्गिणी, तरङ्ग १)-

कलैर्गतै: सायक-नेत्र (२५) वर्षै: युधिष्ठिराद्यास्त्रिदिवं प्रयाता:।

राजतरङ्गिणी निर्माण के समय लौकिकाब्द २४ था जिसमें शताब्दी अङ्क नहीं लिखे जाते हैं। उस समय शक आरम्भ से १०७० वर्ष बीते थे-

लौकिकाब्दे चतुर्विंशे शककालस्य साम्प्रतम्।

सप्तत्यभ्यधिकं यातं सहस्र परिवत्सरा:(राजतरङ्गिणी,१/५२)।

शककाल ७८ ई.में हुआ,उसके १०७० वर्ष बाद,३०७४+७८+१०७०=४२२४ या शताब्दी वर्ष छोड़ने पर २४ वर्ष हुये थे। युधिष्ठिर देहान्त तक सप्तर्षि मघा में थे उसके २७०० वर्ष के अन्तर से सप्तर्षि चक्र चला है। ३ सप्तर्षि चक्र या ८१०० वर्ष का ध्रुव वर्ष है। इस क्रम से ध्रुवचक्र का आरम्भ २७,३७६ ई.पू. में हुआ

जो ठीक लगता है क्योंकि वे स्वायम्भुव के पुत्र उत्तानपाद के पुत्र थे।

८.व्यास-सूची-इस प्रकार कूर्म,वायु,ब्रह्माण्ड पुराणों के २८ व्यास काल हैं-

१.स्वायम्भुव मनु (ब्रह्मा)-(२९,१००-१७,५०० ई.पू.) इसी काल में स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत भी हुये।

२.कश्यप(ब्रह्मसावर्णि मनु)-(१७,५००-१६,०५० ई.पू.)-चाक्षुष तथा अन्य ६ सावर्णि मनु का काल।

३. उशना काव्य या शुक्राचार्य(१६,०५०-१५,३३० ई.पू.)-भृगु पुत्र। भृगु-अङ्गिरा द्वारा अथर्व वेद। असुर,दैत्य,दानवों के गुरु। राजनीति, धनुर्वेद, आयुर्वेद, पुराणों का प्रणयन।

४. बृहस्पति(१५,३३०-१४,६१० ई.पू.)-वेदों का पूर्ण रूप। पद-क्रम का व्याकरण जो अभी भी चीन में प्रचलित है-प्रति शब्द का अलग चिह्न।

५. विवस्वान्(सविता)-(१४,६१०-१३,९०० ई.पू.)-मय असुर को सूर्य-सिद्धान्त का उपदेश। यम और मनु के अतिरिक्त अश्विनी कुमार भी इनकी सन्तान थे। शुक्रपुत्र त्वष्टा के पुत्र विश्वकर्मा के गुरु। इस काल के बाद सत्य, त्रेता, द्वापर की समाप्ति ३१०२ (प्राय:३१००) ई.पू. में हुयी-१३,९००-(४८००+३६००+२४००)=३१००।

६.वैवस्वत यम (१३,९००-१२,४६० ई.पू.)-जेन्द-अवेस्ता के अहुर-मज्दा (असुर महादेव)। इस काल में जल-प्रलय हुआ था। इनके बाद इनके अनुज वैवस्वत मनु का काल था। यह श्राद्धदेव कहे जाते हैं, अर्थात् मृत्यु का रहस्य समझाया था। इनका स्थान यमन,अम्मान,राजधानी संयमनी (सना) आदि था।

७. इन्द्र-शतक्रतु (१२,४६०-११,७४०)-१०० क्रतु अर्थात् यज्ञ का अर्थ है १०० वर्ष(संवत्सरो वै यज्ञ:-शतपथ ब्रा.११/१/१/१ आदि, संवत्सरो वा इन्द्र शुनासीर:-तैत्तिरीय ब्रा.१/७/१/१)। १४ इन्द्र नारद आदि पुराणों में वर्णित हैं। वे १४ शताब्दियों के मुख्य इन्द्र हैं-प्रति १०० वर्ष में सप्तर्षि १ नक्षत्र चलते हैं। वज्र निर्माण तथा वायु (=मरुत्) की सहायता से देवनागरी लिपि (४९ मरुतों के ४९ अक्षर) तथा ऐन्द्र-वायव व्याकरण का निर्माण। वैकुण्ठ इन्द्र काल के कई सूक्त ऋक् वेद में हैं।

८.वसिष्ठ-(११,७४०-११,०२० ई.पू.) मित्र (सूर्य) तथा वरुण (अहुर मज्दा) दोनों के पुत्र-दोनों परम्पराओं का समन्वय। ऋक् का ८म मण्डल।

९. अपान्तरतमा (११,०२०-१०,३०० ई.पू.) या सारस्वत- दध्यङ् अथर्वण तथा सरस्वती अलम्बुषा के पुत्र। सम्भवत: जल-प्रलय के बाद वेदों का पुनरुद्धार।

१०. त्रिधामा (१०,३००-९,५८० ई.पू.) या मार्कण्डेय(?)। दत्तात्रेय द्वारा योग-तन्त्र तथा मार्कण्डेय द्वारा पुराण प्रणयन।

११.ऋषभ (९,५८०-८,८६० ई.पू.)-कुछ पुराणों के मत से शरद्वान् आङ्गिरस या गौतम इस युग के व्यास थे। प्रथम जैन तीर्थङ्कर तथा संन्यास मार्ग के प्रवर्त्तक। द्वि-जातियों के लिये तीन प्रकार के यज्ञोपवीत (जैन-शास्त्र)। वृषभ-देव के रूप में सम्भवत: मनुष्य रूपी महादेव या वामदेव, जो स्वयं यज्ञोपवीत पहनते हैं।

१२. अत्रि (८,८६०-८,५०० ई.पू.)-सांख्य अत्रि पश्चिमोत्तर दिशा में गये जहां सांख्य आधारित २५ (या २६) अक्षरों की लिपि प्रचलित है। भौम अत्रि द्वारा सूर्य-ग्रहण की गणना, आयुर्वेद के भी आचार्य।

१३. धर्म या नर-नारायण (८,५००-८,१४० ई.पू.)-बद्रीनाथ (बदरिकाश्रम) में वेदों का उपदेश। सम्भवत: शङ्कराचार्य की गुरु- परम्परा का आरम्भ। काण्व मेधातिथि ऋषि, दुष्यन्त, तथा उनके पुत्र भरत का काल।

१४. सुरक्षण या सुचक्षु (८,१४०-७,७८० ई.पू.)-राजा मरुत्त, अविक्षित, करन्धम तथा ऋषि जौतम, वामदेव आदि का काल।

१५. त्र्यारुण (७,७८०-७,४२० ई.प.)-इक्ष्वाकु वंशी राजा-मान्धाता तथा गान्धार राजा अङ्गार का काल।

१६. धनञ्जय (७,४२०-७,०६० ई.पू.)
१७.कृतञ्जय (७,०६०-६,७०० ई.पू.)
१८.ऋतञ्जय (६,७००-६,३४० ई.पू.)
] ऋषि भरद्वाज इनके समकालीन थे तथा इस काल में दाशराज युद्ध हुआ था- प्राय: ७,२०० ई.पू. में। ६,७७७ ई.पू.में गयासुर या असितधन्वा द्वारा भारत पर आक्रमण (मेगास्थनीज के मत से डायोनिसस)

१९.भरद्वाज (६,३४०-५,९८० ई.पू.)-सम्राट् चायमान तथा काशी राज दिवोदास दोनों के पुरोहित।

२०. गौतम (५,९८०-५,६२० ई.पू.)-गोदावरी या गौतमी तट। जमदग्नि, हरिश्चन्द्र, परशुराम, कार्तवीर्य अर्जुन का काल। न्याय- दर्शन सूत्र।

२१. वाचस्पति (५,६२०-५,२६० ई.पू.) या निर्यन्तर-राजा सगर के द्वारा यवन बहिष्कृत,सागरों पर प्रभुत्व तथा उनके प्रपौत्र भगीरथ द्वारा गङ्गावतरण।

२२. सुकल्याण या सोमशुष्ण (५,२६०-४,९०० ई.पू.)-पुलस्त्य तथा विश्रवा ऋषि। त्रेता अन्त (५,५०० ई.पू.) में परशुराम का देहान्त।

२३. तृणबिन्दु (४,९००-४,५४० ई.पू.)-सम्राट्। इनके जमाता पुलस्त्य के जमाता रावण तथा कुबेर।

२४. वाल्मीकि(४,५४०-४,१८० ई.पू.)-दशरथ पुत्र राम (४,४३३-४,२६२ ई.पू. तक),रावण, हनुमान आदि का काल।

२५. शक्ति-वासिष्ठ(४,१८०-३,८२० ई.पू.)-वेदपाठ विधि।

२६. जातूकर्ण्य (३,८२०-३,४६० ई.पू.)-पराशर शिष्य किन्तु उससे पूर्व।कणाद।

२७. पराशर (३,४६०-३,१०० ई.पू.)-विष्णु पुराण का प्रणयन, १०० कोटि श्लोकों के पुराण का ४ लाख श्लोकों के १८ पुराणों में विभाजन।

२८. वेदव्यास (३१०० ई.पू.-अभी तक)-सत्यवती (बाद में शान्तनु पत्नी) द्वारा पराशर पुत्र-कृष्ण-द्वैपायन। भागवत पुराण, ब्रह्म-सूत्र, पातञ्चल योग की व्याख्या, वेदों का शाखा विभाजन। इनके बाद और कोई व्यास नहीं हुआ, अत: अभी भी कलि माना जाता है।

९.कलि पूर्व के राजवंश-पुराणों में वैवस्वत मनु के बाद सूर्य वंश की पूर्ण वंशावली दी गयी है। चन्द्र वंश का बीच में लुप्त भाग है। कलिवर्ष १४६८ (१६३४ ई.पू.) में दोनों राजवंशों का महापद्मनन्द द्वारा विनाश हुआ। अवेस्ता के अनुसार वैवस्वत यम ने प्राय: १२०० वर्ष राज्य किया और उस काल में जलप्रलय हुआ। उनके भाई वैवस्वत मनु के साथ सत्ययुग का आरम्भ हुआ, अत: उनका काल ३१०१ ई.पू. में द्वापर अन्त से १०,८०० (=२४००+३६००+४८००) वर्ष पूर्व अर्थात् १३,९०० ई.पू. लिखा गया है। उसका बाद इक्ष्वाकु राजा हुये जिनके पुत्र विकुक्षि को इराक के किश में प्राप्त लेखों में उकुसी कहा गया है तथा प्रथम राजा के रूप में उसका काल ८,३२० ई.पू. दिया है। जलप्रलय के बाद राज-व्यवस्था पुन: स्थापित होने में प्राय: ४००० वर्ष लगे।

सूर्य वंश-विवस्वान्(सूर्य)-ऋषि,१.वैवस्वत मनु(राजा),२.इक्ष्वाकु, ३.विकुक्षि, ४. पुरञ्जय या ककुत्स्थ (आड़ीबक=बैल की पीठ का कूबड़)-इन्होंने षष्ठ देवासुर संग्राम में प्रह्लाद के द्वितीय पुत्र सुजम्भ को पराजित किया। ५.अनेना, ६.पृथु, ७.विश्वगश्व, ८.आर्द्र, ९.युवनाश्व-१, १०.श्रावस्त(श्रावस्ती नगर),

११.बृहदश्व-इन्होंने संन्यासी होने की इच्छा की तो उदङ्क ने कहा कि धुन्धु असुर को मारना अधिक जरूरी है। उनके पुत्र (१२) कुवलयाश्व ने यह कार्य किया। दानव राज धुन्धु को मारने के कारण इन्हें धुन्धुमार भी कहा जाता है। फिरदौसी के शाहनामा में इन्हें केरास्प कहा गया है। इस युद्ध में २१,००० सैनिक मारे गये। १३. दृढ़ाश्व, १४.प्रमोद, १५,हर्यश्व-१, १६.निकुम्भ, १७.संहताश्व, १८.कृशाश्व, १९.प्रसेनजित, २०. युवनाश्व-२, २१. मान्धाता सार्वभौम राजा थे , जिनके बारे में प्रसिद्ध था कि उनके राज्य में सदा सूर्य का उदय और अस्त होता रहता है-यावत् सूर्य उदयति यावत् च प्रतितिष्ठति।

सर्व तद् यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्र मुच्यते।

(वायु. ८८/६८, विष्णु. ४/२/६५, महाभारत, द्रोण पर्व.६२/११)

महाभारत,शान्तिपर्व अ.२८,द्रोण अ.६२ के अनुसार ये राजा मान्धाता के अधीन थे-अङ्गार(गान्धार),मरुत्त,असित(शतपथ ब्रा.१३/४/३/१२-असितधन्वा Dionysus असुर राजा था), गय, अङ्ग-बृहद्रथ,जनमेजय, सुधन्वा, नृग।

मान्धाता के तीन पुत्र

२२.पुरुकुत्स	अम्बरीष	मुचुकुन्द
२३.त्रसदस्यु	युवनाश्व-३	
२४.सम्भूत	हारीत(ब्राह्मण)	

पुरुकुत्स दाशराज युद्ध के राजा सुदास का समकालीन था। सम्भूत पुत्र (२५) अनरण्य से रावण का युद्ध हुआ था जो राम काल के पूर्व का अन्य राजा था। २६,त्रसदश्व, २७.हर्यश्व-२, २८.वसुमान, २९.त्रिधन्वा, ३०.त्र्यारुण।

३१.सत्यव्रत या त्रिशंकु-विश्वामित्र के यज्ञ द्वारा स्वर्ग गमन,बीच में इन्द्र द्वारा रोका गया। ३२.हरिश्चन्द्र-विश्वामित्र को भूमिदान के बाद श्मशान में चाण्डाल का कार्य किया। ३३.रोहिताश्व, ३४.हरित, ३५.चञ्चु, ३६.विजय, ३७.रुरुक, ३८.वृक, ३९. बाहु-यह हैहय,यवन आदि के सम्मिलित आक्रमण में मारा गया-

हैहयस्तालजंघैश्च निरस्तो व्यसनी नृपः।

शकैः यवनैः काम्बोजैः पारदैः पल्लवैस्तथा।(ब्रह्माण्ड २/३/६३/१२०)

मेगास्थनीज के अनुसार यह यवन राजा डायोनिसस था (६७७७ ई.पू.अप्रैल)।

४०.सगर-यह चक्रवर्त्ती राजा हुआ, अपने पिता का राय वापस लेकर समुद्रों पर प्रभुत्व स्थापित किया, जिससे उनका नाम सागर पड़ा। इसके ६०,००० पुत्र

द्वारा भस्म हो गये। यह कपिल सांख्य प्रवर्त्तक कपिल के वंशज हो सकते हैं। इसने अपने पुत्र (४१) असमञ्जस को निष्कासित कर पौत्र (४२) अंशुमान को राजा बनाया। वह अपने पुत्र (४३) दिलीप को राज्य देकर वन चला गया। दिलीप पुत्र (४४) भगीरथ ने हिमालय के जल को गङ्गा रूप में समतल में प्रवाहित किया। अत: गङ्गा को भागीरथी कहते हैं। इनके बाद पुत्र (४५) श्रुत तथा सम्बन्धी (४६) नाभाग राजा हुये। नाभाग पुत्र (४७) अम्बरीष (मान्धाता पुत्र से अलग) के वंशजों का राज्य चला। ४८. सिन्धु, ४९.अयुतायु, ५०.ऋतुपर्ण, ५१.सर्वकाम, ५२.सुदास, ५३,कल्मष पाद (वसिष्ठ पुत्र शक्ति के शाप से इसका पैर काला हो गया था)। ५४.अश्मक, ५५.उरुकाम, ५६.मूलक, ५७.शतरथ, ५८. इडविड, ५९. कृशकर्म, ६०.सर्वकाम, ६१.अनराय, ६२.निघ्न, ६३.अनमित्र या रघु-१, ६४. दुलीडुह, ६५.विश्वमहत, ६६.दिलीप, ६७.रघु- यह कालिदास के महाकाव्य रघुवंश के विख्यात नायक हैं जिनके नाम पर सूर्यवंश को रघुवंश भी कहा जाता है। इनके अधीन ये राज्य थे-सुह्म, वंग, उत्कल, कलिंग, दक्षिणापथ, पाण्ड्य, यवन, पारसीक, कम्बोज, पार्वतीय-गण,कामरूप। रघु के बाद-६८.अज, ६९.दशरथ हुये। दशरथ पुत्र (७०) राम (४४३३-४३७२ ई.पू.) ने रावण का वध कर सार्वभौम राज्य स्थापित किया तथा आचरण और शासन की मर्यादा स्थापित की। उसके बाद ७१.कुश, ७२.अतिथि, ७३.निषध, ७४.नल (निषध राज नल से भिन्न), ७५.नभ, ७६. पुण्डरीक, ७७.क्षेमधन्वा, ७८.देवानीक, ७९.अहिनगु, ८०.रुरु, ८१.परियात्र, ८२.शल, ८३.दल, ८४.बल, ८५.उक्थ, ८६.सहस्राश्व, ८७. चन्द्रावलोक, ८८. तारापीड, ८९.चन्द्रगिरि, ९०.भानुचन्द्र या भानुमित्र, ९१. श्रुतायु, ९२.उलूक, ९३.उन्नाभ, ९४.वज्रनाभ, ९५.शंखन, ९७.व्युषिताश्व, ९८. हिरण्यनाभ-याज्ञवल्क्य से योग शिक्षा लेकर उसका प्रसार किया। ९९.कौशल्य, १००.ब्रह्मिष्ठ, १०१.पुत्र, १०२.पुण्य, १०३.अर्थसिद्धि, १०४.सुदर्शन, १०५. अग्निवर्ण, १०६.शीघ्रग, १०७.मरु, १०८.प्रसुश्रुत, १०९.सन्धि, ११०.प्रमर्षण, १११.महस्वान्, ११२.सहस्वान्, ११३.विश्वभव, ११४.विश्वस्व, ११५.प्रसेनजित, ११६.तक्षक, ११७.बृहद्बल-यह ३१३८ ई.पू. के महाभारत युद्ध में अभिमन्यु द्वारा मारा गया। इसका आधार डॉ कुवंरलाल जैन की पुस्तकें हैं -'पुराणों में वंशानुक्रमिक काल-क्रम' तथा 'पुराणों में ऐतिासिक परिवर्त -युग'-इतिहास विद्या प्रकाशन, दिल्ली, १९९०।

चन्द्र वंश-अत्रि पुत्र (१) सोम के पुत्र बुध थे-सौमायनो बुध:-(ताण्ड्य महा ब्रा. २४/१८/६), तथा महाभारत,उद्योग पर्व (१४७/३)-सोम: प्रजापति: पूर्वं कुरूणां वंशवर्धन:। २.बुध का विवाह इळा से हुआ-ऐडीश्च वा इमा: प्रजा:-(मैत्रायणी सं. १/५/१०)। इळा वैवस्वत मनु की पुत्री थी। बुध -इळा का पुत्र (ऐल) पुरुरवा सम्राट हुआ। सोम या चन्द्र का पौत्र होने से यह चन्द्र-वंश कहलाया।

३.पुरुरवा

४. आयु धीमान अमावसु विषायु

५. नहुष क्षत्रवृद्ध रम्भ रजि अनेना

यति ६. ययाति संयाति अन्य

५.नहुष ने इन्द्र पद भी धारण किया था जब वृत्र वध के बाद ब्रह्महत्या के कारण इन्द्र को अपना पद छोड़ना पड़ा था। बाद में नहुष को भी ऋषि शाप से सर्प बनना पड़ा। नहुष पुत्री रुचि का विवाह अपन्वान् ऋषि से हुआ जो भृगु के पुत्र थे।

भृगु

हिरण्यकशिपु पुत्री दिव्या अन्य पुत्री पौलोमी

शुक्र=उशना या काव्य च्यवन + पत्नी सुकन्या

त्वष्टा शण्ड मर्क दधीचि अपन्वान+रुचि

त्रिशिरा विश्वरूप(विश्वकर्मा) ऋचीक+सत्यवती

जमदग्नि

परशुराम

बाइबिल में-मनु=नूह, आयु=रयु, नहुष=नहुर। नहुष का प्रथम पुत्र यति संन्यासी हो गया अत: द्वितीय पुत्र(६) ययाति राजा हुआ। उसकी एक पत्नी देवयानी शुक्राचार्य की पुत्री थी जिससे यदु, तुर्वसु- दो पुत्र हुये। अन्य पत्नी असुरराज वृषपर्वा (वृष=Taurus, पर्वत=mountain , तुर्की में) की पुत्री शर्मिष्ठा थी जिससे ३ पुत्र हुये-द्रह्यु,अनु,पुरु। धोखे से दूसरा विवाह करने के कारण शुक्राचार्य ने ययाति को बुढ़ापे का शाप दिया। उनका बुढ़ापा लेने के लिये कनिष्ठ पुत्र पुरु तैयार हुआ, अत: वही राजा बना और उसके नाम पर यह पुरु वंश भी कहा जाता है। यदु को पूर्व-उत्तर भाग मिला जिनसे विख्यात यदु वंश चला जिसमें भगवान् कृष्ण उत्पन्न हुये। पश्चिम में द्रुह्यु, उत्तर में अनु(यवन), तथा दक्षिण पूर्व में तुर्वसु को भेजा।

७. पुरु, ८. जनमेजय-३ अश्वमेध यज्ञ। ९.प्रचीनवान् या अविद्ध। १०.प्रवीर। ११. मनस्यु या नमस्यु-सिन्धु से पूर्व समुद्र तथा हिमालय से विन्ध्य तक राज्य। १२. अभयद या सुभ्रू, १३.सुन्वन्त या धुन्धु, १४.यवुयान या बहुग्व, १५.संयाति, १६.अहंयति, १७, रौद्राश्व, १८. रुचेयु - इसकी १० बहनों में एक का विवाह अत्रि से हुआ जिसका पुत्र स्वस्ति था । उसके ३ पुत्र थे- सोम (चन्द्र वंश के मूल से अन्य), दत्त(दत्तात्रेय), तथा दुर्वासा। पुत्री अपाला भी ऋग्वेद के मन्त्रों की द्रष्टा है। १९. मतिनार, २०. अप्रतीर्थ-इसके पुत्र ऋषि काण्व मेधातिथि कई मन्त्रों के द्रष्टा थे। इसकी बहन गौरी के पुत्र चक्रवर्त्ती मान्धाता थे। २१. तंसु या सुमति। २२. ईलिन या सुद्युम्न, २३. दुष्यन्त। इसकी पत्नी शकुन्तला से (२४) चक्रवर्त्ती भरत हुये जो कालिदास के नाटक अभिज्ञान-शाकुन्तलम् के नायक हैं। इनके समकालीन ऋषि थे-ऋचीक, जमदग्नि, विश्वामित्र तथा भरद्वाज। काशी राज सर्वसेन की कन्या सुनन्दा से भरत का भूमन्यु पुत्र उनके बाद राजा हुआ।

(२५) भूमन्यु (भरद्वाज द्वारा नियोग से उत्पन्न)

(२६) बृहत्क्षत्र — नर — गर्ग — महावीर्य

(२७) सुहोत्र — संकृति — शिनि — उरुक्षय

(२८) हस्ति गुरुवीत — रन्तिदेव — त्रय्यारुणि — पुष्करिन् कपि

२८. हस्ति के नाम पर हस्तिनापुर नगर बना तथा इस राजधानी के कारण चीन में भारत को हस्ति-राज्य कहा जाता था। उसके बाद उसका पुत्र (२९) विकुण्ठन राजा हुआ जिसके तीनों पुत्र-अजमीढ़, पुरुमीढ़, द्विमीढ़-ब्राह्मण हुये। किन्तु भरद्वाज के आदेश से ज्येष्ठ पुत्र (३०) अजमीढ़ ने राज्य लिया। यह विख्यात राजा सूर्यवंशी त्रिधन्वा का समकालीन था।इसके बाद सूची अपूर्ण है, किन्तु ये नाम मिलते हैं-३१.ऋक्ष-१, ३२. अहंयति-कार्तवीर्य अर्जुन की बहन भानुमती से विवाह, ३३.सर्वभौम, ३४.जयत्सेन,३५.अवचीन, ३६.अर्ध, ३७.महाभौम, ३८.अयुतनयी, ३९.अक्रोधन, ४०.देवतिथि, ४१. अरिह। वायु पुराण के अनुसार सूची है-अजमीढ़, ३१.ऋक्ष, ३२.परीक्षित, ३३.जनमेजय, ३४.सुरथ, ३५.भीमसेन, ३६.जह्नु, ३७.सुरथ, ३८.विदूरथ, ३९.सर्वभौम, ४०.जयत्सेन, ४१.आराधित या अक्रोधन, ४२.महासत्व, ४३.अयुतायु, ४४.अक्रोधन, ४५.देवतिथि, ४६.ऋक्ष, ४७.दिलीप, ४८.प्रतीप, ४९.शान्तनु। मतिनार मान्धाता के साथ प्राय: ७३०० ई.पू. में था तथा शान्तनु प्राय: ३२०० ई.पू. में पाण्डवों के प्रपितामह थे ।४००० वर्षों में कई

अन्य राजा भी होंगे जिनका नाम लुप्त है। संवरण तथा उनके पुत्र कुरु का नाम भी इस सूची में नहीं है, जिसके नाम पर यह कुरु वंश कहलाता था। संवरण किसी पाञ्चाल राजा से पराजित होकर सिन्धु तट पर रहता था जहां उसका विवाह मित्र(सूर्य) पुत्री तपती से हुआ। उनके पुत्र ने फिर से साम्राज्य स्थापित किया। यहां से कालक्रम मिलता है।

संवरण-पत्नी तपती (४१५९-४०७१ ई.पू.)
कुरु-पत्नी शुभांगी (४०७१-३९९९ ई.पू.)

अभिस्वान् या चित्ररथ — सुधन्वा(३९९९-३९१९ ई.पू.) — जह्नु

भागवत के अनुसार ९ राजा	सुहोत्र(३९१९-३८२६ ई.पू.)
	च्यवन(३८२६-३७८८ ई.पू.)
	कृमि या कृति(३७८८-३७५१)
परीक्षित	उपरिचर वसु(३७५१-३७०९ई.पू.)(प्रतीप या चैद्य)
जनमेजय	बृहद्रथ(३७०९-३६३७ ई.पू.)-राजधानी गिरिव्रज
	कुशाग्र(३६३७-३५६७)
भीमसेन	ऋषभ(३५६७-३४९७)
	सत्यहित(३४९७-३४३७)
प्रतीप(३३७०-३३१०)	पुण्य या पुष्पवन्त(३४२७-३३९४)
शान्तनु(३३१०-३२५१) देवापि बाह्लीक	सत्यधृति(३३९४-३३५१)
गंगा सत्यवती (पत्नियां)	सुधन्वा(३३५१-३३०८)
चित्रांगद(३२४८) विचित्रवीर्य(३२३८तक)	सर्व(३३०८-३२६५)
भीष्म(३२३८-३२१८)	सम्भव(३२६५-३२२२)
पाण्डु(३२१८-३२१३)	जरासन्ध (३२२२-३१८०)
धृतराष्ट्र(३२१३-३१७४)	सहदेव(३१८०-३१३८)
दुर्योधन(३१७४-३१३८)	(मगध का बार्हद्रथ वंश)
धर्मराज युधिष्ठिर(३१३८-३१०२)	

(महाभारत १/९५/७४-८२-प्रतीप से)

अन्य मुख्य वंश-(१) **मिथिला**-इक्ष्वाकु के १०वें पुत्र निमि से आरम्भ हुआ। वसिष्ठ और निमि ने एक दूसरे को विदेह(शरीर-रहित) होने का शाप दिया। उनके शरीर मन्थन से उत्पन्न पुत्र मिथि कहा गया। अत: इस क्षेत्र को मिथिला

और यहां के राजा विदेह और जनक कहे जाते थे। इसके मुख्य राजा थे-निमि, मिथि, सीरध्वज(सीता के पिता), केशिध्वज, धर्मध्वज(ब्रह्मवेत्ता), धर्मराज, जनदेव, मखदेव, ऐन्द्रद्युम्नि। करालजनक के साथ महाभारत के पूर्व इस राज्य का अन्त (संभवत: जरासन्ध द्वारा) हुआ।

(२) **कान्यकुब्ज**-पुरुरवा के द्वितीय पुत्र अमावसु से। प्रमुख राजा-जह्नु (भगीरथ काल में गंगा का मार्ग प्रशस्त किया),कुशिक,गाधि,विश्वामित्र,मधुच्छन्दा।

(३) शर्यात-मनु-पुत्र शर्याति से-इनकी पुत्री सुकन्या का विवाह ऋषि च्यवन से हुआ। इनके पुत्र आनर्त का नाम पर गुजरात का यह नाम हुआ।

(४) **काशी**-चन्द्रवंशी नहुष (५) के भाई क्षत्रवृद्ध से। इसके वंशज प्रकाशिरत के नाम पर यह काशी हुआ। क्षत्रवृद्ध के पौत्र गृत्समद ऋषि, धन्वन्तरि, दिवोदास, प्रतर्दन मुख्य व्यक्ति थे।

(५) **बार्हद्रथ** वंश का कुरु पुत्र सुधन्वा से आरम्भ लिखा जा चुका है। कलि के बाद यह सबसे प्रमुख राज्य था।

(६) **चैद्य**-विदर्भ के पुत्र चेदि द्वारा। इस वंश के शिशुपाल का कृष्ण द्वारा वध ।

(७) **पाञ्चाल**-अजमीढ़(चन्द्रवंश ३०) केपुत्र नील से उत्तर पाञ्चाल,बृहद्वसु से दक्षिण पाञ्चाल। महाभारत काल में द्रुपद दोनों भाग के राजा थे पर द्रोण ने शिष्यों की सहायता से दक्षिण भाग पर अधिकार किया। दाशराज युद्ध (७२०० ई.पू.) में सुदास यहां का राजा था।

(८) **अनु**-ययाति के तीन पुत्रों-अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु-से यवन राज्य बने-अनु से आयोनिया, यवन, यूनान हुआ है। अन्य दो दक्षिण तथा पूर्व गये थे वहां से मिश्र यूरोप आदि गये। इसके कुछ राजा थे-सभानर, कालानल (मिश्र का अनुकुलाल), सृञ्जय, पुरञ्जय, जनमेजय, महाशाल, महामना(चक्रवर्त्ती)। इसके पुत्र उशीनर का पुत्र शिवि विख्यात था। अन्य पुत्र तितिक्षु से ऋषद्रथ, हेम, सुतप, बलि आदि।

(९) **द्रुह्यु** से-दुर्दम, द्रुह्यु,बभ्रु, सेतु, अंगार, गान्धार, धर्म, धृत, दुर्दम, प्रचेता-सिन्धु के पश्चिम भाग में।

(१०) **यादव**-ययाति का ज्येष्ठ पुत्र यदु (७)

सहस्रजित(८) क्रोष्टु नील अंजुक लघु

शतजित(९)

हैहय(१०) हय वैनुहय

१०.हैहय के बाद क्रमश:११.धर्मनेत्र,१२.कुन्ति,१३.सहञ्जय। सहञ्जय के बाद उसका सम्बन्धी १४.महिष्मान राजा हुआ जिसने नर्मदा तट पर महिष्मती बसायी। १५.भद्रश्रेण्य, १६.दुर्दम को काशीराज दिवोदास ने अपने क्षेत्र से हटाया। १७.कनक, १८.कृतवीर्य, १९. सहस्रार्जुन- दत्तात्रेय के आशीर्वाद से इसे कई सिद्धियां थीं। ऋषियों पर अत्याचार के कारण परशुराम ने इसका वध किया।

सहस्रार्जुन

जयध्वज शूरसेन शूर वृष कृष्ण

अवन्ति वृष्णि

अनन्त मधु

दुर्जन आदि (वासुदेव कृष्ण)

(११) **क्रोष्टु** वंश-८.क्रोष्टु, ९.वृजिन्वान्, १०.स्वाहि, ११.रुषद्गु, १२.चित्ररथ, १३.शशबिन्दु(चक्रवर्त्ती) की पुत्री का विवाह सूर्यवंशी (२१) मान्धाता से हुआ।१४.पृथुश्रवा, १५.उत्तर(या अन्तर), १६.सुयज्ञ, १७.ऊष्ण, १८.शिनियु, १९.मरुत, २०.कम्बलबशी, २१.रुक्मत्वच, २२.पर्वरत्त, २३.ज्यामघ (चेदि राज्य की स्थापना), २४. विदर्भ(राज्य का नाम)-इसकी पुत्री लोपामुद्रा का विवाह अगस्त्य ऋषि से हुआ। इसके ३ पुत्र-लोमपाद, क्राथ, केशिक थे। २५.लोमपाद के रामपद, बभ्रु, धृति, केशिक,२६.चेदि पुत्र थे। बाद में काशु चैद्य, क्राथ(भीम), कुन्ति विख्यात राजा हुये। उसके बाद धृष्टि, दशार्ह, भीमरथ आदि। मधु और सत्वत(सूर्यवंशी दशरथ का समकालीन) प्रसिद्ध थे।

सत्वत

भीम

भजिन देववृध महाभोज वृष्णि अन्धक

बभ्रिल रैवत देवमीढुष (अनुपलब्ध)

(ऋक्षि, विश्वगर्भ,वसु..) शूर

(अन्धक, कुक्कुर, वृष्णि..)

(कपोतरोम, विलोम, आहुक..)

उग्रसेन वसुदेव

कंस(कृष्ण द्वारा वध) कृष्ण

वसुदेव के भाई देवश्रवा के पुत्र एकलव्य का पालन निषादराज वत्सवत ने किया

था (हरिवंश पु.१/३४/३३,३४) वसुदेव के अन्य भाई देवभग का पुत्र उद्धव था।

१०. कलि के राजवंश-(१) पौरव या चन्द्र वंश-कलि आरम्भ में १.युधिष्ठिर ने अर्जुन के पौत्र परीक्षित को राज्य देकर संन्यास लिया। २.परीक्षित-३१०२-३०४१ ई.पू. तक। नागराज तक्षक द्वारा परीक्षित की हत्या के बाद उसका पुत्र ३. जनमेजय राजा हुआ। जयाभ्युदय- युधिष्ठिर-शक या कलि वर्ष ८९ (३०१२ ई.पू.) के उसके २ दान-पत्र उपलब्ध हैं-कार्त्तिक अमावास्या (दीपावली) सोमवार को तुङ्गभद्रा तट पर मुनिवृन्दारक क्षेत्र में सीताराम मन्दिर के लिये तथा केदार क्षेत्र के उषामठ के लिये एक ही दिन। ४.शतानीक और उसके पुत्र ५. अश्वमेधदत्त के काल में शौनक द्वारा पुराणों का पुनः सम्पादन हुआ। ६.अधिसीम कृष्ण, ७.निचक्षु-हस्तिनापुर गंगा में डूबने से कौशाम्बी में राजधानी हुयी। ८.ऊष्ण(भूरि), ९.चित्ररथ, १०.शुचिद्रथ, ११.वृष्णिमान्, १२.सुषेण, १३. सुनीथ, १४.निचक्षु-२, १५.रुच, १६.सुखबल, १७.परिप्लव, १८.सुनय, १९.मेधावी, २०.नृप(रिपु)ञ्जय, २१.दुर्व, २२.तिग्मात्मा, २३.बृहद्रथ, २४. वसुदान, २५.शतानीक, २६.उदयन(भास, बाण की रचनाओं का नायक, कालिदास के मेघदूत में -मगधराज प्रद्योत का समकालीन), २७.वशीनर, २८. दण्डपाणि, २९.निरमित्र, ३०.क्षेमक-१६३४ ई.पू. में महापद्म द्वारा विनाश।

२.सूर्यवंश-महाभारत में बृहद्‌बल के मारे जाने पर उसके ३० वंशजों ने १६३४ ई.पू. महापद्मनन्द काल तक शासन किया-१.बृहत्क्षण, २.उरुयक्ष, ३.वत्सव्यूह, ४.प्रतिव्योम, ५.दिवाकर, ६.सहदेव, ७.बृहदश्व, ८.भानुरथ, ९.प्रतितस्व, १०. सुप्रतीक, ११..मरुदेव, १२.सुनक्षत्र, १३.किन्नर, १४.अन्तरिक्ष, १५.सुपर्ण, १६. अमित्रजित, १७.बृहद्भ्राज, १८.धर्मी, १९.कृतञ्जय, २०.रणञ्जय, २१.सञ्जय, २२.शाक्य, २३.शुद्धोदन, २४.सिद्धार्थ(गौतम बुद्ध), २५.राहुल, २६.प्रसेनजित, २७.क्षुद्रक, २८.कुन्दक, २९.सुरथ, ३०.सुमित्र।

३.मगध का बार्हद्रथ वंश-द्वाविंशति नृपाह्येते भवितारो बृहद्रथा। पूर्ण वर्ष सहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति।(ब्रह्माण्ड ३/७४/१२१, विष्णु ४/२३/१२ आदि)

क्रम राजा	ई.पू.काल	क्रम राजा	ई.पू.काल
१.सोमापि(मार्जारि)	३१३८-३०८०	४.निरमित्र	२९८०-२९४०
२.श्रुतश्रवा	३०८०-३०१६	५.सुकृत	२९४०-२८८२
३.अप्रतीप	३०१६-२९८०	६.बृहत्कर्मन्	२८८२-२८५९

क्रम राजा	ई.पू.काल	क्रम राजा	ई.पू.काल
७.सेनजित	२८५९-२८०९	१५. सुव्रत	२४९१-२४५३
८.श्रुतञ्जय	२८०९-२७६९	१६.दृढ़सेन	२४५३-२३९५
९.महाबल	२७६०-२७३४	१७.सुमति	२३९५-२३६२
१०.शुचि	२७३४-२६७६	१८.सुचल	२३६२-२३४०
११.क्षेम	२६७६-२६४८	१९.सुनेत्र	२३४०-२३००
१२.अनुव्रत	२६४८-२५८४	२०.सत्यजित	२३००-२२१७
१३.धर्मनेत्र	२५८४-२५४९	२१.वीरजित	२२१७-२१८२
१४.निर्वृत्ति	२५४९-२४९१	२२.रिपुञ्जय	-२१८२-२१३२

कुल-१००६ वर्ष

४.प्रद्योत वंश-अन्तिम राजा रिपुञ्जय को उसके मन्त्री शुनक या पुलक ने मार कर उसकी पुत्री से अपने पुत्र प्रद्योत का विवाह कर उसे राजा बनाया-

बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतिहोत्रेष्ववन्तिषु ।

पुलकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति(ब्रह्माण्ड २/३/७४/१२२, आदि)

१.प्रद्योत(२१३२-२१०९), २.पालक(२१०९-२०८५), ३.विशाखयूप(२०८५-२०३५), ४.जनक(२०३५-२०१४), ५.नन्दिवर्धन(२०१४-१९९४)-१३८ वर्ष-

नन्दिवर्धनस्तत्पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे ।

अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यन्ति पृथिवीं नृपाः (स्कन्द पु.१२/२) ।

५.शिशुनाग वंश-शैशुनागा दशैवैते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं नृपाः ।

शतानि त्रीणि वर्षाणि षष्टि वर्षाधिकानि च ।।

(कलियुग राजवृत्तान्त २/२, भागवत पु. १२/२/८ आदि)

१.शिशुनाग(१९९४-१९५४), २.काकवर्ण या शकवर्ण(१९५४-१९१८), ३.क्षेमधन्वा(१९१८-१८९२), ४.क्षत्रौज(१८९२-१८५२), ५.विधिसार (बिम्बिसार) या श्रेणिक(१८५२-१८१४), ६.अजातशत्रु(१८१४-१७८७), ७. दर्शक(१७८७-१७५२), ८.उदायि(१७५२-१७१९), ९.नन्दिवर्धन(१७१९-१६७७), १०.महानन्दि(१६७७-१६३४)। इस काल में मायामोह स्वरूप शुद्धोदन पुत्र बुद्ध हुये-मायामोहस्वरूपोऽसौ शुद्धोदनसुतोऽभवत् ।

मोहयामास दैत्यांस्तांस्त्याजितान् वेद धर्मकान् ।

ये च बौद्धा बभूवुर्हि तेभ्योऽन्ये वेदवर्जिताः (विष्णु पु.४/२३)।

उदायि ने अपने शासन के चतुर्थ वर्ष में गंगा दक्षिण तट पर पाटलिपुत्र बसाया-

उदायि भविता यस्मात् त्रयस्त्रिंशत् समा नृपः। स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयं। गंगायां दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति।(वायु.पु.११९/३१८)

अजातशत्रु राज्य के ८वें वर्ष में बुद्ध का निर्वाण (देहान्त) हुआ (१८०६ ई.पू.) बुद्ध(१८८५-१८०५ई.पू.) बिम्बिसार से ५ वर्ष छोटे थे।

६.नन्द वंश-अन्तिम शिशुनाग राजा महानन्दि के बाद उसकी शूद्रा पत्नी की सन्तान महापद्मनन्द राजा हुआ जिसने सभी क्षत्रिय राज्यों का अन्त किया-

महानन्दिस्ततः शूद्रीगर्भोद्भवो बली अतिलुब्धो अतिबलो महापद्मो नन्दनामा परशुराम इव अपरः अखिल-क्षत्रान्तकारी भविष्यति(विष्णु पु.४/२४/२१)।

परीक्षित जन्म के १५०० (१५०४) वर्ष बाद नन्द का अभिषेक-

यावत् परीक्षितो जन्म यावत् नन्दाभिषेचनम्।

एतद् वर्ष सहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चशतोत्तरम् (विष्णु पु. ४/२४/१०४)

स एकछत्रां पृथ्वीमनुल्लंघित शासनः।

शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः।(भागवत पु. १२/१/१०)

उसने ८८ वर्ष तथा उसके ८ पुत्रों ने १२ वर्ष शासन किया (१६३४-१५३४ ई.पू.)

अष्टाशीति स वर्षाणि पृथिव्यां तु भविष्यति(मत्स्य पु.२७०/२०)।

सुमाल्यादि सुताह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः।

कौटिल्यश्चन्द्रगुप्तं स ततो राज्येऽभिषेच्यति।

भुक्त्वा महीं वर्षशतं ततो मौर्यान् गमिष्यति(मत्स्य पु.२७३/२३)।

७.मौर्य वंश-नन्द वंश का विनाश कर कौटिल्य चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को राजा बनाया। छत्तीसगढ़ से दक्षिण झारखण्ड के लौह क्षेत्र के केन्द्र स्थित मुरा(=लौह, अभी सम्बलपुर के पास हीराकुद जलभण्डार में मग्न) क्षेत्र का होने से इन्हें मौर्य कहा गया। भागवत पु. में नरकासुर को भी उसके नगर के लौह घेरे के कारण मुर कहा गया है जिसका श्रीकृष्ण ने वध किया था। मौर्य तथा जंग दोनों का अर्थ लोहा तथा युद्ध क्षेत्र दोनों होता है। १२ मौर्य राजाओं ने ३१६ वर्ष राज्य किया-

द्वादशैते नृपाःमौर्याःचन्द्रगुप्तादयो महीम्।

शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति दश शत च समा कलौ।(कलियुगराजवृत्तान्त ३/२)

इत्येते दश च द्वे च ते भोक्ष्यन्ति वसुन्धराम्।

शतानि त्रीणि पूर्णानि तेभ्यः शुङ्गान् गमिष्यति(मत्स्य पु.२७०/३२, वायु)

क्रम नाम	राज्यकाल	ई.पू.वर्ष	क्रम नाम	राज्यकाल	ई.पू.वर्ष
१.चन्द्रगुप्त	३४	१५५४-१५००	७.हर्षवर्द्धन	८	१३५०-१३४२
२.बिन्दुसार	२८	१५००-१४७२	८.संगत	९	१३४२-१३३३
३.अशोक	३६	१४७२-१४३६	९.शालिशूक	१३	१३३३-१३२०
४.सुपार्श्व(सुयश,कुणाल)	८,	१४३६-२८	१०.सोम(देव)शर्मा	७	१३२०-१३१३
५दशरथ(बन्धुपालित)	८,	१४२८-१४२०	११.शतधन्वा	८	१३१३-१३०५
६.इन्द्रपालित	७०	१४२०-१३५०	१२.बृहद्रथ(बृहदश्व)	८७	१३०५-१२१८

अशोक के समकालीन कश्मीर में गोनन्दवंश के ४७वें राजा अशोक ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था, पर राजतरंगिणी के इस श्लोक के अर्थ में मद्रास सरकार के अभिलेखागार अध्यक्ष हुल्ज ने इसे मौर्य अशोक के बारे में लिखकर भारतीय इतिहास नष्ट करने के ब्रिटिश प्रयास में महत्त्वपूर्ण योग दिया-

प्रपौत्र शकुनेस्तस्य भूपतेः प्रपितृव्यजः।
अथावह्वयदाशोकाख्यो सत्यसन्धो वसुन्धराम्।।१०१।
यः शान्तवृत्तिनो राजा प्रपन्नो जिनशासनम्।
शुष्कलेत्रवितस्तात्रौ तस्तारस्तुपमण्डलैः।।१०२।(राजतरंगिणी,अध्याय १)

अन्य मिथ्या प्रचार है कि अशोक के अहिंसक बौद्ध होने से राज्य नष्ट हो गया जिसके कारण पुष्यमित्र शुंग ने ब्राह्मणवाद की पुनः स्थापना की- इसमें ४ स्पष्ट और उद्देश्य पूर्ण झूठ हैं-१.अशोक बौद्ध नहीं हुआ,२.राज्य नष्ट नहीं हुआ वरन् ३१६ वर्ष तक मौर्य,३०० वर्ष शुंग, ८५ वर्ष कण्व शासन तक राज्य शक्तिशाली बना रहा जो विश्व इतिहास में सबसे लम्बा काल है।३.अहिंसक का अर्थ कायर नहीं है।४.मौर्य राज्य कभी भी ब्राह्मण विरोधी नहीं था, अन्त तक पुष्यमित्र आदि ब्राह्मण मन्त्री थे।

८.शुंग वंश-१० शुंग राजाओं द्वारा ३०० वर्ष शासन-

दशैते शुंगराजानो भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम्।
शतं पूर्ण शते द्वे च तेभ्यः कण्वान् गमिष्यति (कलियुग राजवृत्तान्त,मत्स्य,वायु)

१.पुष्यमित्र-६०(१२१८-११५८),२.अग्निमित्र-५०(११५८-११०८),३.वसुमित्र ३६(११०८-१०७२), ४.सुज्येष्ठ-१७(१०७२-१०५५), ५.भद्रक-३०(१०५५-१०२५), ६.पुलिन्दक-३३(१०२५-९९२), ७.घोषवसु-३(९९२-९८९), ८.वज्रमित्र-२९ (९८९-९६०),९.भागवत-३२(९६०-९२८), १०.देवभूति-१०(९२८-९१८) तक

९.कण्व वंश-४ कण्व राजाओं ने ८५ वर्ष शासन किया-

एते चत्वारिंशत काण्वायनश्चत्वारः।

पञ्चचत्वारिंशद् वर्षाणि भूपतयो भविष्वन्ति(विष्णु पु. ४/२४/३९-४२)

१.वासुदेव-३९(९१८-८७९), २.भूमिमित्र-२४(८७९-८५५), ३.नारायण-१२ (८५५-८४३), ४.सुशर्मा-१०(८४३-८३३)।

१०.आन्ध्र वंश-३२ राजाओं ने ५०६ वर्ष शासन किया-१.शिमुक (सिन्धुक,सुमुख)-२३(८३३-८१०), २.श्रीकृष्ण शातकर्णि-१८ (८१० -७९२), ३.श्रीमल्ल शातकर्णि-१०(७९२-७८२), ४.पूर्णोत्सङ्ग-१८ (७८२-७६४)-इसके समय कलिंग राज खारवेल का उदय हुआ। इसने राज्य के ५वें वर्ष में नन्द राज्य के ८०३(त्रि-वसु-शत) वर्ष बाद प्राची नहर की मरम्मत करायी। अर्थात् १६३४-(८०३-४)=८३५ ई.पू. में इनका राज्य आरम्भ हुआ। यदि नन्द राज्य के अन्त से गिना जाय तो ७३५ ई.पू. होता है। ५.श्री शातकर्णि-५६(७६४- ७०८), ६.स्कन्धस्तम्बिन् (श्रीसस्वामी)-१८ (७०८-६९०), ७.लम्बोदर-१८ (६९०-६७२), ८.आपिलक-१२(६७२-६६०), ९.मेघस्वाति-१८ (६६०-६४२), १०.शातस्वाति-१८ (६४२-६२४), ११.स्कन्दस्वाति-७ (६२४-६१७), १२. मृगेन्द्रस्वातिकर्ण-(३), १३.कुन्तल-(८), १४.सौम्य-(१२), १५.शतस्वातिकर्णि -१ वर्ष, १६.पुलोमावि-३६(५९३-५५७), १७.मेघ-३८(५५७-५१९), १८.अरिष्ट -२५(५१९-४९४), १९.हाल(४९४-४८९)-आदि शंकर का समकालीन-गाथा सप्तशती का लेखक। २०.मण्डलक(५), २१.पुरन्दरसेन-२१(४८४-४६३)-इसके काल में ३१७६ ई.पू. से आरम्भ २७०० वर्ष का सप्तर्षि चक्र पूर्ण हुआ -

तावत्काललन्तरं भाव्यमान्ध्रन्तादापरीक्षितः।

भविष्येते प्रसंख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः।४०।

सप्तर्षयस्तदाप्राहुः प्रदीप्तेग्नानिना समाः।

सप्तविंशति भाव्यानामान्ध्राणान्तु यथा पुनः।४१।(मत्स्य पु.२७०)

२२.सुन्दर शातकर्णि(१), २३.चक्र वासिष्ठीपुत्र तथा महेन्द्र(१), २४. शिव-२८ (४६१-४३३), २५.गौतमीपुत्र शातकर्णि-२५(४३३-४०८), २६. पुलोमावि २-३२(४०८-३७६), २७.शिव(७), २८.शिवकोण्डा (७), २९.यज्ञश्री-१९ (३६२-३४३), ३०.विजयश्री (६), ३१.चन्द्रश्री (३), ३२.पुलोमावि ३य (बालक)-७ (३३४-३२७ई.पू.)।

११.गुप्त वंश-आन्ध्र राजाओं विजयश्री(३०) और चन्द्रश्री शातकर्णि (३१) के सेनापति घटोत्कच और उसके पुत्र चन्द्रगुप्त थे। चन्द्रश्री की पत्नी की सहायता से चन्द्रगुप्त ने उसकी हत्या कर उसके बालक पुत्र पुलोमावि को राजा बनाया तथा ७ वर्ष बाद उसकी भी हत्य कर स्वयं राजा बना (कलियुग राज वृत्तान्त)-

चन्द्रश्रियं घातयित्वा मिषेणैव हि केनचित् । तत्पुत्र प्रतिभूत्वां च राज्यं चैव नियोजित:। वर्षैस्तु सप्तभि: प्राप्त राज्यो वीराग्रणीरसौ।

तत्पुत्रं च पुलोमानं विनिहत्य नृपार्भकम्।।

आन्ध्र राजा के सेनापति होने के कारण गुप्तों को आन्ध्र-भृत्य भी कहा गया है-

आन्ध्राणां संस्थिता राज्ये तेषां भृत्यान्वये नृपा:।

सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपा:(मत्स्य पु.२७३/१७)।

युग-चक्र की टिप्पणी ३(पृ.५६,५७) के अनुसार अप्रैल ६३७७ ई.पू. के प्रथम यवन आक्रमण के बाद जुलाई ३२६ ई.पू. तक १५३ पीढ़ी यहां समाप्त हुयी। इनका नाम भी मेगास्थनीज ने ठीक दिया है-घटोत्कच(घट=सिर से कच=बाल काटनेवाला नाई=Barber), Agramas (Xandramus)=चन्द्रबीज(चन्द्रश्री) -३१वां आन्ध्रराजा, Sandrocottus=चन्द्रगुप्त-१, Sadrocryptus= समुद्रगुप्त, Amitrochades=अमित्रोच्छेदस(शत्रु संहारक) चन्द्रगुप्त-२। गुप्त वैश्यों की उपाधि है, इन्होंने राजा बनने पर आदित्य उपाधि धारण की -

वंचकं पितरं हत्वा सहपुत्रं सबान्धवम्।

अशोकादित्य नामानं तु प्रख्यातो महीतले (कलियुग राज वृत्तान्त)।

चन्द्रगुप्त-१-विजयादित्य। समुद्रगुप्त-अशोकादित्य। चन्द्रगुप्त-२-विक्रमादित्य (यह सिर्फ, उपाधि थी, इस नाम का विख्यात परमार वंशी राजा बाद में हुआ)।

श्रीगुप्त-घटोत्कच-चन्द्रगुप्त-१(३२७-३२० ई.पू.)

कच(३२०) समुद्रगुप्त(अशोकादित्य)-३२०-२६९ ई.पू.

रामगुप्त(२६९) चन्द्रगुप्त-२(विक्रमादित्य)२६९-२३३ ई.पू.

कुमारगुप्त-१(२३३-१९१ ई.पू.)

स्कन्दगुप्त(१९१-१७५)-नि:सन्तान पुरगुप्त(बुधगुप्त का अभिभावक)

वैन्यगुप्त(१७५-१७४) कुमारगुप्त-२(१७४-१७२) बुधगुप्त(१७२-१६६)

नरसिंहगुप्त(बालादित्य-१) १६६-१२६

कुमारगुप्त-३(१२६-८५ ई.पू.)⟶ विष्णुगुप्त (८५-८२ ई.पू.)

१२.कश्मीर-राजवंश-राजतरंगिणी के आधार पर-तरंग१ ३४५० ई.पू.से-प्रथम ५ राजाओं का नाम नहीं है।६.गोनन्द-१(३२३८-३१८८ ई.पू.), ७.दामोदर-१ (३१८८-३१४०)-यह महाभारत युद्ध के ठीक पूर्व मारा गया, तब उसकी पत्नी यशोमती ने शासन किया। ८.गोनन्द-२(३१३८-३०८३)-पाण्डव राजा परीक्षित (९) द्वारा मारा गया, उसने ३०८३-३०४१ तक शासन किया। परीक्षित का द्वितीय पुत्र हर्नदेव(१०) राजा हुआ। ११.रामदेव, १२.व्यासदेव, १३.द्रोणदेव, १४.सिंहदेव, १५.गोपालदेव, १६.विजयनन्द, १७.सुखदेव, १८.रमणदेव, १९. सिन्धिमान, २०.महानदेव, २१.कमानदेव, २२.चन्द्रदेव, २३.आनन्देव, २४.द्रुपददेव, २५.हरनामदेव, २६.सुलखानदेव, २७.सेनादित्य, २८.मंगलादित्य-२० पाण्डव राजा। अन्य कश्मीर वंश-२९. क्षेमेन्द्र, ३०. भीमसेन,३१.इन्द्रसेन,३२.सुन्दरसेन,३३.गलगेन्द्र, ३४.बलदेव, ३५.नलसेन, ३६.गोकर्ण, ३७.प्रह्लाद, ३८.बम्ब्रु, ३९. प्रतापशील, ४०.संग्रामचन्द्र, ४१.लोरिकचन्द्र, ४२.बीरमचन्द्र, ४३. बबिघेन, ४४. भगवन्ती-१६ राजा - इन ३६ पाण्डव वंशी राजाओं ने १३३१ वर्ष(३०८३-१७५२ ई.पू.) तक राज किया ।

पुन: गोनन्द वंश ने अधिकार किया। ४५.लव(१७५२-१७१३),४६.कुश या कुशेशय, ४७.खगेन्द्र, ४८.सुरेन्द्र (नि:सन्तान)।एक संबन्धी गोधर (४४वां गोनन्द) १५९६ ई.पू. में राजा हुआ। ४५.सुवर्ण, ४६.जनक, ४७.शचीनार-१४४८ में नि:सन्तान मरा। जनक के भाई का पौत्र (४८) अशोक १४४८ ई.पू. में राजा हुआ।लोकधातु बुद्ध के प्रभाव में यह बौद्ध हुआ तथा बौद्धों ने इसका नाम धर्माशोक रखा। इसने बहुत से विहार और स्तूप बनवाये। इसके कई शिलालेख मौर्य अशोक के कहे जाते हैं। स्तूप, विहार आदि निर्माण में राज्य की सम्पत्ति और शक्ति नष्ट हुयी, जिससे मध्य एसिया के बौद्धों ने कब्जा कर लिया। एक शैव सन्त की कृपा से इसने पुन: राज्य पाया तथा जालौक नाम का पुत्र हुआ। इसने १४०० ई.पू. तक राज्य किया तथा श्रीनगर बसाया।४९.जालौक(१४००-१३४४), ५०.दामोदर-२(१३४४-१२९४)।पुन: मध्य एसिया के बौद्धों-हुष्क,जुष्क, कनिष्क-ने (१२९४-१२३४)=६० वर्ष शासन किया।पुन: गोनन्द वंशी ५२.अभिमन्यु (१२३४-११८२) का राज्य-५२ गोनन्द राजा २२६८ वर्ष तक(३४५०-११८२ ई.पू.)

५३.गोनन्द-३, ५४.विभीषण, ५५.इन्द्रजित, ५६.रावण, ५७.विभीषण-२, ५८.किन्नर या नर, ५९.सिद्ध, ६०.उत्पलाक्ष, ६१.हिरण्यकुल, ६२.वसुकुल,

६३.मिहिरकुल(७०४-६३४ ई.पू.)-कश्मीरी शैव, विदेशी नहीं। ६४.बक, ६५. क्षितिनन्दन, ६६.वसुनन्दन, ६७.नर, ६८.अक्ष, ६९.गोपादित्य (४१७-३५७ ई.पू.) - इसने ३६७ ई.पू. में शंकराचार्य मन्दिर बनाया, जिसे आजकल तख्त-ए- सुलेमान कहते हैं। ७०.गोकर्ण, ७१.किनखिल, ७२.नरेन्द्रादित्य, ७३.अन्ध-युधिष्ठिर(छोटी आंख का, अन्ध नहीं)-७३+५=७८ राजा ३४५०-२७२ ई.पू. ।

तरंग २-हर्ष विक्रमादित्व के सम्बन्धी १.प्रतापादित्य, २.जलौकस, ३.तुषाजिन, ४.विजय, ५.जयेन्द्र, ६.सन्धिमति-२७२-८० ई.पू.

पुनः गोनन्द वंश के अन्ध युधिष्ठिर का वंशज ८०.मेघवाहन(८०-४६ ई.पू.), ८१.प्रवरसेन, श्रेष्ठसेन या तुञ्जिन (४६-१६ ई.पू.), ८२.हिरण्य (छोटे भाई तोरमाण ने अपने नाम के सिक्के बनवाये थे, जेल में मृत्यु)-निःसन्तान मरा (१६ ई.पू.-१४ ईस्वी), ८३.मातृगुप्त (उज्जैन के विक्रमादित्य ने भेजा था)-(१४-१९ ई.), ८४.प्रवरसेन-२-तोरमाण का पुत्र (१९ -७९ ई.), ८५.युधिष्ठिर-२(७९-११८, शालिवाहन का समकालीन), ८६.लक्ष्मण(नरेन्द्रादित्य,११८-१३१), ८७. तुञ्जिन या राणादित्य कवि(१३१-१७३), ८८.विक्रमादित्य(१७३-२१५), ८९. बालादित्य(२१५-२५२)-गोनन्द वंश का अन्त।

कर्कोटक वंश-१.दुर्लभवर्धन (अन्तिम गोनन्द राजा बालादित्य का दामाद)-२५२ से २८८ तक, २.दुर्लभक या प्रतापादित्य (२८८-३३८), ३.चन्द्रापीड़ या वर्णादित्य (३३८-३९७), ४.तारापीड़ या उदयादित्य(३९७-४३१), ५.ललितादित्य या कवि मुक्तापीड़(४३१-४६७), ६.कुवलयादित्य(४६७-४६८), ७.वज्रादित्य, वाप्यायिक, या ललितापीड़ (४६८-५२५), ८.पृथिव्यापीड़ (५२५-५६९), ९.संग्रामापीड़ (७दिन), १०.जयापीड़, पण्डित कवि(५६९-६२०), ११.ललितापीड़ (६२०-६७२)-इस काल में हुएनसांग की यात्रा, १२.संग्रामापीड़-२(६७२-७२९), १३.चिप्यट-जयापीड़(७२९-७८१), १४.अजितापीड़(७८१-८३७), १५.अनङ्गपीड़ (८३७-८४०), १६.उत्पलापीड़ (८४०-८४५), १७.सुखवर्मा (८४५-८५२)

उत्पल वंश के अवन्तिवर्मन(अवन्तिपुर नगर) तथा उनके पुत्र ने ८५२-९३६ तक राज्य किया। इस काल में कवि आनन्दवर्धन, रत्नाकर आदि हुये। काबुल के भीम शाही की पौत्री दिद्दा ने अपने बालक पुत्र अभिमन्यु गुप्त के नाम पर ९५७-९७१ तक राज्य किया। गजनी के महमूद का आक्रमण रोका। एका और अत्याचारी हर्ष(१०८६-१११०) के बाद शाहमीर ने शमसुद्दीन नाम से १३१८ में राज्य किया।

उसका वंश १५६१ तक चला। उसके बाद मुगल अकबर आया।

१३.मालवा राजा-शूद्रक ७५६ ई.पू.(कलि २३४५) में राजा हुआ ।इस काल से शूद्रक शक आरम्भ हुआ (यल्ल का ज्योतिष दर्पण,७१)। उसके राज्य में अर्बुद पर्वत पर यज्ञ हुआ जिसमें अग्नि की साक्षी में ४ क्षत्रिय कुलों-प्रतिहार, परमार, चालुक्य, चाहमान(चौहान) ने देशरक्षा के लिये एकता की शपथ ली। इस काम में अग्री(अग्रणी) होने से इन्हें अग्नि-कुल का कहा गया (शतपथ ब्रा.२/२/४/२)।इनका विस्तृत वर्णन भविष्य पु.प्रतिसर्ग पर्व-३ में है। चाहमान काल में शाकम्भरी(दुर्गा-सप्तशती ११/४९) तथा विष्णु अवतार मगध के अजिन ब्राह्मण के पुत्र बुद्ध के प्रसाद से ६१२ ई.पू. में असुर राजधानी निनेवे ध्वस्त हुयी। इस काल से वराहमिहिर ने शक-काल(शाकम्भरी के चाहमान का) आरम्भ माना है(बृहत्संहिता १३/३)। उज्जैन के गर्दभिल्ल राजा दर्पण के काल मे जैन मुनि कालकाचार्य का बहन सरस्वती का राजा ने अपहरण कर लिया। वह सहायता के लिये हिन्दुकुश के ९६ सामन्तों के पास गये। उन्होंने ईरान राजा डेरियस (५५० ई.पू.) से बचने के लिये सौराष्ट्र राजा बलमित्र की सहायता से उज्जैन पर अधिकार किया। शक राजा नहपान या नहसेन को उज्जैन का राजा बना कर उसे जैन दीक्षा देने के कारण कालकाचार्य को जैन-शास्त्रों में वीर कहा गया तथा ५५० ई.पू.से वीर-संवत् आरम्भ हुआ। यह अन्तिम जैन तीर्थङ्कर नहीं थे-उन्हें वीर नहीं, महावीर कहा जाता है। नहपान(५५०-५१०ई.पू.) का दामाद उशवदत्त का पुत्र दिनिक, मित्र आदि शक राजा हुये। ४५७ ई.पू. में हर्ष विक्रमादित्य ने इन्हें पराजित कर पुन: मालव प्रभुत्व स्थापित किया। ७५६-४५७ (शूद्रक से हर्ष शक तक) काल को मेगास्थनीज ने ३०० वर्ष का गणराज्य कहा है। शक राजा के सेनापति यशोमति के पुत्र चष्टन ने ४३७-४२० ई.पू. में अधिकार किया। जयदमन(४२०-३९०), रुद्रदमन-१(३०-३६०), दमजादश्री, जीवदमन, उसका भाई रुद्रसिंह-१(३६०-३१७), रुद्रसेन-२(३१७-२९३), पृथ्वीसेन(२९३) रुद्रसेन-१ का भाई संघदमन(२९२), दमसेन(२९३-२७९)। शक प्रभाव कम हुआ तथा ईश्वरदत्त महाक्षत्रप था। उसके बाद दमजादश्री-२, एक अन्य, और वीरदमन सिर्फ क्षत्रप या सामन्त रहे। यशोदमन-१-महाक्षत्रप(२७९-२७५), उसके भाई विजयसेन(२७५-२६५), दमजादश्री-३(२६५-२६१) हुये। रुद्रसेन-२(२६१-२४१), विष्णुसिंह (२४१-२२६), भरतदमन(२२६-२२०), विष्णुसेन-क्षत्रप (२२०-२११),

रुद्रसिंह-२-क्षत्रप(२११-१९८), यशदमन-क्षत्रप(१९८-१८३), रुद्रदमन -२-महाक्षत्रप(१८३-१६७), रुद्रसेन-३-महाक्षत्रप(१६७-१३७), उसका भांजा रुद्रसिंह (१३७-१३१ ई.पू.) । मथुरा में ये ५७ ई.पू. तक बने रहे ।

श्री हर्ष विक्रम के बाद उज्जैन पर परमार वंशी राजाओं ने अधिकार किया । प्रमर सामवेदी ब्रह्मण था, अग्निवंशी राजा होने पर यह ब्रह्म-क्षत्र वंश हुआ । ३९२- ३८६ ई.पू.तक अम्बापुरी (उज्जैन) में राज्य किया । महामर, देवापि, देवदूत-के ३-३ वर्ष राज्य के बाद कई छोटे राजा हुये । गन्धर्वसेन ने १८२-१३२ ई.पू .राज्य किया । उसका पुत्र शंख राजा बनने पर संन्यासी हो गया । पुन: गन्धर्वसेन को १०२ ई.पू. में राज्य संभालना पड़ा । १ वर्ष बाद शिव कृपा से उसके पुत्र विक्रमादित्य(हर्ष) का जन्म हुआ । उसने ५वर्ष की आयु से १२ वर्ष तपस्या कर बहुत सिद्धियां पायीं । १९ वर्ष की आयु में ८२ ई.पू. में राजा बना तथा १०० वर्ष तक १९ ई. तक राज्य किया -पूर्णे त्रिंशत् शते वर्षे कलौ प्राप्ते भयानके(१४)जात: शिवाज्ञया साऽपि कैलासाद् गुह्य कालपात् (१५)विक्रमादित्य नामानं पिता कृवा मुमोद ह (१६)पञ्चवर्षे वय: प्राप्ते तपसोऽर्थे वनं गत: ।द्वादशाब्दं प्रयत्नेन विक्रमेण कृतं तप:(१७) पश्चादम्बावतीं दिव्यां पुरीं यात: श्रियान्वित: ।

दिव्यं सिंहासनं रम्यं द्वात्रिंशन्मूर्त्ति संयुतम्(१८)(भविष्य,प्रतिसर्ग१/७/१७) विक्रमादित्य का शासन पश्चिम में अरब तक था । उसकी सीमा पर इस्राइल में रोमन राज्य था जहां ईसा मसीह का जन्म हुआ तो पूर्व के राज्य मगध से २ ज्योतिषी गये थे और उन्होंने ईसा के दैवीगुणों के बारे में कहा था । बीच में और कोई राज्य नहीं था ।विक्रम संवत् १० के पौष मास के साथ ही जुलियस सीजर द्वारा ४६ ई.पू. में कैलेण्डर आरम्भ हुआ । उसका आदेश था उत्तरायण गति से आरम्भ करने का नर विक्रम संवत् के प्रचलन के कारण ७ दिन बाद वर्ष आरम्ग हुआ । मूल वर्षारम्भ तिथि को क्रिसमस कहा गया(मार्गशीर्ष मास में समसे बड़ी रात होने के कारण उसे कृष्ण मास कहा गया है (मासानां मार्गशीर्षोऽहं-गीता,१०/३५)। History of Calendar (CSIR-1992) , पृष्ठ १६८ पर इसका शुक्ल पक्ष से आरम्भ माना गया है, पर सिर्फ विक्रम वर्ष ही कृष्ण पक्ष से आरम्भ होता है । पैगम्बर मोहम्मद के चाचा ने भी विक्रम शासन की प्रशंसा की है कि उस समय धर्म का राज्य था ।हिजरी वर्ष भी ६२२ ई. मे विक्रम वर्ष के साथ आरम्भ हुआ तथा पैगम्बर साहब के जीवन काल तक १० वष मे ३ अधिक मास हुये थे(वही, पृ.१८०) । विक्रमादित्य के बारे

में राम तथा कृष्ण के बाद सबसे अधिक कथायें हैं-भविष्य पुराण, कथा- सरित सागर, बेताल-पचीसी, सिंहासन-बतीसी, आदि। भारत के सभी पर्वों का निर्णय विक्रम संवत के आधार पर ही है। इस काल मे बेताल द्वारा पुराणों का पुनः सम्पादन हुआ अतः विक्रम वर्ष को संवत्सर(सम-वत-सरति=इसी के अनुसार समाज चलताहै) या संवत् कहते हैं। इसके पूर्व कलि- आरम्भ में भी नैमिषारण्य में सूत द्वारा इनका संकलन हुआ था -

-एवं द्वापर सन्ध्याया अन्ते सूतेन वर्णितम् ।सूर्यचन्द्रान्वयाख्यानं तन्मया थितं तव(१)विशालायां पुनर्गत्वा वैतालेन विनिर्मितम् ।कथयिष्यति सूतस्तमितिहाससमुच्चयम् ।२ ।सन्मया कथितं सर्वं हृषीकोत्तमपुण्यदम्। पुनर्विक्रम भूपेन भविष्यति समाह्वयः(३)भविष्य,प्रतिसर्ग ३/१ तथा २/२३/३५-३८ में)

विक्रमादित्य के १९ ई. में मरने पर राज्य के १८ खण्ड, ६० वर्षों तक विदेशी आक्रमण के बाद उसके पुत्र शालिवाहन ने ७८ ई. में म्लेच्छों को सिन्धु के पश्चिम भगाया-

स्वर्गते विक्रमादित्ये राजानो बहुधाऽभवन्। तथाष्टादश राज्यानि तेषां नामानि मे श्रृणु ।९। पश्चिमे सिन्धुनद्यन्ते सेतुबन्धे हि दक्षिणे । उत्तरे बदरीस्थाने पूर्वे च कपिलान्तिके ।१०। अष्टादशैव राष्ट्राणि तेषां मध्ये बभूविरे .. ..।११।

नाना भाषाः स्थितास्तत्र बहुधर्म प्रवर्तकाः। एवमब्दशतं(६०) जातं ततस्ते वै शकादयः ।१४ ।श्रुत्वा धर्म विनाशं च बहुवृन्दैः समान्विताः। केचित्तीर्त्वा सिन्धु नदीमार्य्यदेशं समागताः ।१५। हिमपर्वत मार्गेण सिन्धुमार्गेण चागमन्।

जित्वाार्य्यल्लाँठयित्वा तान्स्वदेशं पुनराययुः ।१६। गृहीत्वा योषितस्तेषां परं हर्षमुपाययुः। एतस्मिन्नन्तरे तत्र शालिवाहन भूपतिः।१७। विक्रमादित्य पौत्रश्च पितृराज्यं गृहीतवान्। जित्वा शकान् दुराधर्षान् चीन-तैत्तिरि (तातार) देशजान् ।१८। बाह्लीकान्(बल्ख)-कामरूपांश्च रोमजान् (रोमन) खुरजान्(कुर्द) शठान्। तेषां कोषान्गृहीत्वा च दण्डयोग्यानकारयत् ।१९। स्थापिता तेन मर्य्यादा म्लेच्छार्याणां पृथक्पृथक्। सिन्धुस्थान(हिन्दुस्तान)मिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्य्यस्य चोत्तमम् ।२०। म्लेच्छस्थानं परं सिन्धोः कृतं तेन महात्मना।

कश्मीर में ईसा मसीह से भेंट-

एकदा तु शकाधीशो हिमतुंगं समाययौ ।२१।

ददर्श बलवान्राजा गौरांगं श्वेतवस्त्रकम् ।२२।

ईशपुत्रं च मां विद्धि कुमारी गर्भसंभवम् ।म्लेच्छधर्मस्यवक्तारं सत्यव्रतपरायणम् २४
.. .. राज्यं कृत्वा स षष्ट्यब्दं स्वर्गलोकमुपाययौ ।३३ ।(भविष्य,प्र.३/२)
शालिवाहन के ६० वर्षराज्य (१३८ ई.तक) के बाद १० राजाओं ने ५०० वर्ष राज्य किया। दसवें भोजराज के समय तृतीय कालिदास थे जिनके साथ बाह्लीक में पैगम्बर मोहम्मद से भेंट हुयी। उनके साथ के कुछ ब्राह्मणों ने मोहम्मद के धर्मयुद्ध में उनकी सहायता की, अत: उन्हें मोहयाली कहा गया -
शालिवाहन वंशे च राजानो दश चाभवन्।
राज्यं पञ्चशताब्दं च कृत्वा लोकान्तरं ययु: ।१।
भूपतिर्दशमो वै भोजराज इति स्मृत: ।२।
सेनया दशसाहस्र्या कालिदासेन संयुत:।
तथान्यैर्ब्राह्मणै: सार्द्धं सिन्धु पारमुपाययौ ।३।
.. .. गन्तव्यं भोजराजेन महाकालेश्वरस्थले (मक्का) ।९।
महामद(मुहम्मद) इति ख्यात: पैशाच कृत्ति तत्पर: ।१२।
.. ..लिंगच्छेदी शिखाहीन: श्मश्रुधारी स दूषक:। उच्चालापी सर्वभक्षी...२५
मुसलेनैव संस्कार: कुशैरिव भविष्यति।
तस्मान्मुसलवन्तो हि जातयो धर्मदूषका:(२७) -भविष्य पु. प्रतिसर्ग (३/४)
इस के बाद और १० राजाओं ने ५०० वर्ष राज्य किया-
स्वर्गते भोजराजे तु सप्त भूपास्तदान्वये।
जाताश्चाल्पायुषो मन्दस्त्रिशताब्दान्तरे मृता:।१।
तदन्वये त्रिभूपाश्च द्विशताब्दान्तरे मृता: ।३।(भविष्य,प्र.३/४)
इसके बाद ११वें प्रसिद्ध भोजराज ने सरस्वती कण्ठाभरण(२१५) में लिखा कि विक्रमादित्य तक सभी संस्कृतभाषी थे, शालिवाहन से राजकार्य में प्राकृत भाषाओं का प्रयोग आरम्भ हुआ।
१४.नेपाल राज वंश-यह पूर्ण रूप में उपलब्ध हे क्योंकि नेपाल स्वाधीन रहा है।
गोपाल वंश-१.भुक्तमानागत गुप्त(४१५९-४०७१ ई.पू.), २.जयगुप्त(४०७१-३९९९), ३.परमगुप्त(३९९९-३९१९), ४.हर्षगुप्त(३९१९-३८२६), ५.भीष्मगुप्त (३८२६-३७८८), ६.मणिगुप्त(३७८८-३७५१), ७.विष्णुगुप्त(३७५१-३७०९), ८.यक्षगुप्त(३७०९-३६३७)-नि:सन्तान मरने के बाद भारत के **अहीर वंश** का २०० वर्षों तक (३६३७-३४३७) ३ राजा - ९.वरसिंह, १०.जयमतसिंह,

११भुवनसिंह।

किरात वंश-१२.यलम्बरा, १३.पवि, १४.स्कन्दरा, १५.वलम्ब, १६. हृति, १७.हुमति- यह पाण्डवों के साथ वन गया था।१८.जितेदास्ती-पाण्डव पक्ष में महाभारत युद्ध में मारा गया।-७ राजा ३०० वर्ष (३४३७-३४३८)।

१९.गली-(३१३८-३१३७)। उसके बाद २२ राजाओं ने ७८२ वर्ष २३१९ ई.पू. तक राज्य किया-२०.पुष्क,२१.सुयर्म, २२.पर्भ, २३.स्वानन्द-१,२४.स्वानन्द-२, २५.स्तुवंक, २६.गिघ्री, २७.नाने, २८.लाक, २९.थोर, ३०.थोको, ३१.वर्मा, ३२.गुज, ३३.पुष्कर, ३४.केशु, ३५.सुंस, ३६.सम्मु, ३७.गुणन, ३८.किम्बु, ३९.पटुक, ४०.गस्ती।

सोमवंश-४१.निमिष, ४२.मानाक्ष, ४३.काकवर्मन, ४४-४८-अज्ञात, ४९.पशुप्रेक्ष देव-इस काल में १८६७ई.पू, में भारत से कई व्यक्ति आये। इन ९ राजाओं का ४६४ वर्ष राज्य रहा। ५०-५१-अज्ञात, ५२.भास्करवर्मन ने भारतवर्ष जीता। नि:सन्तान होने के कारण इसने सूर्यवंश के अरमान को गोद लिया (१७१२ ई.पू. में राजा)

सूर्यवंश-५३.भूमिवर्मन(१७१२-१६४५), ५४.चन्द्रवर्मन(१६४५-१५८४), ५५. जयवर्मन(१५८४-१५०२), ५६.वृषवर्मन(१५०२-१४४१), ५७.सर्ववर्मन(१४४१-१३६३), ५८.पृथ्वीवर्मन(१३६३-१२८७), ५९.ज्येष्ठवर्मन(१२८७-१२१२), ६०. हरिवर्मन(१२१२-११३६), ६१.कुबेरवर्मन(११३६-१०४८), ६२.सिद्धिवर्मन (१०४८-९८७), ६३.हरिदत्तवर्मन(९८७-९०६), ६४.वसुदत्तवर्मन(९०६-८४३), ६५.पतिवर्मन(८४३-७९०), ६६.शिववृद्धिवर्मन(७९०-७३६), ६७.वसन्तवर्मन (७३६-६७५), ६८.शिववर्मन(६७५-६१३), ६९.रुद्रवर्मन(६१३-५४७), ७०. वृषदेववर्मन(५४७-४८६)-इसके काल में शंकराचार्य ४८६ ई.पू. में आये थे तथा इनका १२ बोधिसत्वों से अन्तिम शास्त्रार्थ हुआ। इनके आशीर्वाद से राजा को पुत्र हुआ जिसका नाम शंकर रखा गया। ७१.शंकरदेव(४८६-४६१), ७२.धर्मदेव (४६१-४३७),७३. मानदेव(४३७-४१७), ७४.महिदेव(४१७-३९७), ७५.वसन्त देव(३९७-३८२), ७६.उदयदेववर्मन(३८२-३७७), ७७.मानदेववर्मन(३७७-३४७), ७८.गुणकामदेववर्मन(३४७-३३७), ७९.शिवदेववर्मन(३३७-२७६), ८०. नरेन्द्रदेववर्मन(२७६-२३४), ८१.भीमदेववर्मन(२३४-१९८), ८२.विष्णुदेववर्मन (१९८-१५१), ८३.विश्वदेववर्मन(१५१-१०१)। इसके बाद इसका दामाद अंशुवर्मन राजा हुआ।

ठाकुरी वंश-८४.अंशुवर्मन(१०१-३३ई.पू.)-उज्जैन के विक्रमादित्य ५७ ई.पू. में यहां आये तथा चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से संवत आरम्भ किया। ८५.कृतवर्मन(३३ ई.पू.-५४ ई.तक), ८६.भीमार्जुन(५४-१४७ई.), ८७.नन्ददेव(१४७-१७२), ८८. अज्ञात(१७२-२३२), ८९.अज्ञात(२३२-२९९), ९०.वीरदेव(२९९-३९४), ९१. चन्द्रकेतुदेव(३९४-४६०), ९२.नरेन्द्रदेव(४५०-५१६), ९३.वरदेव(५१६-५७०)- अवलोकितेश्वर तथा एक पीठाधीश शंकराचार्य ५२२ ई.में यहां आये।

९४.नरमुदी(५७०-६१५), ९५.शंकरदेव(६१५-६२७), ९६.वर्धमानदेव(६२७-६४०), ९७.बलिदेव(६४०-६५३), ९८.जयदेव(६५३-६६८), ९९.बलार्जुनदेव (६६८-६८५), १००.विक्रमदेव(६८५-६९७), १०१.गुणकामदेव(६९६-७४८), १०२.भोजदेव(७४८-७५६), १०३.लक्ष्मीकामदेव(७५६-७७८), १०४.जयकाम देव(७७८-७९८)।

१५.कुछ महापुरुषों का काल-परशुराम का काल ६१७७ ई.पू.दिखाया गया है। **राम** का समय वाल्मीकि रामायण की ग्रहस्थिति के अनुसार ११-२-४४३३ ई.पू. है (बालकाण्ड, सर्ग१८)-

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययु:।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।८।
नक्षत्रेऽदितिदवत्ये स्वोच्च संस्थेषु पञ्चसु।ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पतुविन्दुना सह९
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोक नमस्कृतम्।कौशल्याजनयद्रामं सर्वलक्षण संयुतम्१०

जन्मस्थान-अयोध्या-८१°२४’ पूर्व २६°४८’ उत्तर, स्थानीय समय१०-४७-४८ लग्न -९०°०’१”, सूर्य -९°०’०”, चन्द्र -९०°०’१”, मंगल-२९८°०’०”, बुध-२१°०’०”, गुरु-९०°०’१”, शुक्र-३५७°०’०”, शनि -२००°०’०”, राहु -१२०°४’२६”, गुरु महादशा का भोग्यकाल ४ वर्ष।

सिद्धार्थ बुद्ध-जन्म-३१-३-१८८६ ई.पू., वैशाख शुक्ल १५(पूर्णिमा) ५९-२४ घटी तक। कपिलवस्तु के लिये प्रस्थान-२९-५-१८५९ रविवार, आषाढ़ शुक्ल १५।
बुद्धत्व प्राप्ति-३-४-१८५१, वैशाख पूर्णिमा सूर्योदय के ११ घटी पूर्व तक।
शुद्धोदन का देहान्त-२५-६-१८४८, श्रावण पूर्णिमा, शनिवार।
बुद्ध निर्वाण-२७-३-१८०७, मंगलवार, वैशाख पूर्णिमा, सूर्योदय से कुछ पूर्व।

शंकराचार्य का जन्म-बी.वी.रमण के महत्वपूर्ण जातकों में शंकर दिग्विजय का एक श्लोक उद्धृत है जिसके अनुसार ५०९ ई.पू.वैशाख पूर्णिमा को उनका जन्म

हुआ था।बृहत् शंकर दिग्विजय में भी ऐसा ही श्लोक है-

तिष्ये प्रयात्यनल-शेवधि-बाण-नेत्रे (२५९३) ऽब्दे नन्दने दिनमणावुदगध्वभाजि।
राधेऽदितेरुडु विनिर्गत मङ्गलग्नेऽस्याहूतवान् शिवगुरुः स च शंकरेति।।

अर्थात् कलि (तिष्य) संवत् २५९३, वैशाख(राध)मास, पुनर्वसु(अदिति देवता का) नक्षत्र, सूर्य उत्तरायण के उत्तर गोल में (मध्याह्न नहीं), धनु(मङ्ग) लग्न में जन्म होने पर पिता शिवगुरु ने शंकर नाम रखा।

जन्म स्थान-केरल के पूर्णा (पोन्नानी) नदी तट पर-१०°४०' उत्तर, ७६° पूर्व।

४-४-५०९ ई.पू. मंगलवार, २२५२ बजे प्राणपद लग्न के अनुसार।

सौर वर्ष का आरम्भ ९.५३४८ मार्च ५०९ ई.पू.(९ मार्च उज्जैन मध्य सूर्योदय ६ बजे के ०.५३४८ दिन बाद), वैशाख शुक्ल १ का आरम्भ मार्च २०.७६२३४ को।

वैशाख शुक्ल ५, ३-४-५०९ ई.पू.-०९३४ बजे से, ४-४-५०९,११३२ तक।

पुनर्वसु नक्षत्र ४-४-५०९, ०१३९ से ५-४-५०९, ०४०६ तक।

अहर्गण-सृष्टि-७,१४,४०,३२,४३,९६३(रविवार=१), जुलियन-१-१-४७१३ से (मंगलवार=१) १५,३५,६०५, कलि(गुरुवार=१)-९,४७,१४७ ।

४-४-५०९ को कालटी में सूर्योदय ६-२७-३७ बजे।२२५२ बजे लग्न।

८-२१°-२४', प्राणपद लग्न ८-२१°-२३', दशम भाव ५-२६°-४३'।

अयनांश=-१०°५८'९", सूर्य सिद्धान्तसे=-१६°५०'

ग्रह	मध्य	स्पष्ट	मन्दोच्च
सूर्य	२३.६२	२५.३८	--
चन्द्र	--	९०.६८	--
मंगल	२७०.४८	३०५.१९	१३०.०२
बुध	१२८.६३	४४.३४	२२०.३९
गुरु	२४४.५३	२४७.४५	१७१.१८
शुक्र	१७८.५१	६७.५३	७९.७८
शनि	३४६.४१	३४३.२२	२३६.६२
राहु	३१.४७	--	--

श्रीकृष्ण-जन्म १९-७-३२२८, मथुरा(२७°२५ उत्तर, ७७°४१ पूर्व) में मध्यरात्रि। सूर्य १३९°-४८', चन्द्र ४७°-४२', मंगल ९१°-६', बुध १५२°-४८', गुरु १४८°-५४', शुक्र १०२°-५४', शनि २२४°-४२', राहु १०६°-२४', लग्न ५०°

अयनांश +५०°४०' ।

अन्य बुद्ध-मञ्जुश्री बुद्ध-चीन में,७ ब्रह्मा में एक-फान। स्वायम्भुव मनु या उसके समीप। **कश्यप बुद्ध** १७,५०० ई.पू.। पूरन कश्यप सिद्धार्थ बुद्ध के कुछ पूर्व बिहार के रोहतास जिले के कसाप में। **अमिताभ बुद्ध** चीन में राम के समय-रावण को उनका उपदेश लंकावतार-सूत्र है। योगवासिष्ठ,निर्वाण खण्ड अध्याय १४-१७ में उन्हें काकभुशुण्डि कहा है जो मेरु के पूर्वोत्तर(चीन) में थे। वसिष्ठ उनके पास गये थे। इनके विचार वाल्मीकि रामायण,अयोध्या काण्ड १०८-१०९ अध्याय में हैं।१०९-३४ श्लोक में बुध, बुद्ध, तथागत, शक्यतम(शाक्य) है। **सुमेधा बुद्ध** परशुराम के काल में महेन्द्रगिरि पर थे। यहां महानदी के दक्षिण तट पर एक जिला बौध है। शिवधनु भंग के बाद इन्होंने परशुराम को त्रिपुरा-रहस्य का उपदेश दिया। दुर्गा सप्तशती के ऋषि। १० महाविद्या की १० प्रज्ञापारमिता नाम से शिक्षा दी। **शाक्यसिंह बुद्ध** महाभारत पूर्व राजा जितेदास्ती काल में गये थे। उनकी कथा महाभारत वनपर्व कैरातपर्व,अध्याय ३८-४१ तथा किरातार्जुनीय में है। सिद्धार्थ से कुछ पूर्व तीन बुद्धों का फाहियान ने वर्णन किया है-क्रकुच्छद,कनकमुनि,कश्यप। **कनकमुनि** के स्तूप को मौर्य अशोक ने शासन के १४वें वर्ष में २ गुणा किया। सिद्धार्थ के बाद ३ लोकधातु बुद्ध हुये जिनमें २ कश्मीर में-गोनन्द वंश के ४८ वें राजा अशोक(१४०० ई.पू.) तथा ५१वें राजा कनिष्क(१२६४) ।१५०५में(फाहियान, सिद्धार्थ निर्वाण से ३०० वर्ष बाद) **मैत्रेय बुद्ध** धान्य-कटक(ओड़िशा का कटक जो धान्य-क्षेत्र है-धानमण्डल,सालेपुर, चावलियागंज आदि) तथा निकट में कोणार्क में सूर्य(मित्र) क्षेत्र है। **दीपंकर बुद्ध** भी सुमेधा काल में थे जिनके शिष्य उत्कल राजा **इन्द्रभूति** थे जिनके पुत्र **पद्मसम्भव** ने तिब्बत में लामा परम्परा आरम्भ की। सिद्धार्थ ने ३ अन्य बुद्धों की चर्चा की है , जिनकी शिक्षा लिखित उपदेश के अभाव में लुप्त हो गयी-**विपश्यी, शिखि, विश्वभू**। **विष्णु अवतार बुद्ध** ६१२ ई.पू.(शाकम्भरी शक) से पूर्व हुये जब असुर राजधानी निनेवे ध्वस्त हुयी।

महावीर १८६२-१७९० ई.पू. में थे(बुद्ध के १५वर्ष बाद मृत्यु)। वीर संवत् कालकाचार्य द्वारा ५५० इ.पू. में चला।

परशुराम,कलि, और विक्रम वर्ष संवत् हैं क्योंकि इन कालों से समाज व्यवस्था आरम्भ हुयी, बाकी सिर्फ गणना के आधार शक हैं।

अध्याय-३

वेदांग और सांख्य

१.वेद के ४ पाद-वेद के दो प्रकार से ४ विभाग हैं-ऋक्, यजु:,साम-मूर्त्ति, गति,महिमा(प्रभाव-क्षेत्र) का मूल अथर्व है-अत: त्रयी(३ विभाग) का अर्थ ४ वेद है। वेद शब्द सदा ४ अर्थ में ही प्रयोग होता है। वेद का स्वरूप भी ४ प्रकार का है- १. मन्त्र ब्राह्मण

२.ब्राह्मण ३.आरण्यक ४.उपनिषद्

१.**मन्त्र** या संहिता(मन्त्रों का सङ्कलन)-मन्त्र मन से सम्बन्धित है-मननात् त्रायते,इति मन्त्र:-जो मनन द्वारा त्राण करे वह मन्त्र है। मनुष्य का मन स्वयम्भू तथा ब्रह्माण्ड की प्रतिमा है-सभी में १०० अरब(खर्व) कण हैं। भ्रूमध्य का आज्ञा चक्र तप: लोक की प्रतिमा है।ब्रह्माण्डों के संग्रह की तरह मन्त्रों का संकलन है।

२.**ब्राह्मण**-यह ब्रह्माण्ड का प्रतिरूप है जो विश्व की सबसे बड़ी रचना के रूप में समझा जाता है।

३.**आरण्यक**-यह सौर मण्डल की प्रतिमा है जिसकी अरा (किनारा या पर्व) से समय चक्र की माप होती है-

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विंशति प्रत्यराभि:।
अष्टकै: षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गं भेदं द्विनिमित्तैक मोहम् (श्वेता.उ.१/४)

अर्थात् विश्व-चक्र का एक धुरा (नेमि), ३ आवरण(खोल), १६ अरा(किनारा), ५० धार(तीक्ष्ण किनारा), २० छोटे किनारे(प्रत्यरा), ६ अष्टक तथा ३ मार्ग हैं। मोह तथा उसके २ कारणों से मुक्ति के लिये ३ मार्ग हैं-भक्ति, क्रिया और ज्ञान। यह ३ मार्ग विशेषत: भक्ति आरण्यक का मुख्य विषय है।

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहु: परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम्-इति।
(ऋक् १/१६४/१२, श्वेताश्वतर उपनिषद् १/१/११)

अर्थात् संवत्सर रूपी प्रजापति(सौर प्रजापति) के ५ पाद(ऋतु) पितर (संसार उत्पन्न करने वाले) हैं। उसकी १२ आकृति(मास)। इसका बाहरी आधा भाग (अहर्गण माप से) परार्ध योजन का है तथा जल-रूप(वरुण-क्षेत्र, शनि से अन्धकार दिशा में) है। अन्य लोग इसे ७ चक्र(छन्द,युग या योजन की माप,लोक,या ग्रह)

तथा ६ अरा(ऋतु) के रथ में बैठा बताते हैं।
४.**उपनिषद्**(उप=निकट,निषद्=बैठना)-यह पृथ्वी के समरूप है , जो सृष्टि का आधार है। इस पर पाद रखा जाता है, अतः यह पद्म है, अथवा सृष्टि निर्माण का अन्तिम स्तर है-प्रथम रूप शीर्ष है (ऊर्ध्व मूलं-गीता १५/१)। उपनिषद् में भी अन्तिम निष्कर्ष है , जो पूर्व वर्णनों का स्थिर सिद्धान्त है -
अरण्यमियान्नपुनरेयात्-इत्युपनिषत् (ब्रह्मसूत्र ३/४/४०-शाङ्कर भाष्य)
नाना तु विद्या अविद्या च। स यदेव विद्यया करोति, श्रद्धया उपनिषदो तदेव वीर्य्यवत्तरं भवति (छान्दोग्य उ. १/१/१०)
तस्योपनिषदहरिति, तस्योपनिषदहमिति(बृहदारण्यक उ.६/५)
तस्माद्वा अप उपस्पृशति-इत्युपनिषत् (शतपथ ब्रा.१/१/१/१)
तस्य वा एतस्याग्नेवर्गिव उपनिषत्, अथादेशा उपनिषदाम् (शत.१०/४/५/१)
अथ खल्वियं सर्वस्यै वाच उपनिषत् (ऐतरेय आ. ३/२/५)
तत्र विदिते सांख्ये औपनिषदे ब्राह्मणि विषय:(गीता २/३१,नीलकण्ठी व्याख्या)
वेदस्योपनिषत् सत्यम्, सत्यस्योपनिषद्दमः। दमस्योपनिषद्दानं,दानस्योपनिषत्तपः। तपसोपनिषत्त्यागस्त्यागस्योपनिषत्सुखम्। सुखस्योपनिषत्स्वर्ग:स्वर्गस्योपनिषच्छमः (महाभारत,शान्तिपर्व,मोक्ष पर्व,२५१/११,१२)
पौरुषेयता-वेद की रचना पुरुष द्वारा हुयी है, अतः यह प्राय: पुरुष है-
वेदांश्चैके सन्निकर्ष पुरुषाख्या (मीमांसा सूत्र १/१/२७)।
१.पूर्ण विश्व १६ कला के पुरुष द्वारा निर्मित है। वेद और विश्व एक ही है।
२.वेद ऋषियों द्वारा निर्मित है। तथापि यह सामान्य पुरुषों की क्षमता के परे है, अत: अपौरुषेय है।यह नित्य सत्य अर्थ में ब्रह्म के समतुल्य है।विराट् पुरुष भूमि (विश्व) से १० गुणा बड़ा है तथा वेद पुरुष की १६ में १५ कला का ही वर्णन करता है-परात्पर वर्णन से परे है। शब्द रूप में भी सृष्टि प्रक्रिया के समतुल्य होने से वेद नित्य है।
ऋषि कृत और ब्राह्मण आदि अङ्गों का उल्लेख-
ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव,विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्व विद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह।१।
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।५।(मुण्डक उ.१/१/१,५)

यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिण अन्वैच्छन् देवास्तपसा श्रमेण।
तां देवीं वाच हविषा यजामहे सा नो दधातु सुकृतस्य लोके(तैत्ति.ब्रा.२,८,८,५)
नमो ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्य:।
नमो ऋषिभ्यो मन्त्रकृतो मन्त्रकृत: प्राहुर्दैवी वाचम् (वरदापूर्वतापिनी उपनिषद्)
ऋषे मन्त्रकृता स्तोमै: कश्यपोद्वर्धयद् गिर:।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पति:।(ऋक् ९/११४/२)
साक्षात् कृत धर्माण ऋषयो बभूवु:। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्म्मभ्य-उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रदु:। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषु:। वेदं च वेदाङ्गानि च(यास्क निरुक्त १/२०)
एवं वा अरेऽस्य महतोभूतस्य नि:श्वसितमेतद्यद्-ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदो अथर्वाङ्गिरस:, इतिहास:, पुराणं, विद्या:, उपनिषद्, श्लोका:, सूत्राणि, अनुव्याख्यानानि, व्याख्यानानि। अस्यैदैतानि नि:श्वसितानि।(बृहदारण्यक उप.२/४/१०)
मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् (आपस्तम्ब श्रौतसूत्र २४/१/३१)
मन्त्र ब्राह्मण वेद इत्याचक्षते(बौधायन गृह्य सूत्र २/६/२)
आम्नाय: पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च(कौशिक सूत्र १/३)
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णात: परं ब्रह्माधिगच्छति।(मैत्रायणी उप.६/२२, आरण्यक)
वैशेषिक सूत्र-बुद्धिपूर्वा वाक्य कृतिर्वेदे (६/१/१)
ब्राह्मणे संज्ञा कर्म सिद्धि लिङ्गम् (६/१/२)
आर्ष सिद्ध दर्शनं च धर्मेभ्य:(९/२//१३)
वेद अनित्य की व्याख्या करते हैं -अनित्य दर्शनाच्च (मीमांसा सूत्र १/१/२८)
न्याय सूत्र-आप्तोपदेश:शब्द:(१/१७), स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात्(१/१८),
ऋक्(१/८३)-आदङ्गिरा: प्रथमं दधिरे वयं इद्धाग्नय: शम्या ये सुकृत्यया।४।
यज्ञैरथर्वा प्रथम: पथस्तते तत सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।५।
ऋक्(८,७५,२५)तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया।वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्
विश्व का १० गुणा-स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम्(पुरुष सूक्त १)
एष वेदो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्ट: (श्वेताश्वतर.४/१७)
तस्मादृच: साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च(मुण्डक उ.२/१)
सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावा पृथिवी तावदित्तत्(ऋक्१०/११४/८)

अत: ब्रह्म वेद के ४ पाद-ऋक्, यजु:, साम, अथर्व।
ब्राह्मण(ब्रह्म का विवर्त्त)-मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्।
शब्द रूप में वेद ऋषियों द्वारा निर्मित होने पर भी ब्राह्मण द्वारा अपौरुषेय होते हैं
१.विभिन्न ऋषियों द्वारा अलग प्रसंगों में व्यवहृत शब्दों का ब्राह्मण ग्रन्थों द्वारा एकीकृत अर्थ किया जाता है , जिससे व्यक्तिगत रुचि, भूल, प्रवृत्ति दूर होती है।
२.मन्त्र विचार के खण्ड या कण हैं, इस दृष्टि से वे पूर्ण नहीं हैं। ३ प्रकार के ब्राह्मण ग्रन्थों द्वारा वे पूर्ण होते हैं-ब्राह्मण ग्रन्थ द्वारा कर्म(भौतिक क्रिया) की व्याख्या, आरण्यक द्वारा भक्ति(कर्म+ज्ञान)। विश्व के काल-चक्र के अनुसार हम कार्य करते हैं। उपनिषद द्वारा ज्ञान (सिद्धान्त) की व्याख्या होती है।

२.दर्शन का कार्य,भेद-अलग अलग प्रसंगों की पूर्ण व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों के द्वारा है। सम्पूर्ण की एक साथ व्याख्या दर्शन है। वेद को श्रुति कहते हैं। श्रवा का अर्थ सरल रेखा या दिशा है-किसी दिशा में ज्ञान पाना श्रुति है। सभी दिशाओं का सामान्य ज्ञान दर्शन है। वेद के किसी सूक्त का निर्माण भी दर्शन है-ऋषि मन्त्र का द्रष्टा है। दर्शन की दो धारायें हैं-आस्तिक(वेद या भगवान में विश्वास करने वाला), तथा नास्तिक (वेद को प्रमाण नहीं माननेवाला)। यह परिभाषा भ्रामक है , क्योंकि कौत्स के अनुसार वेद के शब्दों का कोई निश्चित अर्थ नहीं है-उनके अर्थ भ्रामक या विपरीत है, अत: उनका निष्कर्ष बेकार है। पर यास्क के अनुसार वेद के शब्दों का नहीं , व्याख्या करने वाले का दोष है-यदि एक अन्धा खम्भे से टकराता है , तो उसमें खम्भे का दोष नहीं है -

अविस्पष्टार्थत्त्वात्, अनर्थकत्त्वात्, विप्रतिषिद्धार्थकत्त्वाच्च, विधिमन्त्रयोर्वेदार्थ प्रत्यययाय शास्त्रारम्भो निरर्थक:(कौत्स-१/१५)।न ह्येष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति, पुरुषापराध: स भवति(यास्क का निरुक्त १/१६)

पर यास्क ने भी वैकल्पिक अर्थ स्वीकार किया है-

अपि वा उभयविधा: स्यु: (७/८/७)।अपि वा पुरुष विद्यानामेव सतां कर्म्मात्मान एते स्यु:,यथा यज्ञो यजमानस्य(७/८/८)।

त्रयी (३ वेद तथा मूल अथर्व) में सबका मूल अस्ति या अमृत कहा गया है , क्योंकि इसका नाश नहीं होता-

अथ सर्वाणि भूतानि पर्य्यैक्षत्। स त्रय्यामेव विद्यायां सर्वाणि भूतान्यपश्यत्। अत्र हि सर्वेषां छन्दसामात्मा, सर्वेषां स्तोमानां, सर्वेषां प्राणानां, सर्वेषां देवानाम्।

एतद्वा 'अस्ति'। एतद्धि 'अमृतम्'। यद्धि 'अमृतम्', तद्धि 'अस्ति'। एतदुतत्, यत्- 'मर्त्यम्'। (शतपथ ब्रा.१०/४/२/२१)
प्रजापति स्वेवेदं सर्वं यदिदं किञ्च (शत.६/४/२/५)
यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी (वा.यजु.८/३६)
अमृत के अतिरिक्त अन्य भाग मर्त्य है-यह समाप्त होता है, अतः 'नास्ति' है। प्रजापति ही सबको उत्पन्न करता है। स्थायी सर्वव्यापी तत्त्व रस है, उसमें क्षणिक कम्पन बल है। रस के ३ तत्त्व हैं-मन(चेतना का कम्पन), प्राण (शक्ति), वाक्(क्रिया या उसका क्षेत्र)। बल के कारण विश्व रचना के भी ३ तत्त्व हैं-रूप (आकार), कर्म, नाम। इनके आधार पर ३-३ दर्शन हैं-

प्रजापति

आत्मा		**विश्व**
(रस, अमृत, अस्ति)		(बल, मर्त्य, नास्ति)
१.शारीरक-मन	⟶	रूप-जैन या आर्हत्
२.प्राधानिक-प्राण	⟶	कर्म-बौद्ध
३.वैशेषिक-वाक्	⟶	नाम-चार्वाक

३.दशवाद-देवताओं के पूर्व साध्य-युग था जो यज्ञ या उत्पादन विज्ञान को ही मुख्य मानकर उसी की उपासना करते थे-
यज्ञेन यज्ञमजयन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे **साध्याः** सन्ति देवाः।
(पुरुष सूक्त-१६,ऋक् १/१६४/५०, १०/९०/१६, वा.यजु.३१/१६, आदि)
यह युग आद्य युग के पूर्व मणिजा सभ्यता का काल था (युग-चक्र, पृष्ठ ४९)। साध्यों में ब्रह्मा उत्पन्न हुये। यज्ञ के आधार पर विश्व उत्पत्ति के १० कारण माने गये जिनका उल्लेख नासदीय सूक्त (ऋक्.१०/१२९/१-७, तैत्तिरीय ब्राह्मण २/८/९/३-९) में है तथा १० प्रकार के दर्शन हुये-
नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासी**द्रजो** नो **व्योमा परो** यत्।
कि**मावरीवः** कुह कस्य शर्म**न्नम्भः** किमासीद्गनं गभीरम्।१।
न **मृत्युरासदमृतं** न तर्हि न **रात्र्या अह्न** आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं च नास।२।

तम आसीत् तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्व पिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम्।३।
कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेत: प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।४।
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामध: स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् त्स्वधा अवस्तात् प्रयति: परस्तात्।५।
को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत अजाता कुत इयं विसृष्टि:।
अर्वाग्**देवा** अस्य विसर्जनेनाऽथा **को वेद** यत आबभूव।६।
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्ष: परमे व्योमन् त्सो अङ्ग यदि वा न वेद।७।

इनके आधार पर पं. मधुसूदन ओझा ने दशवाद-रहस्य तथा सभी वादों पर अलग अलग पुस्तकें लिखीं। विज्ञान की पृष्ठभूमि रूप में इतिवृत्तवाद (सृष्टि का वास्तविक क्रम) तथा निष्कर्ष रूप में सिद्धान्त वाद मिलाकर अहोरात्रवाद ग्रन्थ के अन्त में १२ वादों की गणना की है-

इतिवृत्तं सदसद् वा रजो वियद् वापरं तथावरणम्।
अम्भोऽमृतमृत्यू वाऽहोरात्रो दैवसंशयो ब्रह्म।।
एते द्वादश वादा: शास्त्रेऽस्मिन् ब्रह्मविज्ञाने।

१.इतिवृत्तवाद, २.सदसद्वाद, ३.रजोवाद, ४.व्योमवाद, ५.अपरवाद, ६.आवरण वाद, ७.अम्भोवाद, ८.अमृत-मृत्युवाद, ९.अहोरात्रवाद, १०.दैववाद, ११. संशयवाद, १२.सिद्धान्तवाद।

पं. मोतीलाल शास्त्री, वासुदेव शरण अग्रवाल, पं. गिरिधर शर्मा आदि के सारांशों के अनुसार १० वादों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

१.**सदसद्वाद**-सत् का अर्थ है दीखनेवाला या अनुभव होने लायक। अनुभव सीमा के परे असत् है-अति सूक्ष्म, निराकार , अतिदूर, प्रकाश हीन आदि। अथर्ववेद के स्कम्भ-सूक्त (१०/७/२१-२५) में इनको सत् और असत् शाखा कहा गया है। शतपथ ब्रा.(६/१/१/१) के अनुसार सृष्टि का मूल ऋषि असत् प्राण है। तैत्तिरीय उप.(२/७/१) में भी-असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो सदजायत। मनुस्मृति(३/२०१) में असत् ऋषि से सृष्टि क्रम है-ऋषिभ्य: पितरो जाता: पितृभ्यो देवदानवा:। देवेभ्यश्च जगत्सर्वं चरं स्थण्वनुपूर्वश:।।

यही मत ऋक्(१/९/५) में है-असदित्ते विभु प्रभुः। ऋक् ९/८/८६,१०/७२/३/तै.ब्रा.२/२/९ में भी है।

एक अन्य विचार है कि सत् की उत्पत्ति असत् से नहीं हो सकती, मूल भी सत् होना चाहिये-सतो अभ्या सज्जजान(तैत्तिरीय सं.४/६/२/३)ऋक् १/९६/७,८/१०१/११,९/३१/६,९/८६/५,१०/५३/१, तैत्तिरीय उ.(२/६) भी सृष्टि में परिवर्तन और स्थिरता दोनों दीखते हैं, अतः सत्-असत् युग्म मूल है-सतश्च योनिमसतश्च विश्वः (वा.यजु. १३/३)।शतपथ१०/४/१ में भी। सदसद्वाद ग्रन्थ की भूमिका में पं. मधुसूदन ओझा ने इन ३ वादों के ७ प्रकार के विमर्शों द्वारा २१ भेद बताये हैं ,जो सभी दर्शनों का मूल है-

विमर्श	सत्/असत्/सदसत्-वाद	मत
१.प्रत्यय	नित्यविज्ञानाद्वैत	ब्राह्मण
	क्षणिकविज्ञानाद्वैत	श्रमणक
	आनन्दविज्ञानाद्वैत	वैज्ञानिक
२.प्रकृति	कर्म्माद्वैत	वैनाशिक
	ब्रह्माद्वैत	अविनाशिक
	द्वैताद्वैत	वैनाशिकवादविनाशि
३.तादात्म्य	भिन्नाभिन्नत्व	धर्म्माधर्म्मी रस-बल का अभेद
	बलसारत्व	बल की प्रधानता
	रससारत्व	रसप्राधान्य
४.अभिकार्य	असत्कार्यवाद	वैशेषिक
	सत्कार्यवाद	प्राधानिक
	मिथ्याकार्यवाद	शारीरक
५.गुण	असन्मूलासृष्टि	प्राणमूलकसृष्टि
	सन्मूलासृष्टि	वाङ्मूलकसृष्टि
	सदसदैकात्म्यमूलासृष्टि	मनोमूलकसृष्टि
६.सामञ्जस्य	प्रागभावसमुच्चितकारणवाद	अभावपूर्वकभावोत्पत्ति
	सम्भूतिविनाशवाद	उत्पत्तिविनाशप्रवाह
	विद्या-अविद्यावाद	सर्वजगदभावात्मकभावमूलकसृष्टि
७.अक्षर	सौगत	सृष्टिबीजस्याक्षरस्याव्यक्तबलरूपत्व

(७.अक्षर) कपिल सृष्टिबीजस्याक्षरस्यजड़प्रधानरूपत्व

बादरायण सृष्टिबीजस्याक्षरस्यचेतनपुरुषरूपत्व

२.रजोवाद-रज का अर्थ धूलि कण,गति,धन आदि है। सभी लोक(अकाशगंगा, तारा, या ग्रह) धूलि कणों के समान आकाश में विचरण कर रहे हैं, अत: उन्हें भी रज कहा गया है-रजांसि वै लोका:(वा.यजु.११/६, शतपथ ब्रा.६/३/१/१८)। गति द्वारा ही संसार की रचना हुयी है। प्रकृति के ३ गुणों में सत्व ज्ञान है, तमोगुण जड़ है, केवल क्रियाशील रजोगुण द्वारा ही सृष्टि हो सकती है। रजोवाद के समर्थक वाक्य-य: पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देव: सविता महित्वना (ऋक्.५/८१/३)। तीन धातु-अर्कस्त्रिधातु रजसो विमान:(ऋक्.३/२६/७)

विवर्तेते रजसी (ऋक्.६/९/१)। अन्य हैं-ऋक्(१/१६४/६,१४;१/३५/२,९; १०/३२/२), शतपथ ब्रा.(६/३/१८)।

३.व्योमवाद-सूक्ष्म आकाश ही सृष्टि का मूल है। व्योम का अर्थ ज्योतिष में शून्य होता है। परम व्योम सृष्टि का मूल रूप या अक्षर है-ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् (ऋक्.१/१६४/३९)। इसके सहस्र रूप बनते हैं-सहस्राक्षरा परमे व्योमन् (ऋक्.१/१६४/४१)। यह आधार है-परमे व्योमन्न आधारयद्रोदसी सुदंसा: (ऋक्.१/६२/७)।अन्य-ऋक्(१/१४३/२; १०/१२९/७;६/८/२)

४.अपरवाद-पर का अर्थ है आत्मा , और अपर प्रकृति है। इन दोनों से उत्पन्न होने के कारण इसे पर-अपर वाद भी कहते हैं। भौतिक जगत् प्राकृतिक है, अत: इसका उद्गम भी प्रकृति से ही है। प्रकृति को स्वभाव, नियति(परिणाम वाद), यदृच्छा(आकस्मिक) भी कहते हैं। प्रकृति के महान, अहंकार आदि रूपों से सृष्टि का वर्णन सांख्य का विषय है। अस्य-वामीय सूक्त (ऋक्.१/१६४/१७-१९) में पर-अवर द्वारा सृष्टि का वर्णन है। अन्य-कृणोति पूर्वमपरं शचीभि:(ऋक्.६/४७/१५)। कार्य-कारण का अभेद शतपथ ब्रा.(६/१/२/२७) में समझाया है-उभयं हैतद्भवति-पिता च पुत्रश्च। प्रजापतिश्चाग्निश्च, अग्निश्च प्रजापतिश्च, प्रजापतिश्च देवाश्च, देवाश्च प्रजापतिश्च। अन्य-ऋक्.(१०/१८/५),(८/२७/१४) आदि।

५.आवरणवाद-आवरण का अर्थ है पदार्थ का बाह्य रूप। आवरण को वयुन कहा गया है। विभिन्न तत्त्वों के परस्पर मिलन को वयन(वस्त्र बुनना) कहते हैं-वयांसि तद् व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मनुजो निवास:-भागवत पु.(२/१/३६)

वयुन या आवरण छन्द है-यह देश-काल की माप है; इसे अध्याय २ में समझाया गया है।आवरण से ढंका पदार्थ वयोनाध है, तथा उसे बान्धने वाला प्राण वय है (शतपथ ब्रा.८/२/२/८)। अतः वय का अर्थ आयु भी है। आवरण या छन्द माया है-इससे भीतरी पदार्थ छिप जाता है, अतः माया का अर्थ भ्रम है। माया से सृष्टि होने से यह माता है। आवरण को चर्म या शर्म(शतपथ.३/२/१/८) भी कहा गया है। माया रूपी तम से सृष्टि-तम असीत्तमसागूळ्हमग्रे(ऋक्१०/१२९) अन्य-ऋक्-(१/१४३/६;१/५५/८;२/८७/४;९/७४/२), मनुस्मृति (१/५१)-आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः।

६.अम्भोवाद-सृष्टि का मूल पदार्थ समरूप होने से रस(तैत्तिरीय उप.२/७/२) या अप् कहा गया है। इसमें कम्पन होने से यह अम्भ है, उसमें लहर आने से सलिल, उत्पन्न पदार्थ द्रप्स(drops) या बुलबुला है। मूल से निकलने के कारण यह स्कन्द या च्युत है। अप् का विस्तार समुद्र है, जिसके रूप नभस्वान्, सरस्वान्, अर्णव तथा उनका आदित्य(आदि करनेवाला) प्राण अर्यमा, वरुण, मित्र तीन धामों-स्वयम्भू, परमेष्ठी, सौर मण्डल-में हैं। समुद्र जैसा विस्तार माता का गर्भ है, उसमें निर्माण का केन्द्र पिता है। आपो हि ष्ठा मयो भुवः(ऋक्.१०/९/१,वा. यजु.११/५०, ३६/१४), प्र सुव आपो महिमामुत्तमम्(ऋक्.१०/७५/१)। अन्य-ऋक्.६/५०/७; १/१००/१; शतपथ ११/१/६/१; १/१/१/१४; ६/१/१/८; १०/५/४/१५; १०/५/४/१४; ४/५/२/१४।

७.अमृत-मृत्युवाद-रस रूप स्थायी या अमृत है; उससे उत्पन्न सृष्टि क्षणिक या मृत्यु है। अमृत रस के समुद्र से मुक्त होने से यह मुच्यु है, जिसे परोक्ष में मृत्यु कहा गया है (गोपथ ब्रा.पू.१/७)। सभी सृष्ट पदार्थ क्षर या मृत्यु तथा मूल स्रोत अमृत है-पादोऽस्व विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि(पुरुष सूक्त ३)। सत् भाव मृत्यु है; असत् अभाव किन्तु अमृत है। दोनों साथ-साथ रहते हैं-अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतामहितम्(शतपथ १०/५/२/४)। निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च (वा.यजु. ३४/३१)। अन्य-ऋक्१/८३/५; ३/१/१४; शत.(१०/१/४/१)

८.अहोरात्रवाद-मूल अव्यक्त से व्यक्त की सृष्टि ब्रह्मा का दिन तथा उसका पुनः अव्यक्त में लीन होना रात्रि है-अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वे प्रभवन्त्यहरागमे।रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके(गीता८/१८)। विभिन्न प्रकार के निर्माण चक्र ही

काल की माप हैं। अथर्व सं.(१९/५३,५४) के दो सूक्तों में काल का विस्तार से वर्णन है। निर्माण क्रिया को सम्भूति, सञ्चर तथा लय को असम्भूति, प्रतिसञ्चर आदि भी कहते हैं। इनका चक्र दर्श-पूर्णमास यज्ञ है-दर्श (अमावास्या) से पूर्णिमा तक चन्द्र के प्रकाशित भाग का विस्तार निर्माण तथा विपरीत क्रम लय है। यज्ञ में अग्नि(सीमा में घनीभूत) तथा सोम(विकीर्ण पदार्थ) का मिलन होता है।अग्नि में विस्तार की प्रवृत्ति अंगिरा तथा सोम के संकोच की प्रवृत्ति भृगु है।

९.देववाद-प्राण शक्ति के स्तर देवता हैं, उनका अव्यक्त अनियमित विस्तार असुर है। प्राण का घनीभूत केन्द्र सूर्य है-उसके साम या प्रभाव-क्षेत्र में उर्जा के ३३ स्तर ३३ देवता हैं(अध्याय २)। प्रति देव-क्षेत्र में ३ प्रकार के असुर हैं-अर्थात् ९९ असुर। देवताओं से ही सृष्टि होती है, असुरों से नहीं। अत: सृष्ट विश्व ४ पाद में १ पाद है-ऋषिभ्य: पितरो जाता: पितृभ्यो देव-दानवा:। देवेभ्यश्च जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वश:।(मनुस्मृति ३/२०१) पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि(पुरुष सूक्त ३)

१०.संशयवाद-कई प्रकार के वर्णनों के कारण संसार के वास्तविक रूप के बारे में सन्देह रहता है। इसका निश्चय नहीं किया जा सकता, क्योंकि उस समय देव भी उत्पन्न नहीं हुये थे।(नासदीय सूक्त ६,७) तर्क की सीमा के पार जाने के कारण भी संशय रहता है-अचिन्त्या: खलु ये भावा न ताँस्तर्केण साधयेत्।

प्रकृतिभ्य: परं यस्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्।(महाभारतभीष्म.५/१२, वायुपुराण)

इनके अतिरिक्त आधार रूप (विज्ञान-) इतिवृत्तवाद के अनुसार विज्ञान द्वारा ही विश्व के निर्माण का क्रम निर्धारित होता है। मनुष्य भी यज्ञ-विज्ञान द्वारा कुछ भी बना सकता है।विश्वामित्र द्वारा ब्रह्मा से स्वतन्त्र सृष्टि का वर्णन पुराणों में आता है। अहं ता विश्वं चकरम् (ऋक्४/४२/६) अन्य-ऋक् १०/४९/१,९; १०/४८/१,४; १०/१९/२; १०/१८४/३; ४/२६/१ आदि हैं।

इन सभी सिद्धान्तों का समन्वय ब्रह्म-सिद्धान्त में है। इस का विस्तार से पं. मधुसूदन ओझा ने ब्रह्म-सिद्धान्त में वर्णन किया है,जिसकी पं.गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी द्वारा संस्कृत व्याख्या हुयी तथा उसका हिन्दी अनुवाद उनके पुत्र देवीदत्त चतुर्वेदी ने किया है (राजस्थान पत्रिका प्रकाशन)। इसके अनुसार ब्रह्म ही विश्व का मूल स्रोत, आधार, उपकरण, निर्माता सब कुछ है। उसके ६ स्तर के विवर्त्त माया द्वारा होते हैं। उसके ४ पाद है-परात्पर, अव्यय, अक्षर, क्षर।

४.दस आयामों के ६ दर्शन-विश्व के १० आयामों के कारण दश(१०), दशा(स्थिति), दिशा आदि समरूप शब्द हुये हैं। किसी स्थिति के एक दिशा में माप को आयाम कहते हैं।१० आयामों का मूल है-३ क्रियात्मक लोक तथा ७ संरचनात्मक लोक। या, आकाश के ३ आयाम तथा ७ ऋषि या ७ प्राणों के ७ आयाम। या ५-५ आयाम २ प्रकार के हैं-(१) सतत तथा कण समूह, (२) अनन्त रैखिक या सीमित गोलीय या बेलनाकार। इनका रूप है-

५ सतत या अनन्त
- १.रेखा(गति दिशा)
- २.पृष्ठ(सतह)
- ३.आयतन(स्तोम,आयु)

(१-३: आकाश के ३ आयाम)
- ४.पदार्थ-चतुर्मुख ब्रह्मा-सापेक्षवाद में आकाश-काल का परिणाम
- ५.काल-पञ्चमुख शिव-महाकाल स्वरूप।

५ सीमित या कण-समूह
- ६.चेतना -जो चयन या चिति करे-चेतन पुरुष-षष्ठ आयाम
- ७.ऋषि(=रस्सी,असत् प्राण की बल-रेखा)-सप्तम आयाम
- ८.नाग(वृत्र)-स्थानीय घूर्णन-बल,अनन्त ऊर्जा को सीमित करे।
- ९.रन्ध्र(नन्द)-छिद्र-असम घनत्व के कारण निर्माण
- १०.आनन्द(रस)-सृष्टि का मूल रूप,पदार्थ/ऊर्जा स्तर के अनुसार घनत्व में अन्तर।

आधुनिक भौतिक विज्ञान में काल-आकाश के ४ आयामों द्वारा ही पदार्थ की उत्पत्ति मानी गयी है , किन्तु माप की मूल इकाइयां ५ ही हैं-अत: भौतिक विज्ञान का यान्त्रिक-संसार ५ आयामी है। उसके बाद के ५ आयाम चेतना के ५ स्तर हैं-केवल भौतिक आयामों द्वारा रचना बिखर जाती है (उष्मा-गतिकी का द्वितीय नियम), उसे संगठित करने के लिये चेतना जरूरी है। कम से कम ५ आयामों द्वारा यान्त्रिक विश्व का पूर्ण वर्णन होता है, पुरुष के अन्य रूपों का वर्णन अगले ५ आयामों को क्रमश: मिलाने से होता है। पुरुष के ६ आयामों को कारण ६ दर्शन तथा ६ दर्श-वाक्(लिपि) होती है-

षट् पदं तूष्णीं शंसं शंसति, षड्विधो वै पुरुष: षडङ्ग आत्मानमेव षडङ्गं विकरोति (ऐतरेय ब्रा.१०/३९)

एक निराकार से ६ दृश्य लोक (सत्य से अन्य ६ लोक) या एक मूल ऋषि से ६ अन्य ऋषि जोड़े में उत्पन्न होते हैं-

साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ।
(ऋक् १/१६/१५; अथर्व ९/९/१६; तैत्तिरीय ब्रा.१/३/१)
७ ऋषि एक साथ रहते हैं-एक से ६ ऋषि जोड़े में हुये, उनसे देव धाम और कई प्रकार के रूप हुये ।
अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वियस्तस्तम्भ षडिमा रजांसि-अजस्य रूप किमपि स्विदेकम् ।
(ऋक् १/६४/६, अथर्व.९/९/७)
अव्यक्त से व्यक्त की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों ने बताया कि एक ही अज के ६ प्रकार के लोक हैं ।
३, ५, ७ का विभाजन सांख्य की व्याख्या में विस्तार से कहा जायगा । चेतन पुरुष के २ रूप-क्षर(नाशवान,मर्त्य) तथा अक्षर (३ अमृतपाद-अक्षर, अव्यय, परात्पर) के अनुसार ३-३ नास्तिक तथा आस्तिक दर्शन हैं । नास्तिक मत का भी वेद में उल्लेख है, वह अवैदिक नहीं है जैसा उस मत वाले कहते हैं ।
५.षड्दर्शनों का स्वरूप-पं.मधुसूदन ओझा के ब्रह्म-सिद्धान्त के आधार पर-
१.लोकायत या चार्वाक-प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, अदृश्य आकाश को छोड़ बाकी ४ महाभूतों को तत्त्व माना गया है-उन्हीं से चेतन पुरुष और विश्व का निर्माण होता है; कोई आत्मा नहीं है । यह भौतिक विज्ञान, कृषि, वाणिज्य, राजनीति के लिये उपयोगी है । लोक उपयोगी होने से यह लोकायत है-इसके निर्माता बृहस्पति भी लौक्य(ऋग्वेद के ऋषि) कहे जाते हैं-लोक का पुत्र या लोकोपयोगी दोनों अर्थों में । राजनीति(या कृषि,वाणिज्य भी) में चर(सेवक) के वाक् द्वारा कार्य होता है-अतः इसे चार्वाक भी कहा गया है ।
२.वैनाशिक या बौद्ध-इसके २ आधार हैं-प्रत्यक्ष तथा तर्क । भाषा की उत्पत्ति काल से ही तर्क का आरम्भ है । इसे या इसके प्रणेता को गौतम कहा गया है क्योंकि वाणी (गो) के तीन स्तर मस्तिष्क गुहा के भीतर पूर्ण रूप से रहते हैं अतः गौरी (प्रकाशित,उजला) वाक् है । चतुर्थ पद व्यक्त वाक्(उच्चारण या लेखन) में कुछ छिप जाता है ,अतः इसे तम(अन्धकार) कहते हैं । अतः लेखन को श्वेत-श्याम कहते हैं । न्यायालयों में इसका प्रयोग होता है , जहां उजला को काला और काला को उजला किया जाता है, अतः यह न्याय दर्शन है । सिद्धार्थ ने इस पद्धति

का अनुसरण किया, अत: उनका नाम गौतम हुआ। मनुष्यों के ४ स्तर के कारण इसकी ४ शाखायें हैं-(क)माध्यमिक-विश्व का पूर्ण योग शून्य है (शून्यवाद)।
(ख) विज्ञानास्ति-बुद्धि द्वारा विश्व का निर्माण हुआ। सूत्रों पर आधारित होने से सौत्रान्तिक भी कहा जाता है।
(ग) योगाचार-बाहरी विश्व मन की कल्पना मात्र है। मन के नियन्त्रण के कारण इसे योगाचार कहते हैं।
(घ) वैभाषिक-विभाषा (विकल्प) से भीतरी-बाहरी दोनों विश्व की सत्ता।
३.जैन या स्याद्वाद-बौद्ध दर्शन के ४ आधार निर्णायक नहीं हैं। ६ दर्शनों की अपूर्णता दूर करने के लिये जैन मत में सत्ता के ७ विकल्पों की कल्पना की गयी है। सभी विकल्प जानने से पूर्णता आती है, अत: इसे सर्वज्ञ या आर्हत् कहते हैं।
४.वैशेषिक-९ प्रकार के द्रव्यों के कणों के संयोग से बने क्षर विश्व में द्रव्यों से कुछ विशेष गुण भी उत्पन्न होता है जो अवयवों में नहीं था। अत: इसे वैशेषिक कहा जाता है। विश्व कणों के भोजन(अद) से बना है; यह विचार देने वाले दार्शनिक को कणाद कहा गया।
५.प्राधानिक या सांख्य-प्रधान या मूल प्रकृति से उत्पत्ति तथा ह र वर्ग के तत्त्वों की संख्या की गणना करने के कारण इसे प्राधानिक या सांख्य कहते हैं। यह ४ प्रकार का है-
(क) **आर्ष प्राधानिक**-सांख्य-यह कपिल के तत्त्व-समास तथा सांख्य सूत्र पर आधारित है। यह केवल प्रकृति का वर्गीकरण बताता है, ईश्वर के बारे में नहीं; अत: इसे निरीश्वर सांख्य भी कहते हैं।
(ख) **योग प्राधानिक**-आत्मिक उन्नति के लिये इसमें सांख्य तथा अन्य ज्ञान का उपयोग है। प्रणिधान(समर्पण) के लिये इसमें ईश्वर को लक्ष्य माना गया है।
(ग) **राज प्राधानिक**-आगम या तन्त्र में ३ मूल तत्त्वों से सृष्टि मानी गयी है-शिव, शक्ति, विन्दु। ५ तन्मात्रा के आधार पर सांख्य में ५ह्५=२५ तत्त्व हैं। आगम या शैव दर्शन में चेतना को छठा तत्त्व माना गया है; अत: इसमें ६ह्६= ३६ तत्त्व हैं, जिसमें सांख्य के सभी २५ तत्त्व हैं।
(घ) **पुराण प्राधानिक**-पुराणों में पाञ्चरात्र दर्शन है , जिसमें सांख्य के अनुसार सृष्टि का क्रम बताया गया है। मूल आकाश या वास-स्थान वासुदेव है। विश्व के कणों में परस्पर आकर्षण संकर्षण है। आकर्षण के संकोच के कारण प्रकाशमान

तारों का निर्माण हुआ-यह प्रद्युम्न है। उसके बाद सृष्टि के असीमित रूप अनिरुद्ध हैं।

६.शारीरक(शरीर का स्वामी ब्रह्म)-बादरायण व्यास ने वेद का सार या वेदान्त को ब्रह्म-सूत्रों में पारिभाषित किया। वेद के अलग-अलग वर्णनों की एकता ६ प्रकार से कही जाती है। इसके अतिरिक्त शिव-शक्ति की एकता २ प्रकार से बतायी जाती है-(क) शंकर का अद्वैत वाद।

(ख) वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत, (ग) रामानुज का विशिष्टाद्वैत,

(घ) भास्कर और निम्बार्क का द्वैत-अद्वैत, (ङ) मध्व का द्वैत,

(च) चैतन्य का अचिन्त्य भेद-अभेद।

इन सभी ने अपने सिद्धान्त की स्थापना के लिये ३ मूल स्रोत-ग्रन्थों या प्रस्थान (जहां से यात्रा आरम्भ हो) की व्याख्या की-गीता, १० मुख्य उपनिषद्, तथा ब्रह्म-सूत्र।श्री वल्लभाचार्य ने सिद्धान्त को और पुष्ट करने के लिये चतुर्थ प्रस्थान भक्ति के लिये श्रीमद् भागवत पुराण की भी व्याख्या की।

(छ) अभिनवगुप्त का प्रत्यभिज्ञा,(ज) तन्त्र या शक्ति अद्वैत।

६.विस्तृत वर्गीकरण-साधारणतः ६ आस्तिक दर्शनों को वेद का ६ उपांग कहा जाता है। इनके ३ युग्म हैं-

१.सांख्य-योग, २.वैशेषिक-न्याय, ३.(पूर्व)मीमांसा-(उत्तर मीमांसा)वेदान्त।

इन युग्मों का प्रथम भाग गणनात्मक ज्ञान है ,जिसका रूप गणेश है। दूसरा भाग अव्यक्त या रस-रूप है, जिसका प्रतीक सरस्वती है। अलग-अलग पुर कणों की गणना का ज्ञान पुरुष रूप में गणेश हैं। रस का विस्तार क्षेत्र स्त्री रूपी सरस्वती है। योग कोई अलग दर्शन नहीं है, अपनी उन्नति के लिये यह सभी मार्गों का सार है। इसी प्रकार न्याय दर्शन शाब्दिक तर्क के रूप में सभी लिखित ज्ञान का आधार है।इससे गौरी वाक्(मस्तिष्क गुहा के भीतर वाक् के ३ पद-परा, पश्यन्ती, मध्यमा) का चतुर्थ पद वैखरी के रूप(लिखित या कथित शब्द) में प्रकटीकरण है। इसमें कुछ तत्त्व लुप्त हो जाता है, अतः यह तम है। अतः यह गौतम दर्शन है। न्यायालयों में इसका प्रयोग होता है जहां उजला को काला तथा काला को उजला किया जाता है।

६ नास्तिक दर्शनों की गणना में बौद्ध दर्शन के ४ भागों को अलग अलग गिना जाता है।

आस्तिक दर्शनों का तीसरा युग्म मीमांसा कहा जाता है। प्रथम भाग कर्म मीमांसा है जो वैदिक वाक्यों तथा क्रियाओं की व्याख्या करता है। पर इन के द्वारा ब्रह्म की व्याख्या ही इसका अन्तिम उद्देश्य है। अत: यह भी एक दर्शन है। द्वितीय भाग वेदान्त ब्रह्म के अलग अलग नामों की एकता दिखाता है। मीमांसा का मध्य भाग भक्ति कहा जाता है जिसका आधार नारद और शाण्डिल्य के भक्ति सूत्र हैं।

विस्तार में दर्शनों के ६ह्न६=३६ वर्ग हैं (पं. मोतीलाल शास्त्री)-

१.नास्तिक-(१) लोकायतिक(चार्वाक), (२) वैभाषिक, (३) सौत्रान्तिक, (४) वैज्ञानिक या क्षणिक, (५) माध्यमिक, (६) स्याद्वादिक।

२.ईश्वरमात्रिक-(१) सांख्य, (२)शैव, (३)नकुलीश पाशुपत, (४) कारुक सिद्धान्त, (५) कापालिक, (६) वैशेषिक। बीच के ४ माहेश्वर मत हैं।

३.ब्रह्म-प्रकृति सम्बन्ध-(१) शंकर का निर्विशेष अद्वैत, (२) रामानुज का विशिष्टाद्वैत, (३) मध्व का द्वैत, (४) वल्लभ का शुद्धाद्वैत, (५) निम्बार्क का द्वैताद्वैत, (६) चैतन्य का अचिन्त्य भेदाभेद। मध्य के ४ भागवत दर्शन हैं।

४.ईश्वर-विभूति-(१) सौर, (२) शाक्त, (३) शैव, (४) वैष्णव, (५)गाणपत्य, (६) स्मार्त्त। बीच के ४ प्रपन्न(शरणागत) हैं।

(५) **तन्त्र (अम्नाय)**-(१) ऊर्ध्व, (२) पूर्व, (३) दक्षिण, (४) पश्चिम, (५) उत्तर, (६) अधर। बीच के ४ दैशिक हैं।

(६) एकत्व-(१) शाब्दिक(व्याकरण), (२) मीमांसक, (३)न्याय (४) अलङ्कारिक (५) पौराणिक, (६) ऐतिहासिक। मध्य के ४ तर्क आधारित हैं।

७.वेद-शाखायें-सृष्टि ही मूल वेद है; उसके १० आयामों के आधार पर वेद की शाखायें हैं।ऋग्वेद मूर्त्ति रूप है।आकार की माप के लिये २१ शाखायें हैं-१० धनात्मक दिशा, १० विपरीत ऋणात्मक दिशा, तथा १ मूल आरम्भ विन्दु। यजुर्वेद में गति के आरम्भ तथा परिणति के १०-१० स्थान हैं-अत: १०ह्न१०=१०० गति रूप हैं, १ स्थिर सन्दर्भ मिलाकर १०१ शाखायें हैं। गति २ प्रकार की है-बाहर से जो दीखती है वह शुक्ल तथा भीतरी गति कृष्ण है। शुक्ल गति १५ प्रकार की है-५ महाभूतों की ३-३ प्रकार की सापेक्ष गति होगी-स्थिर, दूर गमन, आगमन। विश्व के बाहरी रूप का वर्णन पुरुष की १५ कलाओं से होता है-विश्व के ५ पर्वों के ३-३ मनोता या ३ वर्णनीय पुरुषों (अव्यय, अक्षर, क्षर) की ५-५ कलायें। एक समतल में किसी चिह्न की १७ प्रकार की गति द्वारा पूरा तल घेरा जा सकता है।

इसे आधुनिक बीजगणित(उदाहरण के लिये माइकेल आर्टिन की पुस्तक) में समतल मणिभ साध्य कहा जाता है। चादर या दीवाल पर एक ठप्पे से १७ प्रकार के चिह्न भरे जा सकते हैं। अत: इसे वाल-पेपर नियम भी कहते हैं तथा भारतीय ज्योतिष में १७ को घन, मेघ आदि कहते हैं-१७ प्रकार की गति से मेघ के समान ढंक लेगा। ५ महाभूतों के ५ह्न१७=८५ रूप तल में दीखेंगे, इसके अतिरिक्त १ अव्यक्त भी अदृश्य होने के कारण कृष्ण गति में गिना जायेगा। कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखाओं की तरह ८६ नरक कुण्ड, षडशीति-मास(वर्ष के ४ खण्ड ९१ दिनों के, उनमें पाञ्चरात्र के ५ दिन कम), विश्व में $१०^{८६}$ मूल-कण हैं। यजुर्वेद की १०० व्यक्त शाखायें होने के कारण इसके व्याख्या-ग्रन्थ को शतपथ ब्राह्मण कहा जाता है।

सामवेद महिमा या प्रभाव-क्षेत्र का वेद है। १०स्थितिह्न१०गतिह्न१० प्रभाव= १००० शाखायें हैं। अथर्ववेद की ५०(या ९) शाखायें ५ महाभूतों का १० आयामों में विस्तार है। आकाश में पिण्ड का प्रभाव १००० गुणा तक माना जाता है। अहर्गण माप से यह २ का १० घात है, ३ भीतरी क्षेत्र गिनने पर १३ अहर्गण होंगे। साम तर्पण में १३ शाखायें कही गयी हैं और शब्द रूप में उतने के ही नाम हैं। अथर्व भी मूल विस्तार का वेद है, ५० गुणा विस्तार के ६ अहर्गण बाहर (२ का ५ घात ३२ तथा ६ घात ६४ है, ६घात की सीमा में ५० होगा) तथा ३भीतर हैं। अत: उसकी ९ शाखायें हैं और शब्दरूप में उतनी शाखाओं का ही नाम है।

अन्य समतुल्य व्याख्या है कि अथर्ववेद का आरम्भ ३ह्न७ प्रकार के विश्व से है-ये त्रिषप्ता:परियन्ति विश्वा:। अत: विश्वमूर्त्ति रूप ऋग्वेद की २१ शाखायें हैं। ३ वेदों का परस्पर सम्बन्ध ३ह्न३=९ प्रकार का होने से अथर्व की ९ शाखायें हैं।

८.कुल और उपलब्ध शाखायें- ऋग्वेद का ब्रह्म-सम्प्रदाय- **पैल**

६.इन्द्रप्रमिति १.बाष्कलि

२.बोध्य ३.अग्निमाता ४.पराशर ५.याज्ञवल्क्य २१.शांखायन या कौषीतकि

माण्डूकेय→सत्यश्रवा→सत्यहित→सत्यश्रिय

७.रथीतर ८.शाकल्य ९.भारद्वाज

१५.पैलज १६.छत्रबलाक १७.आश्वल | १८.तापनाप १९.पन्नगारि २०.आर्जव

१०.मुद्गल ११.गोखल १२.सुतपा १३.वत्स १४ शैशिरि

ब्रह्म-सम्प्रदाय में कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखायें-

१.वैशम्पायन	२५.लौकि	४८-६० कठ की उपशाखा
२.लौहित्य	२६.भूरिश्रवा	४८.पिञ्जुलकठ-क्रौञ्च द्वीप में
३.शावध	२७.सोमावि	४९.औदल कठ-शाक द्वीप में
४.पलाण्डु	२८.आतुनान्तक्य	५०.सपिच्छव कठ- ।।
५.आलम्बि	२९.धौम्य	५१.मुद्गल कठ-कश्मीर में
६.कलिङ्ग(पल)	३०.काश्यप	५२.शृङ्गल कठ-सृज देश में
७.कमलाह	३१.औख्य	५३.सौभर कठ-सिंहल देश में
८.ऋचाभ	३२.इलक	५४.मौरस कठ-कुश द्वीप में
९.आरुणि	३३.उपमन्यु	५५.चुचुक कठ-यवन देश में
१०.तण्डि	३४.विद	५६.योग कठ- ।।
११.श्यामल	३५.भार्गव	५७.हापिल कठ- ।।
१२.कठ	३६.मधुक	५८.दौसल कठ-सिंहल देश में
१३.कलाप	३७.पिङ्ग	५९.धौष कठ-क्रौञ्च द्वीप में
१४.चुलाभि	३८.श्वेतकेतु	६०.जृम्भ कठ-श्वेत द्वीप में
१५.सुमति	३९.प्रजादर्प	६१-७१ चरक के १२ भेद
१६.देववर	४०.कहोड	६१.चरक
१७.अनुकृष्ण	४१.याज्ञवल्क्य	६२.आह्वरक
१८.आयु	४२.शौनक	६३.भ्राजिष्ठव कठ
१९.अनुभूमि	४३.शौनक	६४.भृष्ठ कपिष्ठल कठ
२०.आप्रीत	४४.उनिर	६५.प्राच्य कठ
२१.कशाश्व	४५.ताल	६६.कपिष्ठल कठ
२२.सुमूलि	४६.यास्क(पैङ्गि)	६७.वारायण
२३.वाष्कलि	४७.खाण्डायन(कठशिष्य)	६८. चारायण
२४.शुक		६९.श्वेत
७०.श्वेताश्वतर	७१.पतण्डि	मैत्रेय-७२ से ७७ मैत्रायणी के ७ भेद

७२.मनु, ७३.वराह, ७४.दुन्दुभि, ७५.एकि, ७६.हरिद्रु, ७७.श्याम (११.श्यामायन)

७८-८१ कलाप के ४ भेद-७८.हारिद्रुण, ७९.छागलि, ८०.तुम्बुरु, ८१.उलुपि।

७८.हारिद्रुण के ५ भेद-८२.आसुरि, ८३.गर्ग, ८४.शर्क्कराक्ष, ८५.मृग, ८६.वसव।

आदित्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत **शुक्ल यजुर्वेद** शाखा-**आदित्य**

योगीश्वर याज्ञवल्क्य

शाङ्खायन कण्व माध्यन्दिन आदि सामश्रवा या कौथुम शौनक आदि

ऋग्वेदी **यजुर्वेदी** सामवेदी अथर्ववेदी

१.जाबाल-नर्मदा (जबलपुर)।

२.बौधेय-रणावट (दक्षिण गुजरात) ।

३.कण्व-कर्णवट या कर्णाटक(दक्षिण भारत) ।

४.माध्यन्दिन-प्राय: सर्वत्र(उत्तर प्रदेश के सरयूपारीण आदि) ।

५.शापेय-गुजरात के नागर ।

६.तापायनीय-नर्मदा के निकट नेमाड़ (मध्य प्रदेश) ।

७.कपोल-गुजरात के भार्गव।

८.पौण्ड्रवत्स-पौण्ड्रवत्स राज्य,गुजरात के तिवाड़ी ।

९.आवटिका-श्रीमालवी-गुजरात ।

१०.परमावटिका-आद्य गौड़-मारवाड़ ।

११.वैनधेय-कंकर बौध्य पर्वत(? ओड़िशा का बौध कन्धमाल) ।

१२.गालव-मालवी-विदर्भ, सौराष्ट्र ।

१३.कात्यायन-विदर्भ।

१४.पराशर-गुजरात, मारवाड़ ।

१५.बैजवाप-नारायण सरोवर(काठियावाड़)।

चरण-व्यूह में सामवेद के भेद

राणायनीय सालमुख्य कालाप महाकालाप **कौथुम** लाङ्गलिक

सारायणीय वातरायणीय वैधृत प्राचीन तैजस अनिष्टक

राणायनीय के ९ भेद में लाङ्गल और कौथुम कहे गये हैं।अन्य ७ भेद हैं-शाट्यायनीय,सात्वत,मौद्गल,खल्वल,महाखल्वल,गौतम,जैमिनीय ।

साम-तर्पण-विधि के १३ भेद इस प्रकार हैं-१.राणायण, २.शाट्यमुन्य, ३.व्यास, ४.भागुरि, ५.औलुण्डि, ६.गौल्गुलवी, ७.भानुमान औपमन्यव, ८.काराटि, ९.मशक गार्ग्य, १०.वार्षगण्य, ११.कुथुम, १२.शालिहोत्र, १३.जैमिनीय ।

ब्रह्म-सम्प्रदाय में सामवेद शाखा

जैमिनि→सुमन्तु→सुत्वा→सुकर्मा

पौष्यञ्जि कुशिकपुत्र हिरण्यनाभ

लोकाक्षि कुथुमि कुशीति लाङ्गलि कृति

सुमित्रा तथा १५ १६ १.राड १३.परिकृष्ट

तण्डि का पुत्र रसपारस पराशर भागवित्ति लाङ्गलि २.महावीर्य १४.उलूखलक

राणायनीय ५ १३ १४ ३.पञ्चम १५.यवीय

मूलचारी आसुरायण ४.वाहन १६.वैशाल

सुकेति+शृङ्गि पुत्र वैशाखी ५.तालक १७.अंगुलीय

पैल प्राचीनयोग सुराल सहसात्यपुत्र ६.पाण्डक १८.कौशिक

१ २ ३ ४ प्राचीनयोगपुत्र ७.कालिक १९.सालि

पतञ्जलि ८.राजक २०.मञ्जरि

लाङ्गलि ९.गौतम २१.सत्य

१०.आजवस्त २२.कापीय

११.सोमराज २३.कानिक

१२.पृष्ठघ्न २४.पाराशर

भालुकि कामहानि जैमिनि लोभगामी कण्ड कोलह शालिहोत्र

६ ७ ८ ९ १० ११ १२

आदित्य सम्प्रदाय में सामवेद शाखा

सामश्रवा कुथुमि

रसपारस पाराशर भागवित्ति तेजस्वी

आसुरायण

वैशाखी

प्राचीनयोगपुत्र पतञ्जलि

लाङ्गलि

भालुकि कामहानि शालिहोत्र जैमिनि लोभगामी

कण्ड कोलह

इनमें केवल राणायणी, कौथुमी, तथा जैमिनीय शाखायें उपलबध हैं। हजार शाखायें प्राय: गायन भेद से ही थीं या आकाश का सामक्षेत्र है। कौथुमीय और

जैमिनीय शाखा के मन्त्र तथा गान विभाग निम्नलिखित हैं। पूर्ण रूप में केवल जैमिनि शाखा ही उपलब्ध है जिसे आजकल सामवेद कहा जाता है।

	कौथुमीय शाखा मन्त्र	जैमिनीय शाखामन्त्र
पूर्वार्चिक	५८५	५८७
आरण्यक	५९	५९
उत्तरार्चिक	१२२५	१०४१
महानाम्नि	६	६
योग	१८७५	१६९३

	कौथुमीय गान	जैमिनीय गान
ग्रामगेय गान	११९७	१२३२
आरण्यक गेय गान	२९४	२९१
ऊह गान	१०२६	१८०२
उह्य गान	२०५	३५६
योग	२७२२	३६८१

अथर्व-वेद की ९ शाखायें कही गयी हैं-पैप्पल, दान्त, प्रदान्त, स्नात, सौत्न, ब्रह्मदावल, शौनक, दैवीदर्शनी, चरणविद्या।

ब्रह्मसम्प्रदाय में अथर्ववेद की शाखायें

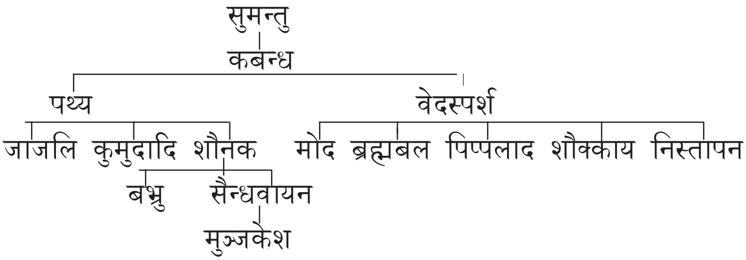

आदित्य सम्प्रदाय में अथर्ववेद की शाखायें

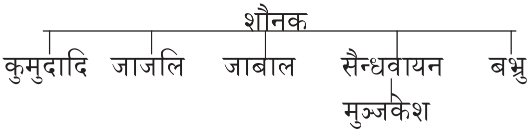

अथर्ववेद की मन्त्र-संख्या १२,३०० है, किन्तु वर्तमान उपलब्ध शौनक शाखा में २० काण्ड, ३८ प्रपाठक, ७६० सूक्त तथा ६००० मन्त्र हैं। किसी-किसी शाखा में

में ८० अनुवाक भी हैं। पिप्पलाद शाखा की एक प्रति कश्मीर राजा के पास जम्मू संग्रहालय में थी जिसे चुराकर जर्मनी के कैसर संस्था में रखा गया। एक अन्य प्रति ओड़िशा में उपलब्ध थी(मयूरभंज में,मूल स्थान पुरी के निकट पिपली)। दोनों की प्रतियों के आधार पर विश्वभारती के श्री दीपक भट्टाचार्य ने २ खण्डों में इसका प्रकाशन किया है। उनके पिता ने कुछ अंश कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित किया था।

व्याख्यान और अध्यापन क्रम से ऋग्वेद की ५ शाखायें हैं-१.शाकल, २.बाष्कल, ३.आश्वलायन, ४.शांखायन, ५.माण्डूकेय। इसकी अन्य शाखाओं का भी उल्लेख है -१.गालव, २.शालीय, ३.रौशिरि, ४.पराशर, ५.जातूकर्ण्य, ६.शांखायन, ७.कौषीतकि, ८.महाकौषीतकि, ९.शाम्ब्य, १०.बह्वृच, ११.पैङ्ग्य, १२.उद्दालक, १३.गज, १४.वाष्कलि की ३ शाखायें, १५.ऐतरेय, १६.वसिष्ठ, १७.सुलभ, १८.शौनक।

वाष्कल की मन्त्र-संख्या १०,६२२ तथा शाकल की १०,३८१ है। पर वेद का अधिकांश लुप्त होने के कारण इसमें मतभेद है। मन्त्र संख्या १०,४०२ से १०,६२८ तक, शब्द संख्या १,५२,८२६ तथा शब्दांश संख्या ४,३२,००० है, जो कलि-युग की वर्ष संख्या है। इस कारण यह भी अनुमान किया जाता है कि ऋग्वेद के मन्त्रों में ज्योतिष का सिद्धान्त तथा ग्रहों की प्रतिवर्ष या युग के बाद की स्थिति है। वर्तमान युग में केवल शाकल्य संहिता उपलब्ध है, जिसमें ११ बालखिल्यों (खिल=परिशिष्ट या उपसंहार) को मिलाकर १०२८ सूक्त हैं। इसका २ प्रकार से विभाजन किया गया है। एक विभाजन में १० मण्डल, ८५ अनुवाक् और २००८ वर्ग हैं। दूसरे विभाजन के अनुसार ८ अष्टक, ६४ अध्याय तथा १०२८ सूक्त हैं।

शुक्ल-यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में ४० अध्याय, ३०३ अनुवाक, एवं १९७५ कण्डिका हैं। काण्व संहिता में ४ दशक, ४० अध्याय, ३२८ अनुवाक तथा २०८६ मन्त्र हैं। कृष्ण यजूर्वेद की मैत्रायणी शाखा में ४ काण्ड, ५४ प्रपाठक, ६५४ अनुवाक तथा ३,१४४ कण्डिका हैं। कठ शाखा में ५ खण्ड, ४० स्थानक, (+१३ अनुवचन), ८४३ अनुवाक, ३०९१ मन्त्र हैं। मन्त्र-ब्राह्मणों की सम्मिलित संख्या १८,००० है। कपिष्ठल शाखा का अधूरा रूप वाराणसी में उपलब्ध था जिसके आधार पर श्री रघुवीर ने १९४१ में इसका संस्करण प्रकाशित किया।

ऋग्वेद के समान यह अष्टक तथा अध्याय में विभक्त है। कृष्ण-यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता ७ काण्ड, ४४ प्रश्न या अध्याय, ६५१ अनुवाक् या प्रकरण तथा २१९८ कण्डिका में विभक्त है। १ कण्डिका में नियमत: ५५ शब्द होते हैं। इस शाखा के सभी ग्रन्थ उपलब्ध होने के कारण सामान्यत: इसे ही कृष्ण-यजुर्वेद कहा जाता है।

९. ब्राह्मण ग्रन्थ-ऋग्वेद-१.ऐतरेय ब्राह्मण में ४० अध्याय (८ पञ्चिका), २८५ कण्डिका हैं। २. शांखायन ब्राह्मण में ३० अध्याय, तथा २२६ खण्ड हैं।
३. कौषीतकि ब्राह्मण।

यजुर्वेद-शुक्ल-१. माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में १४ काण्ड, १०० अध्याय, ४३८ ब्राह्मण तथा ७,६२४ कण्डिका हैं। काण्व शतपथ ब्राह्मण में १७ काण्ड, १०४ अध्याय, ४३५ ब्राह्मण, तथा ६,८०६ कण्डिका हैं। माध्यन्दिन में ६८ प्रपाठक हैं, किन्तु काण्व शतपथ में प्रपाठक नहीं हैं। जाबाल ब्राह्मण का उल्लेख है, लेकिन उपलब्ध नहीं है।

कृष्ण-१. तैत्तिरीय ब्राह्मण ही पूर्णरूप से उपलब्ध है , जिसमें ३ भाग या काण्ड हैं। प्रथम २ काण्डों में ८-८ अध्याय या प्रपाठक हैं, अत: इसे अष्टक भी कहते हैं। तृतीय काण्ड में १२ प्रपाठक हैं, जिन्हें भट्टभास्कर ने प्रश्न भी कहा है। इसमें कुल ३५३ अनुवाक हैं। शतपथ की तरह यह भी सस्वर है। काठक ब्राह्मण अपूर्ण है। अन्य अनुपलब्ध-चरक, श्वेताश्वतर, काठक, मैत्रायणी, खाण्डिकेय।

सामवेद-१. प्रौढ़(ताण्ड्य)-ब्राह्मण, २. षड्विंश ब्राह्मण, ३. सामविधान ब्राह्मण, ४. आर्षेय ब्राह्मण, ५. देवताध्यायब्राह्मण, ६. छान्दोग्योपनिषद्-ब्राह्मण, ७. संहितोपनिषद्-ब्राह्मण, ८. वंश ब्राह्मण।

ताण्ड्य ब्राह्मण कोअध्याय संख्या के अनुसार पञ्चविंश ब्राह्मण तथा सबसे बड़ा होने के कारण महा-ब्राह्मण भी कहा जाता है। षड्विंश ब्राह्मण ताण्ड्य का ही उत्तर भाग मानकर इसे २६वां अध्याय कहा गया है। इसमें ६ अध्याय हैं। सामविधान में ३ अध्याय हैं। आर्षेय में ६ अध्याय, देवताध्याय में ४ खण्ड हैं। छान्दोग्योपनिषद् ब्राह्मण के पहले २ प्रपाठक में विवाह -कर्म के मन्त्र हैं, बाकी ८ प्रपाठक उपनिषद् हैं। संहितोपनिषद् में ५ तथा वंश में ३ खण्ड हैं।

जैमिनीय शाखा में केवल ३ ब्राह्मण उपलब्ध हैं- जैमिनीय, जैमिनीयोपनिषद् तथा जैमिनीयार्षेय। अन्य अनुपलब्ध- भाल्लवि, शट्यायन, हारिद्रविक।

अथर्ववेद-पैप्पलाद शाखा का गोपथ ब्राह्मण उपलब्ध है जिसके पूर्व भाग में ५ प्रपाठक, १३५ कण्डिका, तथा उत्तर भाग में ६ प्रपाठक , १२३ कण्डिका हैं।

आरण्यक-ऋग्वेद-१.ऐतरेय में ५ आरण्यक हैं-१.गवामयन, २.में प्राणविद्या तथा पुरुष(४-६ अध्याय ऐतरेय उपनिषद्), ३.संहितोपनिषद्, ४.महानाम्नी ऋचा, ५.निष्कैवल्य शास्त्र।

२.शांखायन आरण्यक में ३० अध्याय हैं।

३. कौषीतकि आरण्यक में ३ खण्ड तथा १५ अध्याय हैं। ३-६ अध्याय कौषीतकि उपनिषद् है।

यजुर्वेद-शुक्ल-शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम (माध्यन्दिन का १४वां, काण्व का १७ वां) काण्ड ही बृह दारण्यक है। इसका अन्तिम ६ अध्याय उपनिषद् है।

कृष्ण-तैत्तिरीय आरण्यक।

सामवेद-तवलकार आरण्यक को जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण भी कहा जाता है। इसका एक भाग तवलकार उपनिषद् , है जो केन शब्द से आरम्भ होने के कारण केनोपनिषद् भी कहा जाता है। छान्दोग्य आण्यक को आ रण्य-गान भी कहा जाता है।

अथर्ववेद-इसमें कोई आरण्यक उपलब्ध नहीं है।

उपनिषद्-११३१ उपनिषदों में १०८ को मुक्तिकोपनिषद् में मुख्य कहा गया है। इनमें १० ऋग्वेद के, १९ शुक्ल-यजुर्वेद के, ३२ कृष्ण यजुर्वेद के, १६ सामवेद के तथा ३१ अथर्व वेद के हैं। वासुदेव लक्ष्मण पणशीकर जी ने १०८ उपनिषद् प्रकाशित कराये हैं (निर्णयसागर)। अड्यार थियोसोफिकल सोसाइटी द्वारा १७९ उपनिषद् प्रकाशित हुये हैं। मुम्बई के गुजराती प्रिण्टिंग प्रेस से प्रकाशित उपनिषद् वाक्य महाकोष में २३८ उपनिषदों के उद्धरणों का संग्रह है। मुख्य १३ हैं जिन पर भाष्य लिखे गये हैं- ईश, केन, कठ, मुण्ड क, माण्डू क्य, प्रश्न, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर, कौषीतकि, मैत्रायणी।

स्मृति-ग्रन्थ-वैदिक साहित्य को श्रुति तथा उसके आधार पर समाज व्यवस्था के नियमों को स्मृति कते हैं। मनुस्मृति सबसे विख्यात है जिसपर मेधातिथि की विस्तृत टीका है। इसका अंग्रेजी अनुवाद श्री गंगानाथ झा द्वारा ९ खण्डों में मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त नाग प्रकाशन द्वारा प्रकाशित अष्टादश- स्मृति में वर्णित स्मृति नाम हैं -१.अत्रि-संहिता, २.विष्णु, ३.हारीत,

४.औशनस, ५.आङ्गिरस, ६.संवर्त्त, ७. लघु यम-स्मृति, ८. आपस्तम्ब, ९.वृहस्पति, १०.कात्यायन, ११.पाराशर, १२.व्यास, १३.शंख, १४.लिखित, १५.दक्ष, १६.गौतम, १७.शातातप, १८.बुध।

१०.इतिहास-पुराण-वेद के वर्णित सिद्धान्तों की व्याख्या इतिहासपुराण के वास्तविक उदाहरणों से ही होती है-

इसिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।

(महाभारत,१/१/२६७)

सृष्टि का वैज्ञानिक रचनाक्रम पुराण है- पुराणं कस्मात्। पुरा नवं भवति (यास्क निरुक्त,३/१९)। अर्थात् पुराना रूप नया कैसे हुआ इसका अध्ययन पुराण है। इससे मिलता शास्त्र इतिहास है जिसमें चेतन मानवों का चरित्र वर्णित है। दोनों में इतिवृत्त की प्रधानता है। इतिहास=इति+ह+आस=ऐसा ही हुआ था। पुराण के ५ या १० लक्षण कहे गये हैं। ५ लक्षण-

१.सर्ग-सृष्टि विज्ञान।

२. प्रतिसर्ग-सृष्टि का विस्तार, लय तथा पुनः सृष्टि।

३. वंश- विभिन्न जातियों आदि की वंशावली।

४. मन्वन्तर- प्रति मनु की अवधि और उस समय की घटनायें।

५. वंशानुचरित-सूर्य, चन्द्र वंश आदि के राजाओं का वर्णन।

१० लक्षण-

१.सर्ग-सृष्टि विज्ञान।

२.विसर्ग-सृष्टि विस्तार, मानस, दैवी, मानुषी आदि सृष्टि।

३. स्थान- ब्रह्माण्ड की स्थिति।

४. पोषण- जीवों का धर्म, कृत्य, सदाचार, सामाजिक नियम।

५.ऊति- जीव की कर्म वासना, स्वर्ग नरक आदि वर्णन।

६. मन्वन्तर-मनुओं का काल, चरित्र और वंश विस्तार।

७. अवतार- विष्णु के अवतार और चरित्र।

८. निरोध- आत्म संयम के शम, दम, योग आदि मार्ग।

९. मुक्ति- ज्ञान-योग, दर्शन शास्त्र।

१०. आश्रय-भक्ति मार्ग।

पुराणों की १८ संख्या के अनुसार **१८ नियम** भी कहे गये हैं-सृष्टि, प्रतिसृष्टि, वंश, वंशानुचरित, मन्वन्तर, गाथा, कल्पशुद्धि, पुराण, संहिता, डामर, यामल, ज्योतिष चक्र, भुवनकोष, वृत्ति, रक्षा, अन्तर, हेतु और अपाश्रय।

१८ पुराणों का कई प्रकार से **वर्गीकरण** है-

सात्त्विक-विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म, वराह।

राजस-ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्यत्, वामन, ब्रह्म।

तामस-मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द, अग्नि।

देवता अनुसार-

ब्रह्मा-ब्रह्म, पद्म।

सूर्य-ब्रह्मवैवर्त्त।

अग्नि-अग्नि।

शिव-शिव, स्कन्द, लिङ्ग, कूर्म, वामन,वराह, भविष्य, मत्स्य, मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड

विष्णु- नारद, भागवत, गरुड़, विष्णु।

विषय के अनुसार ५ भेद हैं-

सृष्टिवाद, मतवाद, अवतारवाद, आयतिवाद, तथा आयतनवाद।

पुराणों का क्रम तथा कल्पमान इसी क्रम में है। आरम्भ के ६ पुराण उक्थ हैं(उक्थ वह मूल है जिससे उत्थान होता है, भोजन का जूठा)। सबसे पहले ब्रह्मपुराण है क्योंकि ब्रह्मा सृष्टि के प्रवर्त्तक हैं। ब्रह्मा का आधार पद्म द्वितीय पुराण है। पद्म का आधार विष्णु की नाभि है, अतः तीसरा विष्णु पुराण है। विष्णु भगवान शेषनाग पर शयन करते हैं। शेषनाग वायु रूप है। विष्णु रूपी सूर्य आकाशगङ्गा के अन्य (शेष) तारों के आकर्षण तथा चक्रीय गति(नाग) द्वारा आकाश में स्थित है। अतः वायु पुराण का क्रम चौथा है। शेषनाग क्षीरसागर (आकाशगङ्गा-milkyway) में स्थित हैं, वही गोलोक है जिसका वर्णन पांचवें भागवत पुराण में है। भागवत की प्रेरणा नारद द्वारा वेदव्यास को मिली, अतः नारद पुराण छठा है।

सृष्टि के आरम्भिक उत्थान के बारे में ४ मत हैं। प्रथम मत के अनुसार सत्त्व, रज, तम-इन तीन गुणों के मिश्रण से सृष्टि होती है-यह वर्णन मार्कण्डेय पुराण में है। उसी पुराण में ३ गुणों के अनुसार देवी के ३ रूपों का वर्णन दुर्गा सप्तशती में है। दूसरे मत के अनुसार अग्नि या ऊर्जा(Primordial Fireball) द्वारा सृष्टि होती है। अतः ८ वां अग्नि-पुराण है। पार्थिव सृष्टि का मूल सूर्य है अतः नवम पुराण सूर्य

(भविष्य) है। वेदान्त के अनुसार इन तीनों का समन्वय मत है कि यह सृष्टि एक ही निराकार ब्रह्म का विवर्त्त (विविध दीखता हुआ रूप) है। अतः दसवां पुराण ब्रह्मवैवर्त्त है।

विराट् रूप विष्णु भगवान के अवतार क्रम के अनुसार अगले ६ पुराण हैं- लिङ्ग, वराह, वामन, कुमार(स्कन्द), कूर्म और मत्स्य।

लिङ्ग निराकार के साकार रूप को कहते हैं-

मूलस्वरूपलिङ्गत्वान्मूलमन्त्र इति स्मृतः।
सूक्ष्मत्वात्कारणत्वाच्च लयनाद्गमनादपि।९।
लक्षणात्परमेशस्य लिङ्गमित्यभिधीयते(योगशिखोपनिषत् २/९)

लिङ्ग=लीनम् गमयति-जिसमें लीन हो वह लिङ्ग है।

लीनं गमयति यस्मिन् मूलस्वरूपे, स सूक्ष्मरूपकारणः-विश्व का मूल सूक्ष्म रूप कारण है, विश्व उसी में पुनः लीन होता है, अतः वह लिङ्ग है। यह स्वयम्भू मण्डल या लिङ्ग है-निराकार से आकाशगङ्गाओं का समूह रूप।

लीनं गमयति यस्मिन् दिशायाम्-जिस दिशा में लीन हो वह भी लिङ्ग है। गति की दिशा को बाण से इंगित किया जाता है, अतः यह बाण लिंग है। स्वयम्भू लिंग एक ही है, पर ३ आयाम के आकाश में गति की ३ दिशायें होंगी, अतः ३ बाण लिंग है। आकाशगंगा से ही गति का आरम्भ होने से यह बाण लिंग है।

लीनं गमयति यस्मिन् बाह्य आवरणे(परमेश्वर लक्षणः)-परमेश्वर के लक्षण रूप जिस बाहरी आवरण में वस्तु लीन हो वह भी लिंग है। वस्तुओं का रूप अनन्त प्रकार का है, पर सूर्य के १२ राशियों में १२ प्रकार का तेज रूप होने से इनके १२ वर्ग(राशि=ढेर,समूह)। यह रूप अलग-अलग हैं, अतः इसे इतर(other)लिंग कहते हैं। ऋग्वेद में बाह्य रूप(मूर्त्ति) का वर्णन होने से इसका ब्राह्मण ऐतरेय कहलाता है। भौतिक रूप में यह सूर्य ज्योति के वर्गों पर आधारित होने से ज्योतिर्लिङ्ग है। सौर मण्डल की विविध सृष्टि और पार्थिव रूप इतर लिंग हैं।

शरीर में मूलाधार चक्र द्वारा मैथुनी सृष्टि होने से यह स्वयम्भू लिंग है। वायु और रक्त सञ्चार का केन्द्र हृदय बाण लिंग है। बाह्य रूपों का ज्ञान मस्तिष्क के आज्ञा-चक्र से होता है, अतः इसे इतर लिंग कहते हैं।

भौतिक रूप में निराकार लिंग एकलिंग(राजस्थान के मेवाड़ में) तथा साकार स्वयम्भू लिंग लिंगराज(भुवनेश्वर में पुरी के जगन्नाथ धाम की सीमा पर)। इसके

निकट बाण रूपी त्रिलिंग(तेलांगना) है। पूरे भारत में १२ ज्योतिर्लिङ्ग हैं। आकाश के ३ धाम-स्वयम्भू, परमेष्ठी(ब्रह्माण्ड), तथा सौर-मण्डलों का आदि जिस निराकार मूल से हुआ वह आदित्य है। ३ मण्डलों के आदित्य हैं- अर्यमा (स्वयम्भू का), वरुण (ब्रह्माण्ड का), मित्र (सौर का)। निराकार से पदार्थ के भण्डार रूपको वराह कहते हैं जिससे सृष्टि हुयी। स्वयम्भू (आकाशगंगा समूह) का मूल पदार्थ आदिवराह है। आकाशगंगा से सृष्टि रूपों के निर्माण का यज्ञ आरम्भ हुआ, अतः इसे यज्ञवराह कहते हैं। सूर्य समान ताराओं से प्रकाश का विकिरण आरम्भ हुआ अतः इसका मूल श्वेतवराह है। पृथ्वी ग्रह का निर्माण जिस क्षेत्र के पदार्थ से हुआ वह भू वराह है। पृथ्वी के अति निकट वायुमण्डल में वर्षा आदि से जैव जगत का पालन होता है, अति निकट होने के कारण यह एमूष वराह है।
वामन-शरीर रूपी रथ में आत्मा ही वामन है। जगत् की आत्मा सूर्य है-सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च-वा.यजु.७/४२,१३/४६)। सौर मण्डल का विस्तार सूर्य का रथ है। उसमें सूर्य-पिण्ड वामन है। ठोस ग्रहों का क्षेत्र दधि-वामन है-भागवत पञ्चम स्कन्ध में दधि समुद्र का आकार।

पृथ्वी पर जैव-सृष्टि कौमार सर्ग है। यह ५ पर्वों से निकलने के कारण स्कन्द है। कूर्म-क्षेत्र आकाशगङ्गा का आभा-मण्डल (Nutrino corona) है जो उसका १० गुणा है-

मानेन तस्य कूर्मस्य कथयामि प्रयत्नतः।
शंकोः शतसहस्राणि योजनानि वपुः स्थितम्।
(नरपतिजयचर्या, स्वरादय में कूर्म-चक्र)

शून्य आकाश के रस-समुद्र में स्वच्छन्द रूप से तैरते ब्रह्माण्ड ही मत्स्य हैं। मत्स्य,वामन,वराह,यज्ञ, विराट्-ये ५ नित्य अवतार हैं। पृथ्वी पर मनुष्य रूप में १० अवतार हैं; २४ की बड़ी सूची भी है।

१७वें गरुड़ पुराण में आयतिवाद या गति का वर्गीकरण है। इसमें सञ्चर(सर्जन) या सृष्टि विकास, प्रतिसञ्चर या प्रलय, कर्म-पदार्थ की उत्पत्ति, उत्क्रान्ति (उत्पत्ति), अनुत्क्रान्ति (मूल रूप में वापस होना) अर्थात् मृत्यु के बाद गति और पुनर्जन्म की व्याख्या है।

१८वें आयतनवाद का ब्रह्माण्ड पुराण है। विश्व का स्वरूप ब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड में विभिन्न लोकों की स्थिति को आयतन कहा जाता है।

पुराण-तालिका

वाद	पुराण	कल्प	श्लोकसंख्या	उपलब्धभाग
सृष्टि	१.ब्रह्म	सर्व	१०,०००	१४,०००
(६)	२.पद्म	हिरण्मय	५५,०००	४८,४५२
	३.विष्णु	वराह	२३,०००	६,०००
	४.वायु(शिव)	श्वेत	२४,०००	२४,०००
	५.भागवत	सारस्वत	१८,०००	१८,०००
	६.नारद	बृहत्	२५,०००	१८,११०
मत	७.मार्कण्डेय	शकुन	९,०००	६,९००
(४)	८.अग्नि	ईशान	१५,४००	१५,४००
	९.सूर्य(भविष्य)	अघोर	१४,५००	४ प्रकार की प्रति
	१०.ब्रह्मवैवर्त्त	रथन्तर	१८,०००	१८,०००
अवतार	११.लिङ्ग	आग्नेय	११,०००	११,०००
(६)	१२.वराह	मानव	२४,०००	१०,०००
	१३.वामन	कूर्म	१०,०००	१०,०००
	१४.कुमार(स्कन्द)	तत्पुरुष	८१,१००	७में३खण्ड,अन्य प्रकार ७खण्ड-८१,०००
	१५.कूर्म	लक्ष्मी	१७,०००	६,०००
	१६.मत्स्य	सप्त	२४,०००	१५,०००
आयति	१७.गरुड़	गारुड़	१९,०००	९,०००
आयतन	१८.ब्रह्माण्ड	भविष्य	१२,०००	१०,०००
	योग		४,१०,०००	

वायु पुराण में शिव पुराण की श्लोक संख्या दी गयी है। वायु पुराण का श्लोक मिलाने पर कुल श्लोक संख्या ४,३२,००० होगी। कलियुग में सौर वर्ष की संख्या तथा ऋग्वेद के शब्दों की संख्या इतनी ही है।

१८ उप-पुराण-१.सनत्कुमार, २.नरसिंह, ३.नन्द, ४.शिवधर्म, ५.दुर्वासा, ६.बृहन्नारदीय, ७.कपिल, ८.उशनस्, ९.वरुण, १०.कवि, ११.महेश्वर,१२. सौर, १४.पराशर, १५.मारीच, १६.मानव, १७.भार्गव, १८.देवीभागवत।

देवी उपासक लोग भागवत के बदले देवी भागवत को ही महापुराण मानते हैं। उसकी श्लोक संख्या भी १८,००० ही है। इसमें दुर्गा सप्तशती की विशद व्याख्या है। परवर्त्ती समय के कुछ और उप-पुराण हैं- १.कालिका, २.नन्दिकेश्वर, ३. वसिष्ठ, ४.भार्गव, ५.आदि, ६.मुद्गल, ७.महाभागवत, ८.बृहद्धर्मोत्तर, ९. विष्णु-धर्मोत्तर(यह संभवत: विष्णुपुराण का लुप्त अंश है जिसके अनुसार ब्रह्मगुप्त ने अपना ज्योतिष ग्रन्थ ब्राह्म-स्फुट-सिद्धान्त लिखा। ब्रह्मगुप्त और भास्कर आदि के ग्रन्थों का अन्तिम संशोधित रूप चन्द्रशेखर का सिद्धान्त-दर्पण है।). १०.परानन्द, ११.पशुपति, १२.हरिवंश(महाभारत का परिशिष्ट)।

वेदव्यास ने वेद पर आधारित एक ही पुराण संहिता के १८ भाग किये। उस पुराण संहिता का लोक में सूत ने प्रचार किया। सूत के शिष्यों ने उक्त १८ विभागों के अतिरिक्त ३ अन्य संहितायें भी बनायीं। प्रधान पुराण संहिता के प्रचारक सूत रोमहर्षण के नाम से विख्यात हुये, उन्होंने ६ पुरुषों के परस्पर संवाद क्रम से ७ पुराणों की रचना की थी। उसके बाद सूतपुत्र उग्रश्रवा ने पुन: द्वितीय पद्मपुराण,चतुर्थ वायुपुराण,तथा पञ्चम आपपुराण की अन्य नवीन रचना की। बाकी अष्टम आदि पुराण यथावत रहे। इस कारण पद्मपुराण २ प्रकार का, वायु २ प्रकार का, और आप स्थानीय भागवत भी २ प्रकार के हुये-एक विष्णु सम्बन्धी भागवत, दूसरा देवी भागवत। अन्य पुराण १-१ ही रहे।

बाद में विक्रमादित्य काल में बेताल भट्ट द्वारा पुराणों का पुन: सम्पादन विशाला नगरी में हुआ(पृष्ठ ८०)। भविष्य पुराण में पृथ्वीराज काल की घटनायें अधिक हैं तथा विक्टोरिया काल का वर्णन है, अत: इन कालों में भी कुछ जोड़ा गया है।

११. वेदाङ्ग-वेद के ६ अङ्ग तथा ६ उपाङ्ग (दर्शन) हैं।

वेदाङ्ग-१.शिक्षा-यह वेद की नासिका है। इसका उपयोग देद का शुद्ध उच्चारण करने में है। स्वर, व्यञ्जन वर्णों के उच्चारण स्थाशन, प्रयत्न, स्वर (उदात्त,समाहार, स्वरित) आदि के अनुसार उच्चारण के नियम इसमें हैं। गायन के लिये छन्द, लय और रागों का वर्णन भी है। प्रति वेद के उच्चारण के नियम अलग-अलग हैं। ऋग्वेद के क्रम पाठ की व्यवस्था जैगीषव्य के शिष्य पाञ्चाल वाभ्रव्य या गालव ने की थी। भारद्वाज शिक्षा का प्रकाशन पुणे के भण्डारकर इन्स्टीच्यूट ने किया है। प्रो.कीलहार्न को कश्मीर में चारायणीय शिक्षा की हस्तलिखित प्रति मिली थी।

आपिशलि (राजशेखर की काव्यमीमांसा में उल्लेख) के बाद पाणिनि शिक्षा लिखी गयी। स्वामी दयानन्द ने पाणिनीय शिक्षा का प्रकाशन किया था। इसका उपयोग ऋग्वेद के लिये है। वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित शिक्षा संग्रह में गौतम, नारद(नारद पुराण का), माण्डूकीय और भारद्वाज शिक्षा आदि हैं। यजुर्वेद की याज्ञवल्क्य शिक्षा, सामवेद की नारद शिक्षा, और अथर्व वेद की माण्डूकी शिक्षा उपलब्ध हैं।

२.कल्प-वैदिक अनुष्ठानों के लिये कल्प ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। नारद पुराण के पूर्व भाग(२/५१) के अनुसार ५ प्रकार के कल्प ग्रन्थ हैं-

१.नक्षत्र कल्प में नक्षत्रों के स्वामी आदि का वर्णन है।

२.वेद कल्प में ऋग्वेद आदि का विधान है जो ४ पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष -की सिद्धि कराता है।

३.संहिता कल्प में मन्त्रों के ऋषि, देवता छन्द का निर्देश है।

४.आङ्गिरस कल्प में ब्रह्मा द्वारा अभिचार विधि के ६ कर्मों का वर्णन है।

५. शान्ति कल्प में दिव्य, भौम और अन्तरिक्ष के उत्पातों की शान्ति विधि है।

विभिन्न यज्ञों के विधान के लिये वेद कल्प में ३ प्रकार के सूत्र हैं-श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र, धर्म सूत्र। यज्ञ वेदी निर्माण के लिये शुल्ब सूत्र है(श्रौत कर्म का अंग)। बौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन, और मानव शुल्ब सूत्रों का अंग्रेजी अनुवाद तथा गणितीय व्याख्या के साथ भारतीय विज्ञान अकादमी दिल्ली द्वारा प्रकाशन हुआ है।

श्रौत यज्ञ		**गृह-यज्ञ**
सोम-संस्था	हवि-संस्था	या पाक-संस्था
१.अग्निष्टोम	१.अग्न्याधेय	१.सायं होत्र
२.अत्यग्निष्टोम	२. अग्निहोत्र	२.प्रातर्होत्र
३.उक्थ्य	३. दर्श	३.स्थालीपाक
४.षोडशी	४.पौर्णमास	४. नव यज्ञ
५.वाजपेय	५.आग्रयण	५.वैश्वदेव
६.अतिरात्र	६.चातुर्मास्य	६.पितृयज्ञ
७.आप्तोर्याम	७.पशुबन्ध	७.अष्टका

इन २१ यज्ञों के अलावा कल्प सूत्र में ५ महायज्ञ और १६ संस्कार यज्ञ(जन्म,शिक्षा,

उपनयन, विवाह आदि)- कुल ४२ कर्मों का वर्णन है। वेद संहिता और शाखा के अनुसार ११३१ कल्प सूत्र होने चाहिये, किन्तु आजकल प्रायः ४० उपलब्ध हैं-
५ धर्म सूत्र-आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बौधायन, गौतम, वसिष्ठ। इनमें वर्णाश्रम धर्म, आचार, राजधर्म, संस्कार, नियम आदि हैं।
गृह्य सूत्रों में छोटे यज्ञ, १६ संस्कार और तीसरे भाग में मिश्र विषय जैसे गृह निर्माण, श्राद्ध, पितृ यज्ञ आदि हैं। उपलब्ध गृह्य सूत्र-
ऋग्वेद-शांखायन, शाम्बव्य, आश्वलायन।
कृष्ण यजुर्वेद-आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बौधायन, भारद्वाज, मानव, वैखानस।
शुक्ल यजुर्वेद-पारस्कर।
सामवेद-गोभिल, खादिर, जैमिनि।
अथर्ववेद-कौशिक, वैतान।
निम्नलिखित श्रौत सूत्र प्रकाशित हैं-आश्वलायन, शांखायन, वैतान, लाट्यायन, कात्यायन, आपस्तम्ब, आपस्तम्ब यज्ञ-परिभाषा-सूत्र तथा मानव श्रौत-सूत्र।
(३) व्याकरण-ऋक्-तन्त्र-व्याकरण(१/४) के अनुसार व्याकरण उत्पत्ति का क्रम है-ब्रह्मा-बृहस्पति-इन्द्र-भरद्वाज-ऋषि-ब्राह्मण। महाभाष्य के अनुसार बृहस्पति ने इन्द्र को प्रति-पद-पाठ द्वारा शब्द का उपदेश दिया था। वही व्यवस्था अब भी चीन और जापानकी भाषाओं में है। इनमें सिर्फ शब्द-चिह्न हैं, अलग-अलग अक्षरों का विभाजन नहीं है। इस प्रकार की व्यवस्था कठिन होने के कारण शाब्दिक आचार्य वायु की सहायता से इन्द्र ने लक्षणात्मक व्याख्या की -वाक् की व्याख्या के कारण उसे व्याकरण कहा गया। उस इन्द्र का समय १३,००० वर्ष से अधिक पुराना है (जल-प्लावन का समय ११,००० वर्ष पूर्व)। व्याकरण ३ प्रकार के हैं -
१.वैदिक शब्द विषयक-प्रातिशाख्य आदि।
२.लौकिक शब्द विषयक-कातन्त्र आदि।
३.उभय शब्द विषयक-आपिशलि, पाणिनि आदि।
प्रातिशाख्य प्रवक्ता-१.ऋक् प्रातिशाख्य-शौनक प्रणीत।
२.वाजसनेयी (शुक्ल यजुर्वेद शाखा) प्रातिशाख्य-कात्यायन।
३.तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (कृष्ण यजुर्वेद शाखा)४।
४.साम प्रातिशाख्य।

५. अथर्व प्रातिशाख्य।
६.मैत्रायणीय प्रातिशाख्य (कृष्ण यजुर्वेद शाखा)।
७.आश्वलायन प्रातिशाख्य (ऋक् शाखा)।
८.वाष्कल प्रातिशाख्य (ऋक् शाखा)।
९.चारायण प्रातिशाख्य(कृष्ण यजुर्वेद शाखा)।
अन्य छन्दो (वैदिक) व्याकरण-१.ऋक् तन्त्र-शाकटायन या औद्ब्राजि कृत।
२.लघु ऋक् तन्त्र, ३.साम-तन्त्र, ४.अक्षर तन्त्र-आपिशलि कृत।
५.अथर्व चतुराध्यायी-शौनक या कौत्स प्रणीत।
६.प्रतिज्ञा-सूत्र, ७.भाषिक सूत्र।

प्रातिशाख्य और वैदिक व्याकरण ग्रन्थों में पाणिनि पूर्व के ५७ आचार्यों का उल्लेख है। पाणिनि व्याकरण में १० तथा अन्य व्याकरणों में १३ अन्य आचार्यों के नाम हैं- १.इन्द्र, २.वायु, ३.भरद्वाज, ४.भागुरि, ५.पौष्करसादि, ६.चारायण, ७.काश-कृत्स्न, ८.वैयाघ्रपद्य, ९.माध्यन्दिनि, १०.रौढ़ि, ११.शौनक, १२.गौतम, १३.व्याडि, १४.आपिशलि, १५.काश्यप, १६.गालव, १७.गार्ग्य, १८.चाक्रवर्मण, १९.भारद्वाज, २०.शकटायन, २१.शाकल्य,२२.सेनक, २३.स्फोटायन।

प्राचीन व्याकरणों में अन्तिम पाणिनि का व्याकरण है। यह विक्रम पूर्व प्राय: २८०० वर्ष में लिखा गया था। इसके ५ ग्रन्थ हैं-१.शब्दानुशासन-८ अध्याय(अष्टाध्यायी), प्रति अध्याय में ४ पाद, कुल ४,००० सूत्र। २.धातुपाठ, ३.गणपाठ, ४.उणादि सूत्र, ५.लिङ्गानुशासन।

पाणिनि के व्याख्या-ग्रन्थ-

१.वार्त्तिक-पाणिनि सूत्र की व्याख्या या उसकी कमी की पूर्त्ति के लिये जो सूत्र लिखे गये उन्हें वार्त्तिक कहते हैं। पाणिनि के पूर्व वार्त्तिक-कारों ने पुराने व्याकरण ग्रन्थों की व्याख्या की थी। प्राचीन ग्रन्थों में ७ वार्त्तिककारों के ना म मिलते हैं- १.कात्यायन(प्राय: २७०० वर्ष विक्रम पूर्व-सबसे विख्यात), २.भारद्वाज, ३.सुनाग, ४.क्रोष्टा, ५.वाड़व, ६.व्याघ्रभूति,७.वैयाघ्रपद्य।

२.महाभाष्य-पाणिनि सूत्र और पूरक वार्त्तिकों (प्राय: कात्यायन के) की गम्भीर व्याख्या गोनर्द (उत्तरप्रदेश के गोण्डा जिला) के गोणिका-पुत्र पतञ्जलि ने की। यह वेद-व्यास के समकालीन थे क्योंकि इनके योग-सूत्र पर व्यास का भाष्य है। पतञ्जलि ने चरकसंहिता, योग-सूत्र तथा व्यारण महाभाष्य-३ ग्रन्थ लिखे हैं-

योगेन चित्तस्य पदेन वाचा मलं शरीरस्य तु वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ।(भोज का राजवार्त्तिक)
महाभाष्य लुप्त होने के बाद गौड़ पाद(उनके प्रेत या परम्परा द्वारा) के उपदेश से चन्द्रशर्मा(चान्द्र-व्याकरण के रचयिता) ने पुन: महाभाष्य लिखा (कथा-सरित्सागर तथा राजतरङ्गिणी)। यह संन्यास के बाद गोविन्दपाद हुये (शङ्कराचार्य के गुरु-प्राय: ६०० ई.पू)। अत: इसमें पुष्यमित्र शुङ्ग(१२१८-११५८ ई.पू.) के अश्वमेघ यज्ञ का वर्णन है।

३.महाभाष्य टीका-भर्त्तृहरि(गोविन्दपाद के पुत्र, ४५७ई.पू. के श्रीहर्ष विक्रम के बड़े भाई) की महाभाष्य-दीपिका की पाण्डुलिपि बर्लिन पुस्तकालय में है। उसके अतिरिक्त प्राय: २० व्याख्यायें हुयीं। उनमें सबसे विख्यात है कैयट उपाध्याय का महाभाष्य-प्रदीप। बादमें प्रदीप की ही प्राय: १५ टीकायें हुयीं। नागेश भट्ट की प्रदीपोद्योत व्याख्या चौखम्बा प्रेस वाराणसी द्वारा प्रकाशित है।

४.वृत्ति-ग्रन्थ- स्वयं पाणिनि ने अपने सूत्रों की वृत्ति (संक्षिप्त व्याख्या) लिखी थी जो अभी उपलब्ध नहीं है। महाभाष्य के पहले कुणि और माथुर वृत्ति हुयी थी। बाद में चुल्लि, भट्टि, निर्लूर, आदि वृत्ति हुयी थी। सबसे विख्यात वृत्ति है काशिका। उसके प्रथम ५ अध्याय जयादित्य और बाकी ३ अध्याय वामन द्वारा लिखित हैं। सम्भवत: उनकी अलग-अलग पूर्ण व्याख्यायें थीं। अन्य उपलब्ध वृत्तियां हैं- विमलयति, भर्त्तृहरि की भागवृत्ति, पुरुषोत्तमदेव की भाषावृत्ति, शरणदेव की दुर्घट वृत्ति, अन्नमभट्ट की मिताक्षरा, ओरम भट्ट की व्याकरण दीपिका, स्वामी दयानन्द का अष्टाध्यायी भाष्य, ब्रह्मदत्त जिज्ञासु द्वारा हिन्दी टीका। काशिका वृत्ति की २ व्याख्या उपलब्ध हैं-जिनेन्द्रबुद्धि का न्यास तथा हरदत्त की पादमञ्जरी-दोनों का प्रकाशन उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद से हुआ है।

५.प्रक्रिया-ग्रन्थ-अष्टाध्यायी का सूत्र-क्रम छोड़कर प्रक्रिया (संज्ञा, क्रिया, प्रत्यय आदि) के अनुसार व्याख्या ही प्राय: ५०० वर्षों से प्रचलित है। इसके मुख्य ग्रन्थ हैं-
विक्रम १२ वीं शताब्दी-धर्मकीर्त्ति का रूपावतार।
विक्रम १६ वीं शताब्दी प्रथम चरण-रामचन्द्रकी प्रक्रिया-कौमुदी।
विक्रम १६ वीं शताब्दी २,३ चरण-भट्टोजि दीक्षित की सिद्धान्त-कौमुदी।
विक्रम १६ वीं शताब्दी चतुर्थ चरण-नारायण भट्ट का प्रक्रिया-सर्वस्व।
प्रक्रिया-कौमुदी पर शेषकृष्ण और विट्ठल की टीकायें हैं। सिद्धान्त कौमुदी की

टीकायें-ग्रन्थकार द्वारा प्रौढ़-मनोरमा, वासुदेव द्वारा बाल-मनोरमा, ज्ञानेन्द्र सरस्वती की तत्त्व-प्रबोधिनी तथा नागेश भट्ट का लघुशब्देन्दु-शेखर।
६.पाणिनि के बाद के स्वतन्त्र ग्रन्थ-
कातन्त्र-व्याकरण- विक्रमकालीन कात्यायन (वररुचि) द्वारा। अग्नि और गरुड़-पुराण में इस व्याकरण को कौमार और स्कन्द कहा गया है।
चान्द्र-व्याकरण-विक्रम से १००० वर्ष पूर्व कश्मीर राजा अभिमन्यु(१२३४-११८२ ई.पू.) के आदेश से बौद्ध विद्वान चन्द्रगोभि द्वारा लिखा गया था। सिर्फ ६ अध्याय उपलब्ध हैं।
जैनेन्द्र-विक्रम ५००-५५० में आचार्य देवनन्दि द्वारा।इसकी ४ टीकायें उपलब्ध हैं।
विश्रान्त-विद्याधर-वामन(विक्रम पूर्व ६०० वर्ष)
अभिनव शाकटायन-अमोघवर्ष(विक्रम ८७१-९२४) राज्य में जैन आचार्य पाल्यकीर्त्ति द्वारा।
सरस्वती-कण्ठाभरण-धारापति भोज(विक्रम १०७५-१११०) द्वारा एक अलङ्कार ग्रन्थ भी इसी नाम का है।
हेम-शब्दानुशासन-गुजरात के जैन आचार्य हेमचन्द्र द्वारा(विक्रम ११४५-१२२०)
सारस्वत-वि.सं.१३०० में अनुभूतिस्वरूपाचार्य द्वारा।
जौमार-क्रमदीश्वर के संक्षिप्सार पर विक्रम १२०० में जुमरानन्दी की सरस्वती वृत्ति।
मुग्धबोध-वि.१४वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में बोपदेव का संक्षिप्त व्याकरण।
परिशिष्ट ग्रन्थ-आपिशलि और पाणिनि के धातुपाठ। पाणिनि धातुपाठ की क्षीरस्वामी, मैत्रेयरक्षित, और सायण वृत्ति है। चान्द्र धातुपाठ, शाकटायन, जैनेन्द्र, हेमचन्द्र, आदि के परिशिष्ट हैं। प्रायः सभी के गणपाठ, उणादि-सूत्र और लिङ्गानुशासन भी हैं।
व्याकरण दर्शन-संग्रह-व्याडि या दाक्षायण के संग्रह में प्रायः १०,००० पदार्थों की परीक्षा है।
वाक्यपदीय-भर्त्तृहरि द्वारा ३ काण्ड में है-ब्रह्मकाण्ड, पदकाण्ड, प्रकीर्णकाण्ड।उसके उपर पुण्यराज और हेलराज की व्याख्या है जो पं. रघुनाथ शर्मा की टीका के साथ वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित है।
लघु मञ्जूषानागोजि भट्ट द्वारा।

४.निरुक्त-मूल शब्द-कोष निघण्टु है-इसकी व्याख्या निरुक्त है, जो शब्द का अर्थ और व्युत्पत्ति बताता है। अभी केवल यास्क का निघण्टु और निरुक्त उपलब्ध है जिसपर दुर्गाचार्य की व्युत्पत्ति है। यास्क(विक्रम पूर्व २८००) के पहले का कोई भी निघण्टु या निरुक्त उपलब्ध नहीं है। यास्क के बाद पहला अक्षर-क्रम का शब्दकोष श्री चन्दशेखर उपाध्याय द्वारा १९४०-५५ में लिखा गया जो १९९५ में नाग प्रकाशन दिल्ली द्वारा ३ खण्डों में प्रकाशित हुआ। इसके पहले मौरिस ब्लूमफील्ड की वैदिक शब्द-सूची तथा १९२७ में पं. हंसराज तथा भगवद्दत्त की ब्राह्मण ग्रन्थ की शब्दसूची वैदिक-कोष के नाम से प्रकीशित हुयी। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा सूर्यकान्त का वैदिक कोष भी १९७० में प्रकाशित हुआ।

५.छन्द-अक्षर-परिमाण को छन्द कहा जाता है। कात्यायन की सर्वानुक्रमणिका में ७ वैदिक छन्दों का वर्णन है-गायत्री से जगती तक। वेद का अन्य नाम छन्दस है। लौकिक गाथा में अनुष्टुप् छन्द की प्रथम रचना वाल्मीकि रामायण(४५०० ई.पू.) है। कात्यायन के बाद छन्द-शास्त्र के विख्यात निर्माता पिङ्गल हुये, पिङ्गल शब्द छन्द-शास्त्र का पर्याय बन गया है। पिङ्गल के छन्द-शास्त्र में ८ अध्याय, और ३०८ सूत्र हैं। उसमें उद्धृत अन्य आचार्य हैं- एके, काश्यप, क्रौष्टुकि, तण्डि, यास्क, रात, माण्डव्य, ऐतक। छन्द-शास्त्र पर हलायुध भट्ट की व्याख्या है। अग्नि, गरुड़ तथा नारद पुराणों में प्राय: वैसा ही छन्द वर्णन है।

बाद के विस्तृत ग्रन्थ हैं-छन्द कौस्तुभ, वृत्त रत्नाकर, छन्द मञ्जरी। कालिदास (षष्ट शताब्दी के भोजराज के समकालीन) का छोटा ग्रन्थ श्रुतबोध है।

६.ज्योतिष-मनुष्य के अङ्गों के समान वेद के अङ्गों की तुलना-नेत्र-ज्योतिष, कान-निरुक्त, नाक-शिक्षा, मुख-व्याकरण, हाथ-कल्प, पैर-छन्द।

ज्योति का अर्थ ज्योति: पिण्ड अर्थात् ग्रह नक्षत्रों की स्थिति, जति और उनके प्रभाव का अध्ययन है। वेद का वास्तविक वैज्ञानिक अर्थ ज्योतष द्वारा ही मालूम होता है। ज्योतिष रूपी नेत्र के बिना वेद पढ़ने वाला वास्तव में अन्धा है। वेद के प्राय: प्रति सूक्त के ३ प्रकार के अर्थ होते हैं- आकाश पिण्ड तथा लोक सम्बन्धी(आधिदैविक), मानव शरीर सम्बन्धी (आध्यात्मिक), तथा दृश्य वातावरण समाज आदि से सम्बन्धित (आधिभौतिक)। उसके अनुसार ज्योतिष के ३ खण्ड हैं-गणित खण्ड में ग्रह स्थिति, गति गणना, देश-काल-दिक् निर्णय, ग्रहण, युति आदि, सृष्टि की उत्पत्ति और आकाश आदि का वर्णन है। फलित ज्योतिष में

ग्रह स्थिति का मानव जीवन के उपर प्रभाव का अध्ययन होता है। संहिता में राष्ट्र का भविष्य, शुभ मुहूर्त्त, पर्व उपवास आदि का निर्णय होता है।

गणित ज्योतिष के ३ खण्ड हैं-सिद्धान्त ग्रन्थ में कल्प आरम्भ से(४३२ कोटि वर्ष का ब्रह्मा का दिन जिसमें १९८ कोटि वर्ष बीत चुके हैं) बीते समय के अनुसार ग्रह गति की गणना होती है। वर्त्तमान सिद्धान्त ग्रन्थों का आधार सूर्य सिद्धान्त है जिसका उपदेश विवस्वान् द्वारा मय असुर को रोमक-पत्तन(उज्जैन से ९०° पूर्व रबात, रब=रवि या सूर्य, इसके निकट हरकुलस या विष्णु सूर्य का स्तम्भ था) में ९,२२३ ई.पू.में (सत्ययुग में जब १२१ वर्ष बाकी थे) दिया गया था। इस कारण भारत से लेकर मेक्सिको तक ज्योतिष के नाम, नियम, सिद्धान्त एक ही हैं। इसमें पृथ्वी की अक्ष-च्युति, पृथ्वी कक्षा का दीर्घवृत्ताकार, दैनिक गति का मान आदि जल-प्रलय के बाद उसी काल के हैं। अन्तिम सिद्धान्त ओडिशा के श्री चन्द्रशेखर सामन्त द्वारा १८७० में सिद्धान्त दर्पण है जो कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा १८९९ में प्रकाशित हुआ तथा इसका अनुवाद और व्याख्या अरुण कुमार उपाध्याय द्वारा १९९८ में प्रकाशित हुआ। तन्त्र ग्रन्थ में युग या कलि आरम्भ (१७.१८-२-३१०२ ई.पू. उज्जैन मध्यरात्रि) से बीते काल द्वारा ग्रह स्थिति की गणना होती है। प्रथम उपलब्ध तन्त्र ग्रन्थ वराहमिहिर(६-३-९५ ई.पू. में जन्म) की पञ्चसिद्धान्तिका है। उसके बाद आर्यभट द्वार ४९९ ई. में आर्यभटीय लिखा गया। इसके पहले एक और आर्यभट थे जिनकी रचना उपलब्ध नहीं है। बाद में तीसरे आर्यभट का आर्यभट सिद्धान्त उपलब्ध है। करण ग्रन्थ में किसी निकट समय से सरल गणना होती है। इसे आजकल सरकारी कार्यालियों में हैण्डबुक या मैनुअल कहा जाता है।

आगम और निगम सम्बन्धी अनुष्ठान ऋतु चक्र पर आधारित हैं। ऋतु वर्ष की गणना वेदाङ्ग ज्योतिष का उद्देश्य है। इसमें प्रत्येक अर्ध-वर्ष में चन्द्रवर्ष के बाद के बचे समय-ऋतुशेष की गणना होती है। ग्रहों की स्थिति, गति, नक्षत्र आदि के अनुसार तात्कालिक अनुष्ठान होते हैं- इसकी गणना सिद्धान्त ज्योतिष (या तन्त्र, करण) में है। उसके द्वार दीर्घकालिक युग, वर्ष आदि की गणना होती है। व्यावहारिक मानचित्र बनाने के लिये पृथ्वी को समतल मानकर उस पर स्थान, ग्रह आदि का अङ्कन जैन ज्योतिष का उद्देश्य है। ज्योतिष की यह तीन धारायें परस्पर पूरक हैं तथा कम से कम १०,००० वर्षों से एक साथ प्रचलित हैं।

१२.वेद के उपाङ्ग-वेद के उपाङ्गके रूप में ६ दर्शन हैं जिनके आधार ग्रन्थ निम्नलिखित हैं-

१.मीमांसा-या पूर्व मीमांसा-व्यास शिष्य जैमिनि द्वारा मीमांसा सूत्र-१२ अध्याय, ९०९ अधिकरण,२६४४ सूत्र।

२.वेदान्त या उत्तर मीमांसा-बादरायण व्यास का ब्रह्म-सूत्र या शारीरक सूत्र-४ अध्याय,१६ पाद, २२३ अधिकार, ५६४ सूत्र।

३.न्याय-अक्षपाद गौतम का न्याय सूत्र-५ अध्याय, १० आह्निक, ५३० सूत्र, ९५ वार्त्तिक।

४.वैशेषिक-औलूक्य कणाद द्वारा-१० अध्याय, २० आह्निक, तथा ३७० सूत्र।

५.संख्य दर्शन-कपिल के तत्त्व समास में २२ या २४ सूत्र हैं(१ सूत्र ३ भाग में विभक्त)। कपिल सांख्य सूत्र में ६ अध्याय और ५२३ सूत्र हैं। कपिल शिष्य आसुरि के शिष्य पञ्चशिख (महाभारत सेकुछ समय पूर्व) ने कपिल शिक्षा का विस्तार किया। एक मत से सांख्य सूत्र उन्हीं का लिखा है। उसके बाद वर्षगण्य ने षष्टितन्त्र लिखा। इसमें ६० अध्याय या ६०,००० श्लोक हैं। या इसमें प्रधान प्रकृति के १० लक्षण, मनुष्य के५० अशक्ति तुष्टि आदि कुल ६० तत्त्वों का वर्णन है। यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। उसका संक्षेप ईश्वरकृष्ण(२८०० ई.पू.) ने ७० श्लोकों की सांख्य-कारिका में किया। अभी सांख्य दर्शन प्रायः इसी को कहा जाता है। इसकी सबसे प्रसिद्ध टीका वाचस्पति मिश्र (३०० ई.पू.) की सांख्य-तत्त्व-कौमुदी है।

६.योग दर्शन-हिरण्यगर्भ(गीता ६/८, महाभारत १२/३४९/६५) सूत्र के आधार पर पतञ्जलि (३३००-२८०० ई.पू.-प्रायः ५०० वर्ष आयु) ने योग दर्शन लिखा। उसमें ४ पाद और १९५ सूत्र हैं। इसकी सबसे प्रसिद्ध व्याख्या व्यास भाष्य है , जिसकी व्याख्या वाचस्पति मिश्र की तत्त्व-वैशारदी और विज्ञान भिक्षु का तत्त्व-वार्त्तिक है। आधुनिक काल में भोजराज(१२वीं शताब्दी) ने राजमार्त्तण्ड लिखा।

पाश्चात्य दर्शन-भारतीय दर्शन में तत्त्वों कीव्याख्या है तथा उसके ३ तत्त्व हैं-आत्मा (चेतन जीव), जड़ प्रकृति, और विराट्। इसके ४ उद्देश्य हैं -

हेय(त्याज्य)-दुःख का स्वरूप

हेय हेतु-दुःख का कारण

हान-दुःख के अभाव का स्वरूप

हानोपाय-दुःख निवृत्ति का साधन।

पाश्चात्य दर्शनों में जीवन का आचार शास्त्र और मोक्ष अवस्था का विचार नहीं है, यह आसुरी दर्शन परम्परा है। वहां व्यक्ति की तार्किक और बौद्धिक श्रेष्ठता का प्रदर्शन ही दर्शन है। चार्वाक दर्शन भी जड़वादी होने के कारण कई बार चार्वाक को भी असुर कहा गया है। किन्तु उसने भी तत्त्व को प्रधानता दी है तथा व्यक्तिगत पाखण्ड का विरोध किया है, अपनी महानता का प्रदर्शन नहीं। आचार और मोक्ष भारत में दर्शन का परम लक्ष्य है, आसुरी सभ्यता में उसे नीचे स्थान दिया गया है (relegate) इस अर्थ में वह रेलिजन (religion) है। यह शक्तिहीन सेवक रूप और ज्ञानशून्य पुराहितों का कार्य माना जाता है। पाश्चात्य दर्शन २ प्रकार का है-तत्त्व मीमांसा (metaphysics) संसार की उत्पत्ति का दर्शन है। दूसरा है तर्क बुद्धि का आधार (metamathematics)। यह भारत के अनीश्वरवादी ६ दर्शनों के वर्ग का भिन्न रूप है। पाश्चात्य विचारधारा का मूल है मिश्र देश(Egypt) का ज्ञान। वहां हिरण्यकशिपु का असुर राज्य था, उसके पुत्र प्रह्लाद को ग्रीक भाषा में लिबिया कहते हैं, जो मिश्र के पश्चिम के एक देश का नाम है। मिश्र में अध्ययन कर ग्रीक विद्वानों अरस्तू, थेल्स, प्लेटो, पिथागोरस आदि ने उसे अपनी भाषा में लिखा। ग्रीक परम्परा को रोमन राज्य ने जारी रखा। उन्होंने मिश्र से निष्कासित यहूदी जाति के धर्म संस्थापक ईसा मसीह को फांसी देकर बाद में अपने को इनका अनुगामी घोषित कर दिया। अभी भी यहूदी ईसा के अनुयायी यहूदियों के दमन में लगे हुये हैं। उसके बाद पश्चिम एसिया की पैगम्बर परम्परा में मुहम्मद आये। उनके विरुद्ध भी ईसा के तथाकथित अनुयायी ईराक, तुर्की में धर्मयुद्ध करते रहे हैं। इस कारण पाश्चात्य लेखक भारतीय इतिहास में भी आर्य-द्रविड़ संघर्ष आदि की झूठी कल्पनायें करते रहते हैं। पश्चिम एसिया की मिश्री परम्परा आधुनिक युग में इसलाम के रूप में विकसित हुयी। मिश्र और भारत के सीमा क्षेत्र इरान में शिया (शिव या काश्मीर शैव) सम्प्रदाय तथा वेदान्त के समान सूफी (सूफ=गेरुआ , खाकी वस्त्र) सम्प्रदाय का जन्म हुआ जो इसलाम के अंग है।

इसलाम प्रभावित इसाई सम्प्रदाय में भी दो प्रकार के वाद विकसित हुये-१२वीं शताब्दी में फ्रान्सिस्कन में रोजर बेकन तथा डोमिनिकन सम्प्रदाय में टामस एक्विना। १५वीं शताब्दी में इटली के लियोनार्डो दा विंची ने वैज्ञानिक प्रयोगवाद की नींव डाली । १७ वीं शताब्दी में अद्वैत भौतिकवाद में हौब्स तथा टोलैण्ड, अद्वैत

विज्ञानवाद में स्पिनोजा, द्वैतवाद में लौक और बुद्धिवाद में देकार्त्त तथा लिबनित्ज हुये। १८वीं शताब्दी में यूरोप के दार्शनिक थे- विज्ञानवाद में बर्कले और काण्ट, सन्देहवाद में ह्यूम। १९ वीं शताब्दी में ४ मतों का प्रचार हुआ-फिख्ट तथा हीगेल द्वारा विज्ञानवाद, नीत्शे द्वारा द्वैतवाद, स्पेन्सर द्वारा अज्ञेयतावाद। भौतिकवाद का जन्म बुखलर, लुडविक फुएरबाख तथा कार्ल मार्क्स द्वारा हुआ, जिसपर साम्यवाद की राजनीति आधारित है।

२०वीं शताब्दी में व्हाइटहेड तथा यूकन द्वारा ईश्वरवाद, बर्जसां तथा बर्ट्रण्ड रसेल द्वारा सन्तुलनवाद(Nihilism), विलियम जेम्स द्वारा द्वैतवाद तथा एंजेल्स-मार्क्स द्वारा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त भौतिक विज्ञान की दो नयी धाराओं के कारण विश्व के बारे में वैज्ञानिक धारणा बदल गयी। क्वाण्टम मेकानिक्स का सिद्धान्त है- पदार्थ, उर्जा, समय के माप की न्यूनतम सीमा, पदार्थ उर्जा का एकत्व, तथा अनिश्चय सिद्धान्त(हेजेनबर्ग)। आइन्सटाइन के सापेक्षतावाद का निष्कर्ष है-प्रकाश गति अधिकतम है, आकाश(दिक्) और काल सम्बन्धित तथा सापेक्ष है।

१३. उपवेद-चरण-व्यूह में ४ उपवेद कहे गये हैं-

ऋक्-आयुर्वेद, यजु:-धनुर्वेद, साम-गन्धर्ववेद, अथर्व-अर्थशास्त्र।

किन्तु सुश्रुत, भावप्रकाश तथा चरक के अनुसार आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है। यह मत ठीक लगता है , क्योंकि अथर्व वेद में चिकित्सा तत्त्व भरे पड़े हैं। अत: अर्थशास्त्र को ऋग्वेद का उपवेद मानना उचित है।

अर्थशास्त्र की परम्परा-त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की व्याख्या के लिये ब्रह्मा ने १ लाख अध्यायों का शास्त्र लिखा था (स्वायम्भुव२९,००० ई.पू. या उससे पूर्व)। उसके बाद ३ अलग-अल परम्परायें आरम्भ हुयीं-

ब्रह्मा-१ लाख अध्याय का त्रिवर्ग

धर्मशास्त्र — अर्थशास्त्र — कामशास्त्र

धर्मशास्त्र: स्वायम्भुवमनु

अर्थशास्त्र: विशालाक्ष=शिव द्वारा १२,००० अध्याय।
इन्द्र का बाहुदन्तक ग्रन्थ(५ या १२ हजार अध्याय)।
दानव पुलोमा।
बृहस्पति द्वारा बाहुदन्तक का संक्षेप-३००० अध्याय में।
उशना कवि(शुक्र)-१००० अध्याय।

नारद या पिशुन(चुगली)
बुध पुत्र पुरुरवा
सुधन्वा आङ्गिरस
मरुत्

मनु-स्वायम्भुव, प्राचेतस, वैवस्वत।
वसिष्ठ का चतुर्विंशति व्यवहार निर्णय।
भरद्वाज का ७०० अध्याय का अर्थशास्त्र।
गौरशिरा का ४०० अध्याय का ।
पराशर का नृपशास्त्र, व्यास द्वारा ३०० अध्याय में संक्षेप।
भीष्म, कौणपदन्त, द्रोण भारद्वाज, उद्धव वातव्याधि।
शाम्बव्य (ऋग्वेद का कल्प सूत्र, आयुर्वेद और अर्थशास्त्र)।
शालङ्कायन-नृपशास्त्र।
विष्णुगुप्त कौटिल्य का अर्थशास्त्र (१६२५ ई.पू.)।
कौटिल्य अर्थशास्त्र संपूर्ण तथा उशना का शुक्रनीति संक्षिप्तरूप में उपलब्ध है। भीष्म का राजनीति का उपदेश महाभारत के शान्तिपर्व में विस्तार से है। अन्य कई विदुर, कुणिक आदि की नीति महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों में उद्धृत है।

आयुर्वेद परम्परा-सुश्रुत संहिता के अनुसार ब्रह्मा ने १००० अध्याय तथा १ लाख श्लोकों में आयुर्वेद शास्त्र लिखा था जिसके ८ खण्ड थे-१.शल्य तन्त्र, २. शालाक्य तन्त्र, ३.कायचिकित्सा तन्त्र, ४.भूतविद्या तन्त्र, ५.कौमारभृत्य तन्त्र, ६.अगद तन्त्र, ७.रसायन तन्त्र, तथा ८.वाजीकरण तन्त्र।

इस अष्टाङ्ग आयुर्वेद में देहतत्त्व, शरीर विज्ञान, शस्त्र विद्या, भेषज और द्रव्य गुणतत्त्व, चिकित्सा तत्त्व तथा धात्री -विद्या भी है। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली के समान सदृश चिकित्सा (होमियोपैथी), विरोधी चिकित्सा (एलोपैथी) और जल- चिकित्सा भी है।

ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति, उसके बाद दोनों अश्विनी-कुमार-नासत्य और दस्र- और उसके बाद इन्द्र ने सीखा। असुरों में भार्गव उशना आयुर्वेद के आचार्य थे। पुनर्वसु आत्रेय, धन्वन्तरि और भरद्वाज प्राय: समकालीन थे। रोग बढ़ने पर हिमालय में भरद्वाज की अध्यक्षता में ऋषियों की सभा हुयी (चरक संहिता)। आत्रेय पुनर्वसु के अनुरोध पर भरद्वाज इन्द्र के पास आयुर्वेद सीखने गये क्योंकि भरद्वाज के पिता

आङ्गिरस बृहस्पति देवगुरु थे। पुनः भरद्वाज से पुनर्वसु आत्रेय तथा अन्य ऋषियों ने आयुर्वेद सीखा। दिवोदास धन्वन्तरि ने अपने मानव जन्म में भरद्वाज से आयुर्वेद सीखा। पूर्ववर्त्ती धन्वन्तरि समुद्र-मन्थन के समय भगवान के अवतार के रूप में प्रकट हुये थे।

पुनर्वसु आत्रेय से १. अग्निवेश, २.श्वेत, ३.जातूकर्ण, ४.पराशर, ५.हारीत, ६.क्षारपाणि ने आयुर्वेद सीखा।

जातूकर्ण और पराशर भाई थे, पराशर के पुत्र व्यास हुये। अग्निवेश द्रुपद तथा द्रोण के गुरु थे और आयुर्वेद के भी आचार्य थे। हारीत सांख्य परम्परा में पञ्चशिख के शिष्य थे तथा इसके अतिरिक्त उनका आयुर्वेद तथा धर्मसूत्र भी है।

अग्निवेश से आयुर्वेद तन्त्र का पुनर्लेखन वैशम्पायन ने चरक संहिता के रूप में महाभारत युद्ध के कुछ बाद किया। वैशम्पायन को चरक कहा जाता है, संभवतः उनके संस्थान में पतञ्जलि ने लिखा।

दिवोदास धन्वन्तरि से उनके शिष्य सुश्रुत ने आयुर्वेद सीखा तथा सुश्रुत-संहिता लिखी। उसकेबाद मुख्यतः चरक और सुश्रुत संहिता की ही व्याख्या हुयी। व्याख्याओं का काल-क्रम इस प्रकार है-

१. आषाढ़ वर्मा, सुवीर, नन्दि, वराह, हरिश्चन्द्र, स्वामिदास, चेल्लदेव, हिमदत्त, कार्त्तिक कुण्ड।

२. जेज्झट (विक्रम १००)

३. गयदास, भास्कर (दोनों पञ्जिका- कार), माधवकर (ओड़िसा के)।

४. ब्रह्मदेव , गोवर्द्धन (कौमुदी और रत्नमाला), गदाधर।

५. चक्रपाणि (विक्रम सं. ११००)

६. डल्हण,वृन्द।

७. हेमाद्रि।

जेज्झट के गुरु वाग्भट का अष्टाङ्ग संग्रह, चक्रपाणि का चक्रदत्त और डल्हण आदि के ग्रन्थ विख्यात हैं।

३.धनुर्वेद-बस्ती (उत्तर प्रदेश) के पं. धनराज(१९२४) के अनुसार धनुर्वेद के ३ प्राचीन ग्रन्थ थे- धनुर्वेद, धनुष-चन्द्रोदय तथा धनुष-प्रदीप। प्रथम दो ग्रन्थों में ६०-६० हजार श्लोक थे।

मधुसूदन सरस्वती के प्रस्थान-भेद के अनुसार विश्वामित्र के धनुर्वेद के ४ पाद थे-

दीक्षा, संग्रह, सिद्धि और प्रयोग। दीक्षा पाद में धनुष का अर्थ ४ प्रकार के आयुध हैं-१.मुक्त-चक्र आदि अस्त्र। २.अमुक्त-खड्ग, गदा आदि अस्त्र। ३.मुक्तामुक्त-शल्य या आधुनिक युग के आग्नेयास्त्र जिसका मुख्य भाग प्रयोगकर्त्ता के पास रह जाता है। ४. यन्त्रमुक्त-मिसाइल या यन्त्र मुक्त दिव्यास्त्र।

भारद्वाज का यन्त्र-सर्वस्व का ४० वां अध्याय वैमानिक प्रकरण है जिसमें ८ अध्याय, १०० अधिकार तथा ५०० सूत्र हैं। इसमें युद्ध तथा अन्य उपयोगों के लिये विमानों का वर्णन है। अन्य पूर्ववर्त्ती आचार्यों के नाम इसमें हैं-नारायण(नर-नारायण ऋषि बन्धु) की विमान-चन्द्रिका, शौनक (पुराण सम्पादक) का व्योम-यान-तन्त्र, गर्ग (कृष्ण के गुरु) का यन्त्र-कल्प, वाचस्पति का यानविन्दु, चाक्रायण (उषस्ति) का खेटयान-प्रदीपिका तथा घुण्डिनाथ का व्योमयानार्क-प्रकाश। अन्य २५ ग्रन्थों में प्रमुख है-अगस्त्य का अंशुमतन्त्र, आकाश-शास्त्र तथा यन्त्र-सर्वस्व, शाकटायन का वायुतत्त्व-प्रकरण, नारद कृत वैश्वानर तन्त्र, धूम-प्रकरण आदि। भरद्वाज की अंशुबोधिनी में वर्णित ध्वान्त-प्रमापक यन्त्र की वैज्ञानिक व्याख्या स्पेक्ट्रोमीटर के रूप में इण्डियन जर्नल औफहिस्ट्री औफ साइन्स के दिसम्बर, १९९४ अंक में की है।

धनुर्वेद के अन्य आचार्य-भार्गव उशना कवि, अग्निवेश, शरद्वान् और उनके पुत्र कृप, भरद्वाज पुत्र द्रोण, जमदग्नि और परशुराम।

४. गन्धर्ववेद-यह सामवेद का उपाङ्ग है। इसके ४ आचार्य प्रसिद्ध हैं-सोमेश्वर (शिव?), भरत, हनुमान, और कल्लिनाथ।

भरत का नाट्य-शास्त्र प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है। इसमें ऋग्वेद से पाठ्यवस्तु, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लिया गया है (नाट्यशास्त्र १/१७)। इसके आदि आचार्य शिव हैं। उसके बाद नारद, हनुमान, गन्धर्व तुम्बुरु आदि ने सीखा।

१४. आगम या तन्त्र-आधुनिक युग में आगम शास्त्र का प्रचार कम है, उसका विकृत रूप अधिक दीखता है। निगम मूल ज्ञान है जो सूर्य से पृत्वी की तरफ आता है, अर्थात् बाहरी सत्य का अन्तर्जगत् में अनुमव है। आगम व्यावहारिक शास्त्र-पार्थिव ज्ञान है अर्थात् वह आन्तरिक शक्ति द्वारा बाहरी जगत् को प्रभावित करता है। निगम की अनुभूति स्वयं होती है, आगम की शिक्षा गुरु परम्परा से होती है। आगम का फल तुरत मिलता है, उसमें अपनी ही शक्ति प्रकट होती है। आधुनिकप्रचलन के अनुसार निगम को साइन्स तथा आगम को इञ्जीनियरिंग

कहा जा सकता है। दोनों परस्पर सम्बन्धित हैं। आगम साहित्य के ६ मुख्य खण्ड तथा उसके १२० उपखण्ड हैं-

१.संहिता ग्रन्थ-१८-इतिहास, तात्त्विक विषय आदि।

२.सिद्धान्त-१४-रसायन आदि वैज्ञानिक विषय।

३.कल्प ग्रन्थ-६-६ आम्नाय।

४.यामल ग्रन्थ-१०-वृष्टि विज्ञान आदि नैमित्तिक विज्ञान।

५. डामर ग्रन्थ-८-अभिचार विद्या।

६.तन्त्र ग्रन्थ-६४-मणि, मन्त्र, ओषध-विज्ञान।

इष्ट देव भेद से ३ प्रकार के आगम हैं-१.वैष्णव, २.शैव, ३.शाक्त।

इसके अतिरिव ४.सौर तन्त्र तथा ५. गाणपत्य तन्त्र भी हैं किन्तु उनका प्रचार कम है। अवैदिक आगमों में ६.बौद्ध तथा ७.जैन तन्त्र हैं।

वैष्णव आगम में पाञ्चरात्र,वैखानस, और श्रीमद्‌भागवत पुराण मुख्य हैं। **पाञ्चरात्र** नाम का निम्नलिखित कारण है-

१.सौर वर्ष (सूर्य=विष्णु) में ३६५ दिन हैं, सावन वर्ष में ३६० दिन (१२ मासह्न३० दिन) हैं। अन्तिम ५ दिन वर्षान्त की छुट्टी हैं जिसमें यज्ञ होता है। क्रिसमस तथा हज इसी प्रकार वर्षान्त के यज्ञ तथा छुट्टी हैं। सावन वर्ष के बाद सौर वर्ष के बचे ५ दिन ही पाञ्चरात्र हैं। ४ वर्ष में एक बार ६ दिन अधिक होते हैं-यह ऐतरेय तथा गोपथ ब्राह्मण के अनुसार षडाह है।

२.अज्ञान=रात्रि,पञ्च उसका नाशक है।

३.अविद्या द्वारा ५ रात्रि होती है, उनका नाश पाञ्चरात्र करता है।(विष्णुतन्त्र,१/७७-७९)

४.भगवान के ५ आयुध ५ ऋषियों के रूप में प्रकट हुये-शाण्डिल्य, औपगायन, मौञ्जायन,कौशिक, और भारद्वाज। प्रति को १-१ दिन में १-१ शास्त्र का उपदेश दिया गया।५ रात्रियां हैं-ब्रह्मरात्रि, शिवरात्रि, इन्द्ररात्रि, नागरात्रि, और ऋषिरात्रि। वायुदेव द्वारा संकर्षण को वेद के अनुसार ३ दिव्य शास्त्रों का उपदेश दिया गया था - सात्वत, पौष्कर, जयाख्य। सात्वत संहिता को एकायन वेद कहा जाता है-वह वेद वृक्ष का एकमात्र मूल है।

संकर्षण ने ७ ऋषियों द्वारा संसार में पाञ्चरात्र का प्रचार किया था-सनक, सनत्, सुजात, सनन्द, सनब्द, सनत्कुमार, कपिल।

४ प्रकार के शास्त्र हैं-१.सात्विक-३६-वासुदेव द्वारा उपदेश।
२.राजस-३६-सात्विक का अर्थ विस्तार।
३.तामस-३६-ऋषि निर्मित।
४.मनुष्य निर्मित।

विषय के अनुसार पाञ्चरात्र के ४ भेद हैं-
१. आगम सिद्धान्त ग्रन्थ में ४ व्यूह (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) की आराधना है। यह गुरु परम्परा से आया है।
२. मन्त्र सिद्धान्त- इसमें अन्य देवताओं की उपासना है जो शीघ्र फल देती है।
३. तन्त्र संहिता- वाक् मन्त्र द्वारा भगवान के रूप, मूर्त्ति की पूजा।
४.तन्त्रान्तर सिद्धान्त- मूर्त्ति, देव-परिवार, आयुध, भूषण आदि की पूजा।

वैखानस आगम-वानप्रस्थ अवस्था (५०-७५ वर्ष) के लिये वैखानस शब्द का व्यवहार होता है। पञ्चविंश ब्राह्मण (१४/४/७) के अनुसार पौराणिक ऋषियों के एक कुल का नाम वैखानस था। तैत्तिरीय आरण्यक (१/२३/३) में भी उसकी चर्चा है। कृष्ण यजुर्वेद के गृह्य सूत्र को वैखानस गृह्य सूत्र कहते हैं। वैखानस धर्म सूत्र तथा श्रौत सूत्र भी हैं। वैदिक वैखानस शाखा का क्रम इस प्रकार है-

नारायण (वराह भगवान=वैखानस)
ब्रह्मा
वैखानस ऋषि
कश्यप भृगु अत्रि मरीचि

वैखानस आगम में मन्दिर निर्माण, मूर्त्ति रचना और प्रतिष्ठा, अर्चना आ दि का विशद वर्णन है।

२.शैव आगम-शिव के ५ में ३ मुख चित्, आनन्द और ज्ञान रूप हैं। उनके विभिन्न प्रकार मिलन से १० शिव आगम होते हैं। इच्छा और क्रिया रूप अन्य दो मुख मिलाने से ५ मुखों के विभिन्न मिलन द्वारा १८ रौद्र आगम होते हैं। ४ मुख (ईशान, तत्पुरुष, सद्योजात, और वामदेव) का ५वें मुख अघोर में लय होता है। लय या स्थिति प्रत्येक मुख में २ भेद हैं। अत: ४ मुखों के २ह्न२ह्न२ह्न२=१६ भेद हैं। वाणी (शब्द) के ४ प्रकार के भेद-उत्पत्ति की २ अवस्था-परा और पश्यन्ती रूप में बाहर निकलने के लिये प्रस्तुत तथा मध्यमा और वैखरी रूप में प्रकट। वाणी निकलने के बाद भी २ भेद हैं- श्रोता द्वारा ग्रहण, प्रतिक्रिया। कुल १६ह्न४=६४ भेदों के

अनुसार ६४ भैरव आगम हैं। प्रस्थान भेद के अनुसार भी ८ सादाशिव चक्र तथा प्रति चक्र के ८ भेद हैं। इस प्रकार कुल ९२ शैव आगम हैं-

१० शैव आगम+१८ रौद्र आगम+६४ भैरव आगम।

मूल **शैव आगमों** की ८ प्रकार की साम्प्रदायिक व्याख्या है-

१.पाशुपत सिद्धान्त- न्याय और वैशेषिक दर्शन द्वारा प्रभावित। कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है।

२.सद्योज्योति (द्वैतवाद)-सद्योज्योति के शिष्यों द्वारा प्रचार ।

३.लकुलीश पाशुपत (द्वैताद्वैत)-वायु और लिङ्ग पुराणों के अनुसार गुजरात में शिव का लकुलीश के रूप में अवतार हुआ था। यह तैत्तिरीय आरण्यक द्वारा प्रभावित है।

४.विशिष्टाद्वैत शैव सिद्धान्त- उत्पलाचार्य की ईश्वर प्रत्यभिज्ञा कारिका तथा अभिनवगुप्त की व्याख्यापर आधारित है। कश्मीर में प्रचलित।

५.विशेषाद्वैत शैव सिद्धान्त-यह दक्षिण भारत में लिङ्गायत रूप में प्रचलित है। इसके अन्य नाम हैं-१.शुद्द द्वैताद्वैत, माहेश्वराद्वैत,३.विशेषाद्वैत,४.शैवाद्वैत, ५ सर्व श्रुतिसार माता, ६.शक्तिविशिष्टाद्वैत, ७.वीरशैव। इस मत के आधार हैं-अगस्त्य का शाक्त सूत्र, त्रिपुरारहस्य औरब्रह्मसूत्र भाष्य(शैव मत अनुसार)।

६.नन्दिकेश्वर शैव सिद्धान्त-नन्दिकेश्वर ने ध्यान में शिव के डमरू से १४ सूत्र सुने जिनकी व्याख्या तन्त्र और व्याकरण के अनुसार हुयी। इसी माहेश्वर सूत्र के आधार पर पाणिनि के संस्कृत व्याकरण के ८ अध्यायों में ४,००० सूत्र हैं। नन्दिकेश्वर काशिका में सांख्य दर्शन के २५ तत्त्व सहित शिव, शक्ति, ५ प्राण, ३ गुण और ईश्वर मिलाकर ३६ तत्त्व कहे गये हैं। उसीकी व्याख्या है उपमन्यु की तत्त्वविमर्शिनी (कश्मीर-ई.पू. चतुर्थ शताब्दी)।

७.रसेश्वर शैव सिद्धान्त-यह रसायन विज्ञान का सिद्धान्त है। पारद तथा अभ्रक के प्रयोग से शरीर को दीर्घजीवी करने की विधि का इसमें वर्णन है। इसका मूल आधार ऋग्वेद का परिशिष्ट श्रीसूक्त है। आधुनिक काल में व्यास (३,४०० ई.पू.) के पुत्र शुकदेव के शिष्य गौड़पाद (प्राय: १५०० ई.पू.) ने इसका प्रचार किया। उनके शिष्यों में बौद्ध नागार्जुन और शङ्कराचार्य (५०९-४७६ ई.पू.) के गुरु गोविन्दपाद प्रसिद्ध हैं। इस सिद्धान्त का वर्णन इन पुस्तकों में है-वाग्भट संहिता, रसार्णव तन्त्र, प्रश्नोपनिषद्, रस महोदधि आदि।

८. काश्मीर शैव सिद्धान्त- इसका मुख्य आधार शंकर के समकालीन (५०० ई.पू.)

अभिनवगुप्त का ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी तथा तन्त्रालोक है जिनकी व्याख्या राजानक जयरथ ने की है।
अन्य शैव सम्प्रदायों कापालिक और कालामुखका साहित्य उपल ब्ध नहीं है।
३.शाक्त-आगम-इसमें शिव तत्त्व को पाने के लिये शक्ति को आधार बनाया जाता है। विद्या के २ भेद हैं-विद्या और अविद्या या परा (शुद्ध) विद्या तथा अपरा (व्यावहारिक) विद्या। अपरा विद्या के १० रूप ही देवी के १० महाविद्या रूप हैं। शिव के ५ मुख विश्व के ५ आयाम हैं-प्रति आयाम रेखा के २ छोर हैं। ५ आयामों की १० सीमा के रूप में १० महाविद्याओं की ५ पूरक जोड़ी है-
१.काली-बगलामुखी, २.तारा-कमला, ३.त्रिपुरसुन्दरी-त्रिपुरभैरवी,
४.भुवनेश्वरी-धूमावती, ५.छिन्नमस्ता-मातंगी।
महाविद्याओं के प्रतीकात्मक गुण हैं-
१.काली-प्रचण्ड शक्ति। २.तारा-शब्द शक्ति। ३.त्रिपुर सुन्दरी-सौन्दर्य, आनन्द। ४.भुवनेश्वरी-द्रष्टा शक्ति। ५.छिन्नमस्ता-संहार,मारण। ६.धूमावती-मूढ़ अवस्था। ७.७.बगलामुखी-स्तम्भन शक्ति। ८.कमला-संयम शक्ति। ९.मातंगी-क्रीड़ा शक्ति। १०.भैरवी-पुण्य शक्ति।
साधना भेद-परा साधना में उच्च कोटि के देवताओं की साधना होती है। उससे सिद्धि मिलती है किन्तु मुख्य लक्ष्य है इच्छा की समाप्ति। मध्यम कोटि के देवताओं की साधना को अपरा साधना कहते हैं- इससे व्यक्ति की इच्छा के अनुसार वर मिलता है। आकांक्षा शुद्ध होने पर व्यक्ति की उन्नति होती है, नहीं तो पतन होता है। निम्न साधना से निम्न कोटि के देवताओं-भूत, बेताल, पिशाच, योगिनी आदि की पूजा होती है। यह आध्यात्मिक मार्ग में बाधा है।
३ प्रकार के **साधना मत** हैं-
कौल या शाक्त-कुल या वंश का अर्थ बांस होता है। भागवत पुराण माहात्म्य में शरीर में ७ चक्र वाले मेरुदण्ड को ७ गांठ का बांस कहा गया है। १-१ गांठ को भेद कर ७ स्तरों के बाद मुक्ति मिलती है। शाक्त मत में शक्ति को कुण्डलिनी कहा जाता है जो कुल मार्ग से उठकर ७ चक्रों को भेदती हुयी सहस्रार में परमशिव से मिल जाती है। कुल मार्ग के प्रणेता आचार्य अल्लक या भालरत्न थे। उनके अनुयायिओं को कौल या शाक्त कहते हैं। कौल साहित्य में आर्णव, यामल, निर्णय आदि अनेक प्रकार के संहिता और ग्रन्थ हैं जिनकी संख्या ६४ या १०० है। उनमें मुख्य हैं-

कौल निर्णय, कौल तन्त्र, कुलार्णव तन्त्र।
२.मिश्र मत-सांख्य दर्शन का आधार ऋग्वेद, श्वेताश्वतर उपदिषद् का सूक्त है-अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णाम् .... । अर्थात् प्रकृति एक है, किन्तु उसके ३ गुण या रंग के अनुसार ३ रूप हैं-
कृष्ण-काली।
शुक्ल-तारा।
लोहित-श्रीविद्या, षोडशी या त्रिपुर सुन्दरी।
अज या विराट् पुरुष के भी ३ रूप हैं-कृष्ण या विष्णु, ब्रह्मा और शिव। ३ शक्ति रूपों के ३ मन्त्र या विद्या हैं-
कादि विद्या (क से मन्त्र का आरम्भ)- क ए ई ल ह्लीं-काली।
हादि विद्या-ह स क ह ल ह्लीं-त्रिपुर सुन्दरी।
सादि विद्या- स क ल ह्लीं-तारा।
कादि विद्या का बंगाल, हादि विद्या का कश्मीर तथा सादि विद्या का तिब्बत में अधिक प्रचार था, अतः इन्हें उत्तर आम्नाय (आमना-सामना) कहते हैं।
३.समय मत-यह ब्रह्मवादी आचार का वर्ग है। इसकी ५ मुख्य संहितायें हैं-वसिष्ठ संहिता, शुक संहिता, सनत संहिता, सनन्दन संहिता तथा सनत्कुमार संहिता। प्रमुख ग्रन्थ है- शुभागम पञ्चक।
दस महाविद्याओं के अलग-अलग मन्त्र हैं, उनकी उपासना चन्द्रमा की राशि के अनुसार होती है। इनके मन्त्र, रूप, ग्रन्थ निम्न लिखित हैं-
१.काली-स्पर्शमणि, चिन्तामणि, सन्ततिप्रदा, सिद्धिदा, गुह्य, हंस, दक्षिण और भद्रकाली रूप। क्रीं बीज। मन्त्र-क्रीं क्रीं क्रीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं हूं हूं।
कामकला काली के ११ साधक हैं-इन्द्र, वरुण, कुबेर, ब्रह्मा, महाकाल, बाण, रावण, यम, चन्द्र, विष्णु और महर्षिगण।
इसके प्रायः ३० ग्रन्थ हैं जिनमें मुख्य हैं-महाकाल संहिता, २ खश्डों में कामकला तथा गुह्यकाली खण्ड।
२.तारा-६ रूप-उग्रतारा, नीलसरस्वती, एकजटा, शुक्लतारा, नीलतारा, और चित्रा। ॐ बीज। ॐ ह्लीं ह्लीं हुं फट्।
इसके प्रायः २६ ग्रन्थ शास्त्र और संहिता हैं-तारा तन्त्र, नील सरस्वती तन्त्र आदि।
३.षोडशी-इसे त्रिपुर सुन्दरी या कामेश्वरी भी कहते हैं। इसके ३ रूप हैं-बाला,

सुन्दरी और भैरवी। बाला, कुमारी और युवती रूप सत्त्व, रज और तम गुण के प्रतीक हैं। तीन कूटों के अलग-अलग बीज मन्त्र हैं-वाग्भव कूट-ऐं। कामराज कूट-क्लीं। शक्ति कूट-सौः ।षोडशी मन्त्र के ३ भाग कादि, हादि, सादि इन ३ कूटों के मन्त्र हैं। इसका यन्त्र श्री यन्त्र सृष्टि का प्रतीक है। तीन विद्याओं के ग्रन्थ हैं-
कादि विद्या-त्रिपुरोपनिषद्, भावनोपनिषद्।
हादि विद्या-त्रिपुरतापिनी उपनिषद्।
सादि विद्या-तन्त्रराज तन्त्र, मातृकार्णव तन्त्र, योगिनी हृदय तन्त्र, त्रिपुरार्णव तन्त्र।
४.भुवनेश्वरी-सांख्य दर्शन की प्रकृति, वेद की अदिति। बीज-ह्रीं। ग्रन्थ-भुवनेश्वरी रहस्य, भुवनेश्वरी स्तोत्र, भुवनेश्वरी पारिजात।
५.त्रिपुर भैरवी-यह त्रिपुर सुन्दरी का प्रकट रूप है। इसके ३ कूटों के बीज मन्त्र हैं-ह्स्रैं, ह्स्क्लृं, ह्स्श्रौः। यह ३ मन्त्र ब्रह्म ग्रन्थि (मूलाधार, स्वाधिष्ठान), विष्णु ग्रन्थि (मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि) तथा रुद्र ग्रन्थि (आज्ञा, सहस्रार) के मन्त्र हैं। ग्रन्थ-त्रिपुर भैरवी तन्त्र, त्रिपुर भैरवी यामल, त्रिपुर तापिनी तन्त्र।
६.छिन्नमस्ता-परशुराम की माता रेणुका, प्रचण्ड चण्डी। ३ ग्रन्थि या संकल्प, क्रिया, फल रूपी कर्म बन्धन के वृक्ष को काटने वाली शक्ति। बीज-हं या हूं। मन्त्र-सा अजया सोऽहं।
ग्रन्थ-शक्तिसंगम तन्त्र, छिन्नमस्ता हृदय, छिन्नमस्ता खण्ड।
७.धूमावती-योगमाया, तमस (कालरात्रि या मोहरात्रि), अविद्या। बीज-धूं। मन्त्र-धूं धूं धूमावती फट् स्वाहा। ग्रन्थ-धूमावती तन्त्र, प्राणतोषिणी तन्त्र।
८.बगलामुखी-स्तम्भन शक्ति। बीज-ह्लृं। संख्यायन तन्त्र, बगलामुखी तन्त्र, शाक्त प्रमोद, बगलाक्रम कल्पवल्ली।
९.मातंगी-वाग्वादिनी, मन्त्रिणी, सुमुखी, महापिशाचिनी। बीज-हीं, हूं। मातंगी तन्त्र, मातंग हृदय, शाक्त प्रमोद, मातंगी सहस्रनाम।
१०. कमला-लक्ष्मी। बीज-श्री। तन्त्रसार, शारदातिलक, कमलात्मिका तन्त्र।
४.सौर तन्त्र-सूर्य विष्णु का वह रूप है जिससे सृष्टि का पालन होता है। सौर पूजा का वर्णन साम्ब पुराण में है। कृष्ण के पुत्र साम्ब ने कुष्ठ रोग दूर करने के लिये ओड़िसा के कोणार्क में सूर्य पूजा की थी। रामायण लंकाकाण्ड में रावण को परास्त करने के लिये अगस्त्य ने राम को आदित्य हृदय कवच दिया था। सूर्य से शक्ति प्राप्त करना ही छान्दोग्य उपनिषद् की मधुविद्या है। सौर तन्त्र के मूल ग्रन्थ-

तन्त्र ग्रन्थ-३०, तत्त्व ग्रन्थ-९६, संहिता-४, उपसंहिता-२, पुराण-५, कल्प-१०, डामर-२, यामल-२, उड्डीश तन्त्र-२, उड्डाल तन्त्र-२, कक्षपुटि-२, विमर्शिनी-३, चूड़ामणि-५, अवतार-२, अमृत-३, दर्पण-३।

सौर शक्ति तन्त्र को गायत्री तन्त्र भी कहा जाता है। सूर्य से जो शक्ति निकलती है वह सावित्री है, जो पृथ्वी को या हमें प्राप्त होती है वह गायत्री है। गायत्री छन्द में ८-८ अक्षरों के ३ पाद या ६ अक्षरों के ४ पाद होते हैं। गायत्री मन्त्र के ऋषि विश्वामित्र है, देवता सविता या सूर्य। मूल मन्त्र है- ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ के बाद ३ या ७ व्याहृति (लोकों का नाम) लगाते हैं-३ व्याहृति-भू,भुवः,स्वः।

७ व्याहृति- भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः,सत्यः।

ग्रन्थ-गायत्री स्तोत्र, गायत्री रहस्य, गायत्री तन्त्र।

सौर तन्त्र में सूर्यपुत्र यम तथा शनि की भी पूजा होती है।

५.गाणपत्य तन्त्र-८४ लाख योनियों को गण तथा उसके स्वामी को गणपति कहा जाता है। बीज मन्त्र-गं। आज्ञा चक्र (भ्रूमध्य के पीछे) गुरु और गणपति की धारणा की जाती है। इससे सम्बन्धित ५० तन्त्र, २५ उपतन्त्र, २ पुराण, १ डामर, तथा ८ पाञ्चरात्र हैं।

६.बौद्ध तन्त्र-गुह्य समाज तन्त्र, साधनमाला, तथागत गुह्यक, कुदृष्टि निर्यातन, तत्त्व रत्नावली, चतुर्मुद्रा, प्रज्ञोपाय, विनिश्चय सिद्धि, ज्ञान सिद्धि।

जैन तन्त्र-ज्वालिनी मत, विद्यानुशासन, भैरव पद्मावती कल्प, नमस्कार मन्त्र कल्प, काम चाण्डालिनी कल्प, प्रतिष्ठा कल्प, सरस्वती मत कल्प।

१५.प्राकृत विद्या-आगम और निगम के संयोग द्वारा ४ प्रकार के विद्या विभाग हैं। उसमें प्रत्येक के २ खण्ड तथा प्रति में ४ विद्या हैं। इस प्रकार ६४ प्राकृत (निगम+ आगम) विद्या हैं।

१. मनो विद्या-१.योग विद्या (८), २. दिव्य दृष्टि विद्या (८)।

२. ज्ञानेन्द्रिय विद्या-१.तपो विद्या (८), २.देवबल विद्या (८)।

३.कर्मेन्द्रिय विद्या-१.कर्मेन्द्रिय विद्या (८), २. आगम मन्त्र विद्या (८)।

४.भूत विद्या-१.महौषधि विद्या (८), २.यन्त्र विद्या (८)।

मनो विद्या

योगसिद्धि (मन का संयम)	**दिव्य दृष्टि** (इन्द्रिय संयम)
१.अणिमा	९.भूत भविष्य, जन्मान्तर ज्ञान
२.महिमा	१०. दूर, परोक्ष ज्ञान
३.गरिमा	११. सर्व भूत रुत ज्ञान
४.लघिमा	१२.मनोविज्ञान
५.प्राप्ति	१३. भूगर्भ ज्ञान
६.प्राकाम्य	१४.भुवन ज्ञान
७.ईशित्व	१५.ओषधि प्रभाव ज्ञान
८.वशित्व	१६.तारा ज्योति प्रभाव ज्ञान

ज्ञानेन्द्रिय विद्या

तपोबल (हृदय संयम)	**देव बल** (प्राण संयम)
१७.देव साक्षात्कार-छाया पुरुष	२५. काय व्यूह
१८.वल्गा कृत्या	२६. परकाया प्रवेश
१९.आत्मोत्क्रम साक्षात्कार	२७.प्राणहारिणी
२०.मृत पुरुष साक्षात्कार	२८.मृतसंजीविनी
२१.विश्वरूप दर्शन	२९.स्थाणु संजीविनी
२२.माया विमोहन	३०.छाया निग्रहिणी
२३.उपश्रुति विद्या	३१.आकृति परिवर्त्तिनी
२४.संस्कारोपधानी	३२.लिङ्ग परिवर्त्तिनी

निगम मन्त्र ← कर्मेन्द्रिय विद्या → आगम मन्त्र

३३.सर्वाकिर्षिणी	४१.मारण
३४.अग्नि जल स्तम्भिनी	४२.मोहन
३५.अक्षय करणी	४३.उच्चाटन
३६.निग्रहानुग्रहिणी	४४.वशीकरण
३७.सूत्रेष्टि	४५.विद्वेषण
३८.जलवर्षिणी	४६.स्तम्भन
३९.आपोनप्त्रीय	४७.आकर्षण
४०.मधुविद्या	४८. संरक्षण

भूत विद्या

महौषधि बल	**मन्त्र बल**
४९.मृतसंजीविनी	५७.दिव्य विमान-त्रिचक्र रथकार
५०.संजीवन करणी	५८.पुष्पक विमान-हंस रथ-बढ़नेवाला
५१.विशल्य करणी	५९.सौभ विमान-नगराकार
५२.सावर्ण्य करणी	६०.सूत विमान-नौकाकार
५३.सन्धान करणी	६१.हर्यश्व विमान-घोड़ा समान
५४.अरिष्ट भैषज्या	६२.प्लव विमान-पक्षी आकार
५५.डिम्भ प्रसविनी	६३.अमृतगवी-विश्व रूपा
५६.बला-अतिबला	६४.शिला सन्तरणी

शस्त्रास्त्र विद्या-दिव्यास्त्र

१.दैवास्त्र	**२.मौनास्त्र**	**३.भौतास्त्र**	**४.कर्मास्त्र**
१.ब्रह्मशिर	१७.स्कन्दास्त्र	३३.मकरास्त्र	४९.उन्मादास्त्र
२.ब्रह्मास्त्र	१८.प्रमथास्त्र	३४.सौपर्णास्त्रि	५०.स्तम्भनास्त्र
३.पाशुपत	१९.वैनायक	३५.भारुण्डास्त्र	५१.कल्पास्त्र
४.वैष्णव	२०.कूष्माण्डास्त्र	३६.उलूकास्त्र	५२.जृम्भणास्त्र
५.वारुणास्त्र	२१.गणास्त्र	३७.गालणास्त्र	५३.जम्भकास्त्र
६.नारायणास्त्र	२२.गान्धर्वास्त्रि	३८.कालकूटास्त्र	५४.मूर्च्छास्त्रि
७.ऐन्द्रास्त्र	२३.राक्षसास्त्र	३९.चाक्रास्त्र	५५.निमीलनास्त्र
८.प्राजापत्य	२४.पैशाचास्त्र	४०.ऐषीकास्त्र	५६.उत्पातास्त्र
९.आग्नेय	२५.भौतास्त्र	४१.बलास्त्र	५७.प्रस्वापास्त्र
१०.वायव्य	२६.वैतालास्त्र	४२.अतिबलास्त्र	५८.ज्वरास्त्र
११.कौबेर	२७.शरभास्त्र	४३.औदुम्बरास्त्र	५९.भ्रामकास्त्र
१२.पार्जन्य	२८.ताक्ष्र्यास्त्रि	४४.राजसास्त्र	६०.अचेतास्त्र
१३.त्वाष्ट्रास्त्र	२९.शाबरास्त्र	४५.हैमनास्त्र	६१.मोहनास्त्र
१४ .कालास्त्र	३०.भैरवास्त्र	४६.पाषाणास्त्र	६२.वैद्युतास्त्र
१५.याम्यास्त्र	३१.मातङ्गास्त्र	४७.गुह्यास्त्र	६३.तिमिरास्त्र
१६.दानवास्त्र	३२.नागास्त्र	४८.गौरास्त्र	६४.तमसास्त्र

शस्त्र

मन्त्रप्रहार भूतप्रहार

मन्त्रायुध मन्त्रमुक्त शस्त्र (१८ लौकिक शस्त्र)

सप्तशती में मधुविद्या(३/३८) तथा मन्त्र आयुध का वर्णन है-हुङ्काराभिहतां (३/१२), हुङ्कारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः(६/१३)।

मन्त्रायुध तथा मन्त्रमुक्त शस्त्र को दिव्यास्त्र कहा जाता है। इसके ४ वर्ग हैं-दैवास्त्र, यौनास्त्र, भौतास्त्र, कर्मास्त्र। प्रतिवर्ग में १६-१६ तथा कुल ६४ दिव्यास्त्र हैं। वाल्मीकि रामायण में ५० दिव्यास्त्र तथा ५० दिव्यास्त्र संहार का वर्णन है।

लौकिक अस्त्र देवी देवताओं के आयुध के रूप में उनकी विभिन्न प्रकार की शक्ति के प्रतीक हैं। १८ अस्त्र हैं-

१.खड्ग-ढाल सहित, २.धनु शर, ३.परिघ-कालदण्ड, ४.पट्टिश, ५.तोमर, ६.कुन्त, ७.खेट, ८.गदा, ९.परशु, १०.चक्र, ११.शूल, १२.शक्ति, १३.मुद्गर, १४.पाश, १५.मुसल-हल, १६.भिन्दिपाल, १७. छुरिका, १८.शतघ्नी-भुशुण्डि।

वैश्य विद्या, शिल्प

६४ विद्या ब्राह्मणों के लिये, ६४ दिव्यास्त्र क्षत्रियों के लिये तथा ६४ कला शूद्र के लिये हैं। इसी प्रकार सारे समाज के पोषण के लिये वैश्यों की कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य विद्या का विस्तार है। उसके कई अंश विभिन्न पुराणों में मिलते हैं। शिल्प का अर्थ है विभिन्न प्रकार के यन्त्र, गृह, उपकरण, आदि का निर्माण। वर्त्तमान युग में इसे इञ्जीनियरिंग कहा जाता है।

******

अध्याय-४

तत्त्व-समास

१.सांख्य का प्रणयन-सांख्य दर्शन के प्रवर्त्तक कपिल तथा योग के प्रवर्त्तक हिरण्यगर्भ माने जाते हैं। महाभारत शान्ति पर्व(३४९/६५) में-

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्यः पुरातनः ।।

गीता (१०/२६) में भगवान कृष्ण ने कहा है-सिद्धानां कपिलो मुनिः। भागवत के अनुसार विन्दु सर तट पर महर्षि कर्दम और उनकी पत्नी देवहूति के पुत्र के रूप में भगवान ने कपिल अवतार लिया। पृष्ठ ५७ पर व्यास गणना में १२ वें व्यास अत्रि के समय सांख्य अत्रि हुये थे जब सांख्य दर्शन प्रायः ८,५०० ई.पू.में स्थापित हो चुका था। सगर का समय प्रायः ६,७६० ई.पू. है जब प्रथम यवन आक्रमण-कारियों को भगाया गया था (मेगास्थनीज)। सांख्य दर्शन उस समय निश्चय था। कपिल ने उस काल में सांख्य सूत्रों का निर्माण किया तथा बाद में उनकी परम्परा के अन्य ऋषि ने सगर पुत्रों को जलाया। सगर ने यवनों को दण्ड देने के लिये यवनों की ५ शिखा कर दी थी। कपिल के शिष्य पञ्चशिख और आसुरि प्रायः उनके समकालीन थे। पञ्चशिख का अर्थ ५ शिखा या ५ पर्वा सांख्य दर्शन है। कपिल को सिद्ध कहा गया है। सूर्यसिद्धान्त (१२/३७-४२) के अनुसार सिद्धपुर उज्जैन से १८०° पूर्व है। वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड (४४/३३) के अनुसार वहां लाल रंग के शोण नद के निकट सिद्ध निवास करते हैं तथा (४४/६४) के अनुसार पूर्व दिशा की सीमा पर ब्रह्मा ने पर्वत पर द्वार बनाया था। यह मेक्सिको का पिरामिड है। उसके निकट कैलिफोर्निया कुछ लोगों के मत से कपिलारण्य है। भारत का गंगासागर वहां तक जाने का समुद्री मार्ग मात्र है। सगर पुत्र वहां से पाताल(अमेरिका) तक गये थे। भगवद्दत्त ने ऐतिहासिक प्रमाणों से प्रायः ११,००० वर्ष पहले कपिल का समय माना है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार इक्ष्वाकु वंशीय शाक्य राजा ने अपनी राजधानी कपिलवस्तु वहीं स्थापित की थी जहां कपिल तपस्या कर चुके थे।

कपिल का तत्त्व समास केवल २२ या २५ सूत्रों का है जिसका उपदेश उन्होंने आसुरि को दिया था। इसकी ५ व्याख्यायें उपलब्ध हैं-श्री षिमानन्द(क्षेमानन्द)-सांख्य-तत्त्व-विवेचनम्।भावागणेश-सांख्य-तत्त्व-या़ार्थ्य-दीपनम्। अज्ञात लेखक-

सर्वोपकारिणी वृत्ति, सांख्य-सूत्र-विवरणम्, क्रमदीपिका। कपिल का बड़ा सूत्र ग्रन्थ सांख्य षडाध्यायी या कपिल सांख्यसूत्र कहा जाता है। इसमें ६ अध्याय तथा १६४+४७+८४+३२+१३०+७१=५२८ सूत्र हैं। इस पर ४ व्याख्यायें प्रसिद्ध हैं- १.अनिरुद्ध की वृत्ति, २.महादेव का वृत्तिसार, ३.विज्ञानभिक्षु का सांख्य-प्रवचन-भाष्य, ४.नागेश भट्ट का भाष्य-सार या लघु-सांख्य-वृत्ति।

आसुरि का कोई ग्रन्थ या उद्धरण नहीं मिलता। पञ्चशिख मुनि के उपदेशों कावर्णन (जनक को) नारद पुराण तथा महाभारत शान्तिपर्व में मिलता है। इनका षष्टितन्त्र ईश्वरकृष्ण ने कहा है। चीन की पुस्तकों के अनुसार इसमें ६०,००० श्लोक थे। इसमें ६० परिच्छेद या विषयों का वर्णन होने से भी सम्भवत: इसे षष्टितन्त्र कहते थे। कुछ लोग इसे वर्षगण्य की कृति मानते हैं। इसका श्लोक वर्षगण्य के नाम से व्यास के योगदर्शन भाष्य में है। पञ्चशिख के नाम से अन्य श्लोक या सूत्र व्यासभाष्य में, वाचस्पति मिश्र की भामती, महाभारत, युक्तिदीपिका में उद्धृत हैं।

इसके बाद ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका या सांख्य-सप्तति ७० श्लोकों में षष्टितन्त्र के आधार पर लिखी। य षडध्यायी के ५२८ सूत्रों का भी संक्षेप है। सरल तथा स्पष्ट होने के कारण इसी को कई लोग मूल सांख्य दर्शन मानते हैं तथा माधवाचार्य, वाचस्पति मिश्र आदि ने इसी का उद्धरण दिया है। षडध्यायी से इसका समन्वय इस प्रकार है-

अध्याय विषय	**कपिलसूत्र**	**ईश्वरकृष्ण कारिका**
१.सांख्यशास्त्र विषय	१६४	१-२०
२.पुरुष से सृष्टि	४७	२१-३७
३.महाभूत, स्थूल सूक्ष्म शरीर	८४	३८-६८
४.उदाहरण	३२	--
५.आक्षेपों का उत्तर	१३०	--
६.शिष्यों का सन्देह समाधान	७१	६९-७०

इसकी प्रमुख टीकायें हैं-(१) माठर वृत्ति सबसे प्राचीन है। (२) इसके बाद शङ्कराचार्य के परम गुरु गौड़पाद का भाष्य है। (३) गौतम की जयमङ्गला टीका। (४) वाचस्पति मिश्र की सांख्य-तत्त्व-कौमुदी। (५) युक्तिदीपिका, (६) चन्द्रिका।

इन ग्रन्थों के अनुसार सांख्य दर्शन के आचार्य हैं-कपिल, आसुरि, पञ्चशिख, जैगीषव्य, वर्षगण्य, विन्ध्यवासी (रुद्रिल), जनक, पराशर (बादरि ?), व्यास,

ईश्वरकृष्ण तथा आर्य (विज्ञानभिक्षु के अनुसार)। माठर वृत्ति के अनुसार अन्य आचार्य हैं-भार्गव, उलूक, वाल्मीकि, हारीत, देवल। युक्तिदीपिका के अनुसार-बाहलि, कैरात, पौरिक, ऋषभेश्वर, पञ्चाधिकरण, कौण्डिन्य तथा मूक। जयमङ्गला के अनुसार - गर्ग, गौतम।

इनके बाद विज्ञानभिक्षु का सांख्य-सार-विवेक, तथा भावागणेश का सांख्य-सार, सांख्यपरिभाषा तत्रथा सांख्य-तत्त्व-प्रदीपिका स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं।

२५ तत्त्वों की संख्या से सृष्टि उत्पत्ति के सिद्धान्त के कारण इसे सांख्य दर्शन कहा गया है। अन्य मत के अनुसार अक्षर पुरुष के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध-प्रत्येक में ४३२ कोटि बीज-पुरुषों की गणना के कारण इसे सांख्य दर्शन कहा गया है। मेरे मत से सृष्टि के अनन्त-प्राय तत्त्वों की संख्यात्मक या गणितीय व्याख्या (Statistical physics) के कारण इसे सांख्यदर्शन कहा जाता है। हरिभद्र सूरि के अनुसार संख का अर्थ पुरुष है जिसका वर्णन इस दर्शन में है। तिलक के गीता-रहस्य, पृष्ठ १८० के अनुसार सांख्य मत से २५ तत्त्वों की उत्पत्ति का क्रम निम्नलिखित है-

ब्रह्माण्ड का वंश-वृक्ष

१.पुरुष ———→(दोनों स्वयम्भू, अनादि)←———२.प्रकृति

(निर्गुण,पर्याय-ज्ञ,द्रष्टा ईश्वर)

(सत्त्व,रज,तमोगुणी, पर्याय-प्रधान, अव्यक्त,माया। प्रसव-धर्मिणी)

३.महान् या बुद्धि (व्यक्त और सूक्ष्म, पर्याय-आसुरी, मति, ज्ञान, ख्याति)

४.अहङ्कार (व्यक्त और सूक्ष्म,पर्याय-अभिमान,तैजस)

सात्त्विक अर्थात् व्यक्त और सूक्ष्म इन्द्रियां

५ ज्ञानेन्द्रियां ५ कर्मेन्द्रियां मन(५)

आंख कान नाक जीभ चर्म

६ ७ ८ ९ १०

वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ

११ १२ १३ १४ १५

तामस अर्थात् निरिन्द्रिय सृष्टि

५ तन्मात्रायें (सूक्ष्म)

५ विशेष या महाभूत (स्थूल)

शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध

आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी

(१६,१७) (१८,१९) (२०,२१) (२२,२३) (२४,२५)

प्रति महाभूत में एक एक तन्मात्रा या गुण बढ़ जाता है। आकाश में सिर्फ शब्द है।

वायु में शब्द के साथ स्पर्श भी है। रूप जोड़ने पर अग्नि भी हो जाता है। आधुनिक भाषा में शब्द का अर्थ तरङ्ग (Electromagnetic wave) है जो शून्य आकाश(Space) में जा सकता है। वायु का अर्थ गतिशील पदार्थ है जिसमें आन्तरिक गति या कम्पन के कारण ताप(Temperature) का अनुभव होता है। अधिक ताप होने पर प्रकाश निकलता है जो रूप गुण हुआ। रस गुण द्रवों की सतह का तनाव (Surface tension) या उनका गाढ़ापन (Viscosity) हुआ। गन्ध का अर्थ सूक्ष्म कणों की उपस्थिति है। महाभूत पृथिवी का अर्थ मात्रा (Mass) या भार (Weight) हुआ।

यहां पुरुष का अर्थ चेतन तत्त्व है जो जीवात्मा है तथा प्रत्येक शरीर मे भिन्न-भिन्न है। यह अनादि, सूक्ष्म है किन्तु सर्वज्ञ ईश्वर नहीं है। अत: सांख्य को निरीश्वर-सांख्य तथा सांख्य और योग को सेश्वर सांख्य कहते हैं। पुरुष के ही विराट् रूप को ईश्वर कहा जा सकता है। सभी वेदों का पुरुष सूक्त है-सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्। शीर्ष १ह्न१००० ह्न आंख २ह्न१००० ह्नपैर २ह्न१००० = ४ह्न १०^{९} पुरुष के भेद हुये। १०० को १०८ गिनने पर यह ४३२ कोटि होता है, जो ऊपर लिखा है।

२.तत्त्व-समास सूत्र-तत्त्व समास को सभी एक मत से कपिल का मानते हैं। सिर्फ इन सूत्रों के आधार पर सांख्य दर्शन नहीं समझा जा सकता है। यह सांख्य सूत्र में तत्त्वों की गिनती स्मरण रखने का ही सूत्र है। इसकी व्याख्या के लिये मूल सांख्य-सूत्रों, उनका संक्षेप ईश्वरकृष्ण की सांख्य-कारिका तथा सम्बन्धित दर्शनों योगसूत्र, योगवासिष्ठ, या वेदान्त-दर्शन का सहारा लेना पड़ता है। समास-सूत्रों के २ पाठ प्रचलित हैं जिनमें २२ या २६ सूत्र हैं, पर दोनों में वही शब्द हैं जो नीचे की सारणी से स्पष्ट हो जायगा।

२२ सूत्र	**२६ सूत्र**
१.अथातस्तत्त्व समास:	--२४.एतत् परम्परया याथातथ्यम्
२.अष्टौ प्रकृतय:	१.अष्टौ प्रकृतय:
३.षोडश विकारा:	२.षोडश विकारा:
४.पुरुष:	३.पुरुष:
५.त्रैगुण्यम्	४.त्रैगुण्य सञ्चार
६.सञ्चर: प्रतिसञ्चर:	५.प्रतिसञ्चार:

७.अध्यात्ममाधिभूतमाधिदैवं च	६.अध्यात्मम्, ७.अभूितम्, ८.अधिदैवम्
८.पञ्चाभिबुद्धय:	९.पञ्चाभिबुद्धय:
९.पञ्चदृग्योनय:	१०.पञ्चकर्मयोनय:
१०.पञ्चवायव:	११.पञ्चवायव:
११.पञ्चकर्मात्मान:	१२.पञ्चकर्मात्मान:
१२.पञ्चपर्वा अविद्या	१३.पञ्चपर्वा अविद्या
१३.अष्टाविंशतिधाऽशक्ति:	१४.अष्टाविंशतिधाऽशक्ति:
१४.नवधा तुष्टि:	१५.नवधा तुष्टि:
१५.अष्टधा सिद्धि:	१६.अष्टधा सिद्धि:
१६.दश मौलिकार्था:	१७.दश मूलिकार्था:
१७.अनुग्रह: सर्ग:	१८.अनुग्रह: सर्ग:
१८.चतुर्दशविधो भूतसर्ग:	१९.चतुर्दशविधो भूतसर्ग:
१९.त्रिविधो बन्ध:	२०.त्रिविधो बन्ध:
२०.त्रिविधो मोक्ष:	२१.त्रिविधो मोक्ष:
२१.त्रिविधं प्रमाणम्	२२.त्रिविधं प्रमाणम्
२२.एतत् सम्यग्ज्ञात्वा कृतकृत्य:स्यात् न पुनस्त्रिविधेन दु:खेनाभिभूयते।	२३.त्रिविधंदु:खम्
	२५.एतज्ज्ञात्वा कृतकृत्य: स्यात्
	२६.न पुनस्त्रिविधेन दु:खेनाभिभूयते।

यहां व्याख्या केलिये २२ सूत्रों का प्रयोग किया जायेगा तथा पाठ-भेद का उल्लेख होगा।

सूत्र-१.अथातस्तत्त्वसमास:

अन्वय-अथ अत: तत्त्व समास:।

यह विषय का प्रारम्भ है। २६ सूत्री पाठ में विषय की चर्चा २४ वें सूत्र में है-२४. एतत् परम्परया याथातथ्यम्।-अर्थात् परम्परा से सांख्य दर्शन में यही (तत्त्व) हैं।

शब्दार्थ-अथ=अर्थ+उ; इसमें र का लोप होने से अथ हुआ। इसका अर्थ यहां, अब =मङ्गल, आरम्भ अधिकार। ब्रह्मा के मुख से सृष्टि के आरम्भ में ॐ और अथ-ये दो शब्द निकले थे, अत: इन्हें मङ्गल का सूचक माना गया -

ॐकारश्चाथशब्दश्चद्वावेतौ ब्रह्मण: पुरा।
कंठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ।। (नारद पु.५१/१०)

यहां तत्त्व समास का आरम्भ हुआ, अतः अथ का व्यवहार हुआ।

इसका दूसरा अर्थ है-तब, उसके पश्चात्। सांख्य सूत्र में तत्त्वों की व्याख्या के बाद उनके स्मरण तथा संक्षेप में समझने के लिये यह अगला वर्णन है।

अतः-अतस्=इदम्+तसिल्=इस कारण से। अतः शब्द से अथ का दूसरा अर्थ, पश्चात् स्पष्ट होता है। पहले विस्तार से सांख्य-सूत्रों कावर्णन हुआ, अतः अब संक्षेप में हो रहा है।

तत्त्व-तत्त्व=तत्+क्विप्, लुक्-अर्थात् तत्+त्व। कभी-कभी त् का लोप कर तत्व भी लिखा जाता है। इसका अर्थ वास्तविक स्थिति, तथ्य, यथार्थ आदि है। संसार की वास्तविक स्थिति या तत्त्व दिखाना इस विषय का उद्देश्य है।

अथातः के बदले अन्य पाठ २४ वें सूत्र में है-

अथ+अतः=एतत् परम्परया=यह परम्परा के अनुसार।

तत्त्व=याथातथ्यम्=यथार्थ+तथ्य।

संसार के मूलभूत कारणों को तत्त्व कहा जाता है। मूल तत्त्व एक ही है जिसे आत्मा (मनुष्य की वास्त विक प्रकृति), परमात्मा या विराट् पुरुष (विश्व का वास्तविक रूप), मूल प्रकृति (सृष्टि का मूल स्रोत) आदि कहा जाता है।

जड़ और चेतन या पुरुष और मूल प्रकृति के रूप में दो तत्त्व विभाग हैं। गुण और क्रिया के अनुसार तीन प्रकार के तत्त्व हैं - सृष्टि, स्थिति, लय-या सत्त्व अर्थात् तेज और पदार्थ की स्थिति, रज अर्थात् गति और प्रकाश, तम अर्थात् अन्धकार, गतिहीनता। पुरुष और प्रकृति के तीन अवस्थाओं के योग से विराट् पुरुष के ६ आयाम (dimensions) हैं। चार्वाक दर्शन के अनुसार ४ भौतिक पदार्थ हैं-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु। यदि पदार्थहीन स्थान (आकाश) को मिलाया जाय तो ५ पदार्थ होते हैं।

३ गुणों के परस्पर मिश्रण से २ह्न२ह्न२=८, प्रकृति के ८ भेद होते हैं। तीन गुण सत्व, रज, तम हैं।

४ पदार्थों के परस्पर मिश्रण से $२^{४}$=१६ विकार हैं। या ४ आयामों के संसार के ४ह्न४ विकार जड़ प्रकृति में हुये। चेतन आत्मा का तत्त्व मिलाने से ५ पदार्थों के ५ह्न५=२५ तत्त्व विराट् पुरुष के हुये।

शैव दर्शन में शिव तत्त्व ६ आयाम के विराट् पुरुष या विष्णु का आवरण है। इसमें ५ शिव तत्त्व (३ शान्ति तथा २ शान्त्यातीत-शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या), माया तथा माया के ५ आवरण-ये ११ तत्त्व अधिक हैं। इस प्रकार ६ आयाम के विष्णु के अनुसार ६x६=३६ तत्त्व शैवदर्शन के हुये। ३ गुणों के ३-३ विभागों से ९ विभाग होते हैं ,जिनमें सीमावर्त्ती २ विभाग मिल कर ७ विभाग होते हैं। सत्व में सत्व, रज,तम तीन विभाग। इसी प्रकार रजस् तथा तम दोनों के सत्व,रज,तम; ३-३। सत्व-तम तथा रज-सत्व एक ही हैं। इसी प्रकार रज-तम तथा तम-सत्व एक ही हैं। इस प्रकार ७ विभाग हैं। अन्य मत है कि एक एक गुण से ३ भाग, २-२ गुणों के मिलन से ३ भाग तथा ३ गुणों के मिलन से १ भाग-कुल ७ भाग हैं। अत: वैशेषिक तथा अर्हत् दर्शनों में ७ तत्त्व या पदार्थ हैं। वैशेषिक में पदार्थ के २४ गुण यहां प्रकृति के ८ भेद या प्रकृति-विकृति के २४ भेद की तरह हैं-पदार्थ तथा प्रकृति दोनों जड़ हैं।

समास=सम+स्+घञ्। इसके अर्थ हैं-१.मिलन या मिश्रण, २.शब्द रचना या उनका मिलन। ३.संग्रह, संघात। ४. मतभेद दूर करना। ५.पूर्णता या समष्टि । ६. सिकुड़ना या संक्षेप। यहां समास के सभी अर्थ उपयुक्त हैं-

१.विश्व; पुरुष तथा प्रकृति के २५ तत्त्वों का मिश्रण है।

२.शब्दों से तत्त्वों तथा उनके गुणों, रूप सभी का वर्णन हो रहा है।

३.तत्त्वों का मिश्रण केवल एक साथ रहना ही नहीं, उनकी प्रतिक्रिया या संघात भी है।

४.सभी तत्त्व मिलकर एक ही पूर्ण ब्रह्म की व्याख्या करते हैं। उनका शुद्ध अलग स्वरूप नहीं है।

५.इस ज्ञान का अन्य दर्शनों से कोई भेद नहीं है।

६.यह मूल का संक्षेप है।

इस प्रकार तत्त्व समास का अर्थ हुआ तत्त्वों की संहति का वर्णन या सांख्य दर्शन का संक्षेप में वर्णन या सभी दर्शनों तथा ज्ञानों का समन्वय। तत्त्व का अर्थ ज्ञान भी है। प्रथम सूत्र का शाब्दिक अर्थ हुआ- विस्तार से सांख्य सूत्रों द्वारा सांख्य तथा सम्बन्धित दर्शनों का प्रसंगवश ज्ञान देने के बाद अब संक्षेप में तत्त्वों तथा ज्ञान का समन्वय बताया जा रहा है।

२. अष्टौ प्रकृतयः।

अष्टौ-अष्टन्=अंश+कानिन्, लुट् च। कर्म-अष्टौ। भेदों की संख्या ८।
प्रकृतयः-प्रकृति=प्र+कृ+क्तिन्। १.नैसर्गिक स्थिति, माया, जड़ -जगत्। २.स्वभाव, अभ्यास। ३.बनावट या रूप। ४.वंश परम्परा। ५.मूल स्रोत या मौलिक कारण, उपादान कारण (ब्रह्मसूत्र १/४/२३)। ६.पुरुष से भिन्न सृष्टि का स्रोत जिसके ३ प्रधान गुण हैं। ७.मूल धातु या शब्द। ८.आदर्श या नमूना। ९.स्त्री। १०.सृष्टि के लिये परमात्मा की इच्छा। ११. माता।

व्याख्या-प्रकृति का अर्थ है , जिसके बाद कोई नयी कृति या तत्त्व उत्पन्न हो। अर्थात् प्रकृति किसी का मूल कारण है। जिसके बाद कोई नया तत्त्व उत्पन्न न हो, वह प्रकृति का उल्टा विकृति है। मूल प्रकृति केवल प्रकृति है ,जिसे किसी ने उत्पन्न नहीं किया है,किन्तु उससे अन्य उत्पन्न हुये हैं। प्रकृति के अन्य भेद प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण विकृति हैं तथा अन्य तत्त्वों को उत्पन्न करने के कारण प्रकृति भी हैं।

प्रथम सूत्र में तत्त्व समास का उल्लेख है, अतः पहले तत्त्वों का वर्णन-प्रकृति और विकृति तथा उसके बाद पुरुष तत्त्व का वर्णन होगा जो इन सबके समास, समन्वय या परस्पर सम्बन्ध का कारण है।

प्रकृति निर्माण का उपादान कारण है, अर्थात् निर्माण के लिये जो जड़ वस्तुयें हैं, उनको प्रकृति कहते हैं। पांचवे सूत्र में इसके ३ गुणों का वर्णन है-सत्त्व, रज और तम। तीन गुणों के रहने से जड़- पदार्थ के ८ भेद होंगे। प्रत्येक पदार्थ में सत्त्व होगा या नहीं होगा, अतः प्रथम गुण के अनुसार २ भेद हैं। इसी प्रकार रज गुण से भी २ भेद या २ह्न२ भेद २ गुणों से होंगे। तीसरे तम गुण को मिलाने से २ह्न२ह्न२=८ भेद होंगे। ८ तत्त्वों में प्रति के ३-३ भेद होंगे जो अन्य तत्त्वों के उपादान कारण होंगे। वह प्रकृति के ही भेद होंगे जो किसी अन्य तत्त्व को उत्पन्न न कर स्वयं कार्य करेंगे। वह २ प्रकार के हैं -ज्ञान या सत्त्व रूप(ज्ञानेन्द्रिय) तथा क्रिया या रज रूप। तम गुण निष्क्रिय होने से उसका कोई भेद नहीं होता। इस प्रकार विकृति के ८ह्न२=१६ भेद हैं।

मूल प्रकृति में तीन गुणों की साम्यावस्था होने से कोई गुण नहीं दिखायी देता। उससे महान् तत्त्व उत्पन्न हुआ जिसमें सभी गुण दीखते हैं, किन्तु विषम होने के कारण एक दूसरे को सन्तुलित नहीं कर नष्ट नहीं करते। महान् या महत् के ३ भेद हैं- तामस अहङ्कार में तम अधिक होने से कोई क्रिया नहीं होती और वह उपादान

रूप में प्रकृति तत्त्व ही रह जाता है। इसके ५ भेद ५ तन्मात्रायें कहलाती हैं-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। इस प्रकार प्रकृति, महत्, अहङ्कार (तामस) तथा ५ तन्मात्रायें-ये ८ प्रकृति के भेद हुये।

सात्विक और राजस अहङ्कार से जड़ तत्त्वों के १६ भेद प्रकट होते हैं, जो सिर्फ विकृति हैं, प्रकृति नहीं। इनका वर्णन अगले सूत्र में है।

३. षोडश विकाराः।

शब्दार्थ-षोडश=यास्क के अनुसार- दश दस्ता इष्टार्था वा। अर्थात् जिस अङ्क पर संख्या पूरी हो जाती है, उसे दश कहते हैं। ष=सो+क=सर्वोत्तम। शः=हानि,विनाश, अन्त, अवशिष्ट। अतः षोडश=षः+दश=जिसके बाद और किसी तत्त्व का निर्माण नहीं हो, जहां प्रकृति का कार्य पूर्ण या अन्त हो गया। किसी तत्त्व की पूर्णता उसके विकास का अन्त है, अतः उसे उस तत्त्व की १६ कला कहते हैं। अतः षोडश का संख्यावाचक अर्थ १६ है। उणादि १/१५६ के अनुसार-दसु उपक्षये, कनिन्। अर्थात् दसु का अर्थ नाश है। इस प्रकार दश= दसु+कनिन्=नाश या पूर्णता। षः तथा दश-दोनों ही तत्त्व निर्माण क्रिया की पूर्णता और अन्त बताते हैं जिसे विकार कहा जाता है।

विकाराः-विकारः का बहुवचन। विकारः=वि+कृ+घञ्। इसके शाब्दिक अर्थ हैं- १.रूपान्तरण, प्रकृति का बदलना, २.परिवर्तन, सुधार, ३.बीमारी, ४. मन या अभिप्राय का बदलना। ५.भावना, ६.विक्षोभ, ७,विकृत रूप, सिकुड़ना, ८.सांख्य की परिभाषा- जो पूर्व स्रोत या प्रकृति से विकसित हो।

व्याख्या-महत्तत्त्व तम से मिल कर अहंकार बनाता है जिसके भेद ५ तन्मात्रायें हैं। इनका वर्णन पिछले सूत्र में हो चुका है। वह सत्त्व तथा रज के समन्वय से मिलकर मन का निर्माण करता है। सिर्फ सत्त्व तथा महत् मिलकर ५ ज्ञानेन्द्रियां तथा रज और महत् मिलकर ५ कर्मेन्द्रियां उत्पन्न करते हैं। इसमें सत्त्व तथा रज का योग हो चुका है। पुनः तम का योग होने पर इनमें निष्क्रियता के कारण कोई नया तत्त्व नहीं उत्पन्न होता। तामस अहंकार की ५ तन्मात्राओं से रजोगुण के कारण ५ महाभूत उत्पन्न होते हैं।

गुण संयोग	**वायु**	**ज्ञानेन्द्रिय**	**कर्मेन्द्रिय**	**महत्तत्त्व**	**तन्मात्रा**
सत्त्व प्रधान	प्राण	कर्ण	वाक्	आकाश	शब्द
रजः प्रधान	उदान	त्वक्	पाणि	वायु	स्पर्श

रज: प्रधान	व्यान	चक्षु	पाद	तेज:	रूप
रजस्तमस प्रधान	समान	जिह्वा	उपस्थ	अप्	रस
तम: प्रधान	अपान	नासा	पायु	पृथिवी	गन्ध

४.पुरुष:

पुरुष:-पुरि देहे शेते स: पुरुष: । अर्थात् पुर में जो रहता है वह पुरुष है । पुर् का अर्थ भी यही है-पुमान् रमति यस्मिन्-अर्थात् पुरुष जिसमें रहता है वह पुर है ।इन समास रूप व्याख्याओं का कोई स्पष्ट अर्थ नहीं होता है । विराट् पुर या विश्व में जो चेतन तत्त्व है वह पुरुष है । उसी प्रकार छोटे शरीर का भी चेतन तत्त्व पुरुष है । विराट् पुरुष एक ही है, अन्य पुरुष कई हैं । पुरुष की सभी परिभाषायें इस श्लोक में हैं-
पुंसंज्ञे तु शरीरेऽस्मिन् शयनात्पुरुषो हरिः । शकारस्य षकारोऽयं व्यत्ययेन प्रयुज्यते ।
यदा पुरे शरीरेऽस्मिन्नास्ते स पुरुषो हरिः । यदि वा पुरुवासीति पुरुष: प्रोच्यते हरिः ।
यदि वा पूर्वमेवासमिहेति पुरुषं विदुः । यदि वा बहु दानाद्वै विष्णु पुरुष उच्यते ।
पूर्णत्वात्पुरुषो विष्णु: पुराणत्वच्च शार्ङ्गिणः । पुराणभजनाच्चाति विष्णु: पुरुष ईर्यते
यद्वा पुरुष शब्दोऽयं रूढ्या वक्ति जनार्दनम् ।(पाद्मपुराण)

व्याख्या-१.प्रकृति-विकृतिहह इन गुणों के अनुसार ४ प्रका र के तत्त्व हैं-

न प्रकृति, न विकृति- पुरुष - दोनों अनादि, अनन्त,सर्वव्यापी ।
सिर्फ प्रकृति - मूल प्रकृति।
प्रकृति+विकृति- प्रकृति के ७ भेद-महत्, अहङ्कार, ५ तन्मात्रा ।
सिर्फ विकृति - प्रकृति के १६ भेद-मन, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ ज्ञानेन्द्रिय, तथा ५ महाभूत ।

२.वेद तथा शिवसूत्र के तत्त्व-शिव आवरण तत्त्व है। ५ आयाम या विस्तार का शिव रूप विश्व(शिव=विश्वनाथ) ६ आयाम के विराट् पुरुष या विष्णु के जगत् (विष्णु=जगन्नाथ) का आवरण है। ३ आवरण की पृथ्वी का आवरण उसकी गोलाकार सतह है जो लम्बाई, चौड़ाई-इन दो आयामों की ही हैं। एक पूर्ण जगत् का आवरण शिव तथा ५ तन्मात्राओं तथा ५ महाभूतों के १० आवरण-इस प्रकार ११ शिव तत्त्वों के साथ शैव दर्शन में कुल ३६ तत्त्व हैं, जिसमें सांख्य के २५ तत्त्व शामिल हैं। स्वामी विष्णुतीर्थ ने इसकी व्याख्या ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (मण्डल १०, सूक्त१२९) के आधार पर की है।

अक्षर परब्रह्म-ना सदासीन्नो सदासीत्तदानीं, नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्।१।
न मृत्युरासीत् अमृतं न तर्हि, न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।

तत्त्व	कला	उन्मेष	सूक्त
शुद्ध तत्त्व		**प्रथम उन्मेष**	आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यं न परः
१.शिव	**शान्त्यतीता**	अध्यात्मभाव	किञ्चनास।२। तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे
२.शक्ति		अधिभूत भाव	ऽप्रकेतम् सलिल सर्व मा इदम्।
		द्वितीय उन्मेष	तुच्छ्येनाभ्यपिहितं यदासीत्, तपसस्सन्म-
३.सदाशिव		अहम्-इदं विमर्श	हिनाऽजायदेकम्।३। कामस्तदग्रे समवर्तताधि,
		तृतीय उन्मेष	
४.ईश्वर	**शान्ति**	अहम् विमर्श	मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
५.शुद्ध विद्या		इदम् विमर्श	

तत्त्व		कला		सूक्त
शुद्धाशुद्ध तत्त्व				सतोबन्धुमसति निरविन्दन् ,
६.माया				हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषाः।४।
७.काल	माया		असत्	तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा,
८.कला	के ५	**विद्या**	श्रीमद्भागवत्	मधः स्विदासी दुपरिस्विदासीत्।
९.नियति	कञ्चुक	**कला**	गीतोक्त	रेतोधा आसन् महि मान आसन्,
१०.विद्या			परा प्रकृति	स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्।५।
११.राग				
१२.पुरुष			जीवभाव (शिवसूत्रोक्त शांभव, शाक्त, आणव)	

अशुद्ध तत्त्व (अपरा प्रकृति) -३ जीवोन्मेष

तत्त्व		कला	सूक्त
१३.अव्यक्त-तीन गुणों की साम्यावस्था			को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्,
१४.महत् --- विषमावस्था			कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः।
१५.समष्टि अहङ्कार -- त्रिगुणात्मक			अवर्ग्देवा अस्य विसर्ज नेनाथ,
१६ --मन - सात्त्विक अहङ्कार से		**प्रतिष्ठा**	को वेद यत आबभूव।६।
१७-२१.५ज्ञानेन्द्रियां	राजस	**कला**	इयं विसृष्टिर्यत आबभूव,
२२-२६. ५कर्मेन्द्रियां	अहङ्कार से		यदि वा दधे यदि वा न।
२७-३१.५ तन्मात्रा-तामस अहङ्कार से			यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्
३२-३५.आकाश, वायु, अग्नि, आप			सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।७।

३६.पृथिवी-तामस-**निवृत्तिकला**-विमर्षाविमर्षो नाम विश्वाकारेण विश्व प्रकाशनेन विश्वसंहारेण वा अकृतयोऽहमिति स्फुरणम् ।।

कला और उन्मेष-ये शब्द शैव दर्शन के हैं और ऊपर की सूची में सांख्य दर्शन से अदिरोध होने के कारण इनका उल्लेख हुआ है।

कला-कल् धातु का शाब्दिक अर्थ-१.गिनना,२.शब्द करना (भ्वादि गण), चुरादिगण में-१.धारण करना,लेना,रखना,२.गिनना,हिसाब लगाना, ३.संभालना, ४.जानना, समझना, सोचना, ५. आदर करना, ६.सहन करना, प्रभावित करना, ७.सम्पादन करना, ८.जाना, आसक्त होना, लेटना, सज्जित होना,।

कला=कल्+अच्+टाप्।१.किसी वस्तु का छोटा खण्ड, टुकड़ा, लवमात्र, २. चन्द्रमा की एक रेखा, मूलधन पर व्याज, ४.समय का छोटा अंश(१/६० दण्ड), ५.कोण का छोटा भाग (राशि का ३०वां भाग अंश, अंश का ६०वां भाग कला), ६.प्रयोगात्मक कला, ७.कुशलता,मेधाविता, ८.जालसाजी, ९. छन्दशास्त्र में-मात्रा छन्द, १०.किश्ती, ११.रज:स्राव।

कला की तान्त्रिक व्याख्या-१. सभी परतन्त्र चीजें कार्य हैं। कार्य ३ प्रकार के हैं-जीव पशु कहलाता है, क्योंकि वह पाशबद्ध है। जीव के गुणों को विद्या कहते हैं। गुण सहित पृथ्वी आदि जड़ द्रव्यों को कला कहते हैं।

चेतन के अधीन रहने वाली कला के २ भेद हैं- कार्य के रूप में कला (विषय रूपा कला) तथा कारण के रूप में कला (इन्द्रिय रूपा कला) के १० भेद हैं-पृथ्वी आदि पञ्च तत्त्व (महाभूत) तथा रूप आदि ५ गुण (तन्मात्रा)। कारणाख्य कला के १३ भेद हैं-५ ज्ञानेन्द्रियां, ५ कर्मेन्द्रियां तथा ३ प्रकार के अन:करण-

चित्तवृत्तियां →	अध्यवसाय (या निश्चय)	अभिमान (शरीर को आत्मा समझना)	सङ्कल्प
अन्त:करण →	बुद्धि	अहङ्कार	मन

२.ज्ञान प्राप्त करने के स्तर पर कला के अनुसार ज्ञाता के ७ भेद हैं-१.शिव प्रमाता, मन्त्र महेश्वर, ३.मन्त्रेश्वर, ४.मन्त्र, ५.विज्ञानाकल, ६.प्रलयाकल, ७.सकल। मल की विभिन्न कला या अंश वाले अन्तिम ३ भेद जीव या पशु के हैं। विज्ञानाकल में केवल एक आणव मल होता है, प्रलयाकल में २ अर्थात् आणव और मायीय मल तथा सकल में आणव, मायीय और कार्य तीनों मल होते हैं। मल के कारण आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं पता चलता है। यह मूल अर्थात् कारण का उल्टा कार्य

या विकार है। आणव मल का अर्थ है, आत्मा के शुद्ध रूप के बदले अणु मलों को ही आत्मा समझना। मल या विकार १६ प्रकार के हैं जिस प्रकार पहले रुपये में १६ आना (आणव) होते थे। माया के आवरण और संकोच के कारण भ्रान्ति होती है, वह मायिक मल है। कर्म के कारण उत्पन्न वासपायें कार्मिक मल हैं।

३.सृष्टि के भाग के अनुसार ५ प्रकार की कलायें हैं-

कला	तत्त्व	भुवन	वर्ण	मन्त्र,पद
१.निवृत्ति	१.पृथ्वी-१	१६ कालाग्नि रुद्र-निम्नतम	१.ळ या क्ष	१
२.प्रतिष्ठा	२ से २४-जल से प्रकृति तत्त्व-२३	५६	२३-ह से ट तक	५
३.विद्या	२५-३१ पुरुष से माया तक-७	२८	७-भ से घ तक	१
४.शान्ता	३३-३४ शुद्धविद्या ईश्वर,सदाशिव-३	१८	३-क,ख,ग	१
५.शान्त्यतीता	३५,३६-शिव,शक्ति-२	---	१६-स्वर वर्ण	२
५ कला	३६ तत्त्व	११८ भुवन	५० वर्ण	१० मन्त्र

निवृत्ति सबसे भीतर की कला है। बाद की कलायें पहले को चारों तरफ से घेरे हुये हैं।

४.तत्त्व रूप में कला का अर्थ कर्त्तृत्व या साधकता का संकोच है।

शिव में वर्तमान शक्ति	अणु या जीव में शक्ति का संकुचित रूप
१.सर्व कर्त्तृत्व	कला या किञ्चित्कर्त्तृत्व
२.सर्वज्ञत्व	विद्या या अल्पज्ञत्व
३.नित्यत्व	राग या विषयों में आसक्ति
४.पूर्णत्व	काल या अनित्यत्व
५.व्यापकत्व	नियति=देश और कारण का बन्धन

५.सृष्टि कला के ऊपर बताये गये ५० वर्णों के ८ वर्गों की ८ शक्तियां हैं जो ८ सिद्धियां देतीं हैं (सूत्र १५)। इन शक्तियों के माया आवरण से आत्मा का स्वरूप नहीं दीखता -१.ब्राह्मी- क वर्ग, २.माहेश्वरी-च वर्ग, ३.कौमारी-ट वर्ग, ४.वैष्णवी-त वर्ग, ५.वाराही-प वर्ग, ६.इन्द्राणी-य वर्ग(अन्त:स्थ), ७.चामुण्डा-श वर्ग(ऊष्म), ८.महालक्ष्मी-अ वर्ग (स्वर)।

६.कला का अर्थ है गुणों का क्रमिक विकास जिससे एक वस्तु और दूसरे में भेद किया जा सके। कलाओं की पूर्णता विन्दु है जिसमें १६ कला हैं। इसमें परिवर्तन नहीं होता। १ से १५ तक कलायें चन्द्र तिथि के समान क्रमश: १ से १५ तक बढ़ती हैं तथा १५ से १ तक घटती हैं। १ से १४ तक की जड़ और ईश्वर की कलाओं के संयोग से १४ प्रकार के जीवों की सृष्ट होती है (सूत्र १८)।

७. जीव की उन्नति की कलायें-२४ जड़-तत्त्वों मे ईश्वर या पुरुष (चेतन तत्त्व) की १४ कलायें मिलने से ३८ कलायें पूर्ण विकसित जीव की होती हैं। अमृत विन्दु * तथा ० ँ ये कलायें हैं। मनुष्य में ८ कलायें पहले से सिद्ध होती हैं। विन्दुपात से ० (अनुस्वार) होता है जिसकी ८ कलायें हैं। ँ (चन्द्रविन्दु) की ८ कलाओं का विकास देव चक्षु का विकास है। क्रम के हिसाब से एक विन्दु १६ कला है। अनुस्वार सहित १६ कलायें क्रम रूप में ३२ कलायें हैं। ॰ ३२ कला है और मस्तिष्क का चक्षु है। यह आत्मा तथा पुरुष भाव है। इसके बाद चारों ओर के ४ चक्षु, परिधि और विकीरण-६ कलायें मिल कर ३८ हैं जिसे ● लिखा जाता है। जीव विकास क्रम-
१ कला के बिना जीव का विकास नहीं होता है (उद्भिज, स्वेदज १)। पहले कला के आभास से जीव की उत्पत्ति होती है (मशक आदि -श्वास स्वेद से जन्य)
२.कला से जीव(१-४ कला)-पृथ्वी का (अण्डज २), ऊपर की ओर शंख मुख वाली कला।
३.कला से जीव(५-८ कला)-झटिका (जरायुज ३) की कला।
४.कला से जीव(९-१२ कला)-मनुष्य ४-देवलोक की कला।
५.कला से जीव(१३-१६ कला)-देव मनुष्य-प्रथम दीक्षा की परावस्था, कलायें देवलोक से आती हैं।
६.कला से जीव(१७-३२ कला)-दूसरी दीक्षा के बाद (देवता)-कलायें ध्रुव लोक के ऊपर से आती हैं।
७.कला से जीव(३३-३८ कला)-तीसरी दीक्षा के बाद (देवता)-कलायें गोलोक के ऊपर से आती हैं।

चक्र	कला	विकास का कारण
१.चक्राभास	०-१	----
२.छोटा चक्र	१-८	प्रकृति
३.बड़ा चक्र (छोटा)	९-१२	कर्म या पुरुषाकार

४.बड़ा चक्र (छोटा) १३-१६ कृपा=ज्ञान दीक्षा-१
५.बड़ा चक्र(मध्यम) १७-३२ ।। -२
६.बड़ा चक्र (बड़ा) ३३-३८ ।। -३
७.विन्दु या शून्य निष्कल -----------

८. अन्य कलायें-५० वर्णों या मातृकाओं को शक्ति की ५० कलायें कहा जाता है। व्याकरण के प्रत्याहार या माहेश्वर सूत्रों के स्वरों को ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत भेद गिनने पर ६४ वर्ण होते हैं।

अ.इ,उ - ह्रस्व,दीर्घ,प्लुत भेद - ९
ऋ, लृ - ह्रस्व,दीर्घ - ४
ए, ओ,ऐ,औ - दीर्घ,प्लुत - ८ कुल-२१

इनके उदात्त, समाहार, स्वरित भेदों से ६३ भेद हुये। ॐ जोड़ने से ६४ भेद हुये। इसकी ३ मात्राओं से संगीत में ६६ स्वर हुये।
इन ६४ कलाओं के अनुरूप शक्ति की ६४ कलायें ६४ योगिनी हैं।
उसके समान ही ६४ भैरव चक्र, ६४ शिल्प कलायें हैं।
शिव और शक्ति के रूपों के अनुसार भी १२ शिवशक्ति (१२ ज्योतिर्लिङ्ग) तथा ५२ शक्तिपीठ-कुल ६४ शक्तियां हैं।
८४ लाख या ८४ योनियों के अनुरूप सिद्धि की ८४ कलायें हैं। ८४ सिद्ध कहे जाते हैं। ४० कला तक मनुष्य तथा तपस्या से ८४ कला तक पहुंचने पर ईश्वर होता है।

९.उन्मेष-उन्मेष का अर्थ उन्मीलन या आंख खोलना है।भावार्थ-सृष्टि का आरम्भ। शैव योग में-आत्मिक चेतना का स्फुरण या विकास।
आंख पूरी तरह बन्द या निमीलन की अवस्था सृष्टि से पहले निराकार ब्रह्म या परमशिव अवस्था है। उसके बाद ६ उन्मेष हैं-
ईश्वर भाव के ३-प्रथम उन्मेष में -अध्यात्म तथा अधिभूत भाव।
द्वितीय में-अहं+इदं का विमर्श(संयुक्त)
तृतीय में- अहं, इदं विमर्श (अलग-अलग)
जीव के भी ३ उन्मेष या ज्ञान की अवस्था के अनुसार सिद्धि के उपाय हैं-
शाम्भवोपाय-जिसमें साधक का शिव या ब्रह्म भाव है।
शाक्तोपाय-जिसमें शाक्त भाव है, कुण्डलिनी क्रियाशील है।
आणवोपाय-जड़ पदार्थों की भिन्नता (अणु) में आत्मा का भाव।

१०.शुद्ध तथा अशुद्ध तत्त्व-३६ तत्त्वों को ३ वर्गों में बांटा गया है-

(१) शुद्ध तत्त्व अर्थात् अपरिमित अनुभव (शुद्ध अध्व) के तत्त्व, जहां तक परमेश्वर या परमशिव तत्त्व का गोपन नहीं होता। इसके ५ भेद परमशिव की ५ प्रकार की शक्तियों के अनुसार हैं-

चित् या आत्म प्रकाशन - शिव यह अभिन्न हैं।

आनन्द या स्वातन्त्र्य - शक्ति

इच्छा या सर्जन की प्रवृत्ति -सदाशिव (अहं प्रधान, इदं अस्फुट)

ज्ञान -ईश्वर (इदं प्रधान, अहं अस्फुट)

क्रिया - सद्विद्या या शुद्ध विद्या -इदं, अहं समान।

क्रिया मे कोई भी आकार ग्रहण हो सकता है।

(२) परिमित अनुभव के तत्त्व-६-११-माया और उसके ५ कञ्चुक। माया का अर्थ मापन करना, परिमित या पृथक् करना है। इसमें शुद्ध और अशुद्ध दोनों अध्वा हैं। इसमें अहं और इदं पृथक् हो जाते हैं। इदं सम्पूर्ण जगत् नहीं, परिमित वस्तु हो जाती है। माया के ५ कञ्चुकों-कला, विद्या, राग, काल तथा नियति-से जीव की शक्ति संकुचित होकर भेद बुद्धि होती है।

(३) परिमित व्यक्ति या जीवन के तत्त्व-वेदक, वेद्य।

यह सांख्य के २५ तत्त्व हैं। माया से पूरी तरह संकुचित शिव होने के कारण यह अशुद्ध तत्त्व कहे जाते हैं। संकुचित अहं वेदक या चेतन पुरुष है। वह संकुचित इदं या जड़ तत्व प्रकृति हैं जिनके२४ भेद ३ गुणों से होते हैं। इसमें ३ प्रकार के तत्त्व हैं-

१.मानस व्यापारके तत्त्व- ३-बुद्धि, अहंकार, मन।

२.प्रस्यक्ष करने के १५ तत्त्व-अहंकार पर सत्त्व, रज, तम गुणों के प्रभाव से ३ प्रकार के भेद होते हैं-

सत्त्व अहंकार - ५ ज्ञानेन्द्रियां

रज अहंकार - ५ कर्मेन्द्रियां

तम अहंकार - ५ तन्मात्रायें

३.भौतिक तत्त्व- ५ महाभूत ५ तन्मात्राओं से हुये हैं-

शब्द -आकाश

शब्द+स्पर्श -वायु

शब्द+स्पर्श +रूप -अग्नि या तेज

शब्द+स्पर्श+रूप+रस -आप(जल)

शब्द+स्पर्श+रूप+रस+गन्ध -पृथिवी।

नासदीय सूक्त और भौतिक सृष्टि

(१) नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्।।१।।

(सृष्टि से पहले, प्रलय काल में) न सत् था न असत् था। उस समय न रज था, न व्योम था तथा उससे परे कुछ भी नहीं था। उस समय इनको ढंकने वाला क्या था? कहाँ किस का शर्मन् (चर्म या आश्रय) था? अगाध और गम्भीर अम्भ क्या था? इसे सृष्टि के बाद उत्पन्न हुये तत्त्वों का नाम मालूम होता है। प्रलय काल में ये सभी एक में मिले हुये थे और इनका अलग भेद नहीं मालूम होता था।

सत् का अर्थ है जिसका अनुभव किया जा सके, असत् अति सूक्ष्म या निराकार होने के कारण अनुभव से परे है। भौतिक विज्ञान में सत्-असत् को पदार्थ (matter) और ऊर्जा (energy) कहा जा सकता है। क्वाण्टम मेकानिक्स के अनुसार पदार्थ के मूल कणों को पदार्थ या ऊर्जीनों कहा जा सकता है। सृष्टि के अरम्भ में मूल कण ही थे जिनका सत् या असत् कोई एक नाम नहीं हो सकता।

शतपथ ब्राह्मण (१०/५०/३) तथा (६/१/१) के अनुसार (सत्+असत्) से -मन-वाक्(तरंग)-प्राण(शक्ति या ऊर्जा) हुये। प्राणों ने सृष्टि के लिये प्रयत्न किया, अतः उन्हें ऋषि (रस्सी) कहा गया।

रजस् का अर्थ प्रकाश या कणों की गति है। आरम्भिक पदार्थ (सत्+असत्) का विस्तार प्रकाश विकिरण न्युक्लियस बलों के कारण हुआ। वह गुरुत्वाकर्षण के कारण एक रहते हैं। बहुवचन में रजस् का अर्थ लोक तथा एकवचन में अन्तरिक्ष (space) है।

मूल शब्द या तरंग ॐ है। बिना तरंग ऊर्जा का आकाश व्योम=वि+ओम है। तरंग या कम्पन आरम्भ होने पर व्योम से आकाश हुआ।

भीतरी पदार्थ वायु (वयुन्=वयन करने वाला) तथा उसकी बाहरी सीमा वयोनाध या शर्मन् (चर्म) या छन्दस् है। विन्दुमात्र विश्व की सीमा (शर्म) नहीं होगी।

अम्भस् में सिर्फ शब्द होता है, उस पदार्थ का घनत्व बहुत कम है। आरम्भ में पदार्थ का घनत्व जार्ज गैमाव के अनुसार $१०^{-२२}$ ग्राम प्रति घन सें.मी. था। यह

प्राय: कुछ नहीं है-इससे पदार्थ उत्पन्न होने पर ही उसकी बाहरी सतह, विरलता तथा शब्द रूप तरंग शक्ति का आभास हुआ।

(२) न मृत्युरासीत् अमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेत:।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न पर: किं च नास।।२।।

सृष्टि के पहले न मृत्यु (परिवर्त्तनशील) न अमृत (नित्य) था। अत: रात और दिन, सूर्य तथा ग्रह नहीं थे।

गैमाव के अनुसार आरम्भिक तारों में प्रकाश विकिरण तथा न्यूक्लीय शक्ति के कारण प्रसार तथा गुरुत्वाकर्षण के कारण संकोच होता है, जिसे उसने श्वास-प्रश्वास के समान वर्णन किया है। इसको ऋचा में बिना वायु के अपनी शक्ति से श्वसन कहा गया है।

स्वधा=अपनी शक्ति। शक्ति का अर्थ जो उत्पन्न कर सके। माया बल उसे कहते हैं, जिसका प्रभाव दिखायी दे या मापा जा सके। प्रलय में यह रस में मिल जाता है, जैसे शान्त समुद्र में तरङ्ग। अत: स्वधा तारे की न्यूक्लीयर शक्ति है, जिससे पदार्थ की सृष्टि हुयी।

(३) तम आसीत् तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेत सलिलं सर्व मा इदम्।
तुच्छ्ये नाभ्व पिहित यदासीत् तपसस्तन्महिना जायतैकम्।३।

शुरु में सिर्फ अन्धकार था, उससे घिरे पदार्थ का ज्ञान मुश्किल था। वह सलिल अर्थात् तरंगित (बदलते घनत्व का) पदार्थ था। विरल पदार्थ मे ं असन्तुलन के कारण सलिल हुआ। गुरुत्वाकर्षण के कारण बड़े गैस विन्दु (२-३ प्रकाश वर्ष व्यास) के बने जो बाहरी पदार्थ की तुलना में घने थे। इसे आभु (आसमन्तात् भवति इति आभु) कहा है। तप अर्थात् ताप-उर्जा (heat) से वह फैल गया।

(४) कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेत: प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।४।

का म या सृष्टि करने की इच्छा अदृश्य मन के बीच से उत्पन्न हुयी, जिस प्रकार असत् से सत् उत्पन्न हुआ। दूरदर्शी ऋषियों ने मन और चित्त में गम्भीर विचार कर यह निष्कर्ष निकाला है।

सूक्ष्मतम आणविक असन्तुलन या तरंग (लघुतम बीज) से विरल गैस के विस्तार से क्रमबद्ध प्रक्रिया शुरु हुयी , जिससे सृष्टि क्रम हुआ। सूक्ष्मतम शक्ति को काम कहा गया है। यह मन(minute = छोटा) से हुआ।

(५) तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा मध: स्विदासी३ दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् स्वधा अवस्तात् प्रयति: परस्तात्।५।

आभु से प्रकाश किरणें रश्मि निकलीं (या पदार्थ के लच्छे)। ये रश्मियां तिरछी, ऊपर, नीचे फैलीं। इनमें बीज के धारण से विकास हुआ। जो अलग रहे (स्वान् धारयति इति स्वधा) वे छोटे रह गये, या छोटे पिण्ड बड़ों में मिल गये (स्वान् दधाति इति स्वधा)। बड़े पिण्ड अपने आकर्षण के कारण और बड़े हुये। आकाशगंगा में पदार्थ की रश्मियों के फैलने से सर्पाकार नेबुला बना है, जो सभी दिशाओं में है, अर्थात् दिशा बदलती रहती है।

(६) को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत अजाता कुत इयं विसृष्टि:।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव।६।

देवता भी सृष्टि के बाद ही उत्पन्न हुये, अत: जगत् के मूल कारण के विषय में कौन निश्चय पूर्वक कह सकता है?

(७) इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्ष: परमे व्योमन्, त्सो अंग वेद यदि वा न वेद।७।

जिससे सृष्टि निकली, वह इसका आधार है या नहीं? उससे परे व्योम में रहनेवाला इसे जानता है या नहीं? सौर मण्डल अपने स्रोत आकाशगंगा में है। उसके बाद के आधार का हमें पता नहीं है। हमारा आधार पृथ्वी आर पृथ्वी का आधार सूर्य है -
पृथिवी त्वया धृता लोका, देवि त्वं विष्णुना धृता।

सम्बन्धित सूत्र-सांख्य कारिका ३-
मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या: प्रकृति विकृतय: सप्त।
षोड़शकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृति: पुरुष:।

४ प्रकार के तत्त्व-केवल प्रकृति - मूल प्रकृति
प्रकृति+विकृति = महान्, अहंकार,५ तन्मात्रा-७
केवल विकृति १६-मन, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ महाभूत।
न प्रकृति न विकृति= पुरुष (यह पुरुष की एक परिभाषा हुयी)

सांख्य सूत्र १/६१-
सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृति:, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्च तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियम्, तन्मात्रेभ्य:स्थूलभूतानि, पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गण:।

सत्व, रज, तम का साम्य प्रकृति --महान्--अहंकार--

५ तन्मात्रा मन

५ महाभूत ५ कर्मेन्द्रिय ५ ज्ञानेन्द्रिय

सृष्टि क्रम सांख्यकारिका २२ में दिया है -

प्रकृतेर्महान् स्ततोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोड़शकः।
तस्मादपि षोड़ाकान् पञ्चभ्य पञ्चभूतानि ।।

यह सूत्र का ऊपर निर्दिष्ट क्रम है।

पुरुष का स्वरूप-शैव दर्शन में जब शिव माया द्वारा अबने को लुप्त कर परिमित या परिच्छिन्न प्रमाता (द्रष्टा) बनता है तब उसको पुरुष कहते हैं। शिव और माया द्वारा परस्पर तत्त्व गोपन होने से सांख्य के २५ तत्त्व ही बनते हैं, अतः उनमें कोई भेद नहीं है। विराट् पुरुष या विष्णु के १२ आदित्य रूप इसी प्रकार हैं-एक पुरुष और ११ शिव तत्त्वों के समन्वय से १२ आदित्य। पुरुष द्रष्टा है या चेतन तत्त्व और उसका विषय या दृश्य प्रकृति (१४ तत्त्व) हैं। सांख्य में पुरुष के ३ प्रकार अर्थ किये जाते हैं-(१) शुद्ध चेतन या ज्ञान स्वरूप-जड़ तत्त्व से पूर्णतः मुक्त। यथा-

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।(ऋक्१०/९०/३,पुरुष सूक्त)

यह विराट् विश्व से भी बड़ा है। सम्पूर्ण विश्व और भूत उसका एक पाद है। उसके अन्य ३ पाद अमृत-स्वरूप अपने प्रकाश में हैं।

(२) विराट् विश्व या चेतन ब्रह्माण्ड ही विराट् पुरुष, परमात्मा या विष्णु कहा जाता है। पुरुष सूक्त-१(ऋग्वेद १०/९०/१) या श्वेताश्वतर उप.(३/१४) में-

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।

यह पुरुष हजारों सिर, हजारों नेत्र तथा हजारों पावों वाला है। वह इस ब्रह्माण्ड को चारों ओर से घेरकर भी उससे १० अङ्गुल अधिक दूर है।(या विश्व तत्त्व से घिरा हुआ है जिसमें १० से अधिक या ११ अङ्गुल हैं , अर्थात् ११ शिव तत्त्व हैं।) स=पुरुष, भूमि=२४ तत्त्व(भ=२४ वां अक्षर, म से २५ तत्त्व पूर्ण)

(३) व्यष्टि या शरीरों से मिश्रित चेतन तत्त्व-यह मुक्त अवस्था में आत्मा तथा बद्ध अवस्था में जीव कहलाता है। यह सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है।

तैत्तिरीय उप.(१/६/१)-स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः। तस्मिन्नयं पुरुषो

मनोमयः। अमृतो हिरण्मयः।

एक और बहुत पुरुष-विराट् और चेतन पुरुष एक ही है। भिन्न शरीरों में उसी के बहुत से रूप दीखते हैं, जैसे एक ही सूर्य के कई रूप जल-तरंगों से परावर्तित होकर दीखते हैं। सांख्य सूत्रों (१/१४९-१५५) में व्यक्ति पुरुष का बहुत्व तथा उनकी समरूपता दिखायी है-

१४९-जन्मादि व्यवस्थातः पुरुष बहुत्वम्।

१५०-उपाधि भेदेऽप्यनेकस्य नाना योग आकाशस्येव घटादिभिः।

१५१-उपाधिर्भिद्यते न तु तद्वान्।

१५२-एवमेकत्वेन परिवर्तमानस्य न विरुद्ध धर्माध्यासः।

१५३-अन्य धर्मत्वेऽपि नारोपात् तत्सिद्धिरेकत्वात्।

१५४-नाद्वैतश्रुतिविरोधो जाति परत्वात्।

१५५-विदित बन्ध कारणस्य दृष्ट्या तद्रूपम्।

पुरुष के बहुत से रूप जन्म, उपाधि, योग, आकाश का घट (सीमित स्थान) आदि के कारण हैं। ये सब पुरुष के भेद नहीं हैं, द्रष्टा के कारण हैं। साधना द्वारा उसके एक रू प को देखा जाता है।

गीता (१८/६१) के अनुसार भी सभी प्राणियों के हृदय स्थान में ईश्वर है-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्व भूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया।

विद्वान् सभी रूपों को एक ही देखता है(गीता ५/१५)-

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।

योगी सभी भूतों में आत्मा को तथा सभी भूतों को आत्मा में देखता है (गीता ६/२९,३२)। इस कारण सभी भूतों को समान देखता है तथा सुख-दुःख में सम रहता है -सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः

कठोपनिषद्(२/२/१०) में जिस प्रकार एक ही अग्नि या वायु सभी भुवनों में प्रविष्ट होकर उनके समान अलग-अलग रूप हो रहा है, उसी प्रकार सभी भूतों के अन्दर एक ही आत्मा बाहर से अलग-अलग रूपों में दीखती है-

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

वायुर्यथैको ....

ईशावास्योपनिषद् (६,७) में भी गीता का ही सार है-

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।

तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।।

जो सभी भूतों को आत्मा (स्वयं या ईश्वर) में तथा आत्मा को सभी प्राणियों में देखता है, वह किसी से घृणा नहीं करता। इस स्थिति में सभी प्राणी तथा ईश्वर एक रूप दीखते हैं तथा कोई मोह या शोक नहीं होता।

पुरुष के लक्षण-(१) न प्रकृति, न विकृति (सांख्य कारिका ३)

(२) ३ गुणों से मुक्त -त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन(गीता २/४५)

(३) नित्य, निष्काम, निर्विकार आदि।

(४) चेतन तत्त्व जो सभी के भीतर है , किन्तु पूरी सृष्टि से परे है (पुरुष सूक्त)। सबसे बड़ा और सबसे छोटा रूप आत्मा-परमात्मा या खुद-खुदा कहा जाता है-

अणोरणीयान्महतोमहीयानात्मास्य जन्तोर्निहितं गुहायाम्।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः।

(कठोपनिषद् १/२/२०, श्वेताश्वतर उप.३/२०)

जीवों के हृदय में स्थित आत्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा महान् से भी महान् है। उसकी महिमा को धातु (धारक परमात्मा) की कृपा से कामनारहित और शोक रहित साधक देख सकता है।

५. त्रैगुण्यम्

अर्थ-त्रैगुण्यम्=त्रिगुण+ष्यञ्-१.तिगुनापन, तीन धागों या गुणों के एकत्र होने का भाव, २.तीन गुणों का समाहार, ३.तीन गुणों (सत्त्व, रज, तम की समष्टि)। त्रि=३-जो एक और दो संख्याओं को पार करने पर आता है (यास्क निरुक्त ३/१०) गुण(गुण् +अच्)-१.धर्म,स्वभाव,सगुण या दुर्गुण, २.श्रेष्ठता, उत्कर्ष, ३.उपयोग, लाभ, ४.प्रभाव, परिणाम, ५.धागा, रस्सी, छोर, ६.धनुष की डोरी, ७.वाद्य-यन्त्र के तार, ८.स्नायु, ९.खूबी (विशेषण), १०.विशेषता, सभी पदार्थों का धर्म या लक्षण, वैशेषिक के ७ पदार्थों में एक(२४ गुण हैं), ११.प्रकृति का अवयव या उपादान, समस्त वस्तुओं के ३ गुणों में से एक, १२.बत्ती, सूत, १३.इन्द्रियों केविषय(रूप, रस आदि), १४.अवृत्ति, गुणा,१५.गौण तत्त्व, १६.आधिक्य, १७. सन्धि के कारण स्वरों में परिवर्तन, इ का ए, उ का ओ आदि। १८.अलङ्कार में

रस के गुण, १९.शब्द-समूह का अर्थ, २०.राजनीति के गुण, २१.तीन संख्या, २२.ज्यामिति में चाप, २३.ज्ञानेन्द्रिय, २४.रसोइया।

व्याख्या-सांख्य में प्रकृति तत्त्वों की तीन स्थितियों को गुण कहा गया है। यही अर्थ वेदान्त तथा योग में भी है। वैशेषिक में यह एक पदार्थ है। यहां गुण पदार्थ की वह स्थिति है, जिसे मापा जा सके, अर्थात् तत्त्वों की स्थितियों की कोई सीमा रेखा नहीं है। उदाहरण स्वरूप स्पर्श करने पर ठंढा, गर्म या सम-तीन अवस्थायें होतीं हैं, लेकिन किसे ठंढ़ा या गर्म कहा जायगा, वह हमारी अपनी परिस्थिति पर (सापेक्ष) है। यन्त्र से तापक्रम मापने पर ही ठीक ज्ञान होगा। कोइ भी विद्या तत्त्वों की तीन स्थितियों के अध्ययन से होती हैं। जैसे गीता(२/४५) में कहा है-

त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

तीन प्रकार की स्थितियों का वर्णन कई प्रकार से किया जा सकता है, अतः उनका स्पष्ट नाम नहीं दिया है। सुविधा के लिये किसी भी विचार से पदार्थ की कुल स्थितियां तीन होने पर इन्हें सत्त्व, रज, तम का नाम दिया गया है। यह मूल विचार होने के कारण इसकी परिभाषा शब्दों में नहीं दी जा सकती। उसके लक्षण दिये गये हैं। सांख्यसूत्र(१/६१) मेंतीनों गुणों का नाम देकर उनकी साम्य अवस्था को प्रकृति कहा गया है- सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः ....।

सुख दुःख अवस्था के अनुसार इनके लक्षण हैं-

सांख्य सूत्र १/१२७-प्रीत्यप्रीति विषादाद्यैर्गुणानामन्योन्यं वैधर्म्यम्।

सांख्य कारिका १२-प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाश प्रवृत्ति नियमार्थाः।
अन्योन्याभिभवाश्च जनन मिथुन वृत्तयश्च गुणाः।

सांख्य सूत्र १/१२७ पर विज्ञानभिक्षु भाष्य में पञ्चशिखाचार्य-

सत्त्वं नाम प्रसादलाघवभिष्वङ्ग-प्रीति-तितिक्षा-सन्तोषादि रूपानन्त भेदं समासतः सुखात्मकम्, रजः शोकादि नानाभेदं समासतोदुःखात्मकम्, तमोनिद्रादिनानाभेदं मोहात्मकमिति।

अर्थात्, सत्त्व का अर्थ प्रीति या सुख है।
रज का अर्थ अप्रीति या दुःख है , किन्तु इसमें क्रिया है।
तम का अर्थ विषाद अर्थात् दुःख के कारण निष्क्रियता या मोह है।

सांख्य सूत्र १/१२८-लघ्वादि धर्मैरन्योन्यं साधर्म्यम् वैधर्म्य मितरेषाम्।

सांख्य कारिका १३-सत्त्वं लघु प्रकाशमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।

गुरु वरणकमेव तम प्रदीपवच्चार्थो वृत्तिः ।।
योग दर्शन सूत्र २/१८-विशेषाविशेष लिङ्गमात्रालिङ्गानि गुण पर्वाणि।
अर्थात्, सत्त्व=लघु, प्रकाशक।
रज=चल, उपष्टम्भक(परिवर्त्तक या उत्तेजक)
तम=गुरु और आवरणकारी।
आयुर्वेद में भोजन के तीन प्रकार इसी नाम गुण के हैं-
सात्त्विक भोजन-लघु, सुपाच्य।
राजसिक भोजन-शक्तिदायी।
तामसिक भोजन-भारी, आलस या मोह करनेवाला (मद्य तथा भारी भोजन, बासी आदि)।
इन तीन गुणों की विभाजक रेखा नहीं है, कहां सत्त्व समाप्त होकर रज आरम्भ हुआ यह नहीं कहा जा सकता है। तीनों गुण कुछ अंशों में सदा उपस्थित हैं। कभी-कभी कोई एक गुण अन्य दो को प्रभावित कर प्रबल हो जाता है। योग सूत्र २/१९ के अनुसार भी इन तीन गुणों में कभी भेद और पहचान हो पाता है कभी नहीं-विशेषाविशेष लिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि।
देवी भागवत (३/८) में भी है-
अन्योन्य मिथुनाः सर्वे सर्वे सर्वत्रगामिनः। रजसो मिथुनं सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुनं रजः।
तमसश्चापि मिथुने ते सत्त्वरजसी उभे। उभयोः सत्त्वरजसार्मिथुनं तम उच्यते।
नैषायादिः सम्प्रयोगो विभागो वोपलभ्यते।
अर्थात् सभी गुण सहचर हैं। रज के साथ सत्त्व है, तथा सत्त्व का साथ रज। सत्त्व और रज दोनों तम के सहचर हैं तथा दोनों का सहचर तम है। इन गुणों का आरम्भ, उत्पत्ति, संयोग या वियोग स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता।
३ और ७ भाग-गणित के अनुसार इनका विभाग समझना आसान है। पदार्थ की संख्या की दो स्थितियां हैं-धन(positive) या ऋण(negative)इनका समन्वय शून्य है। पूर्ण धन को यदि १ हो तो ये स्थितियां हैं-१,०,-१, या सत्त्व, रज, तम।
तीनों गुणों की स्थिति को यदि १,२,३ चिह्न दियाजाय तो ७ स्तर हुये-
-३,-२,-१, ०, १, २, ३
यहां पूर्ण स्तरों की चर्चा हुयी है, इनके भीतर भिन्न तथा असंख्येय(rational fraction, irrational) कई स्तर हैं। जैसे ०,१ के बीच ०.१, ०.२५ आदि।

पूरा विश्व तथा इसका ज्ञान इन्हीं स्तरों में विभाजित है-

ये त्रिषप्ता: परियन्ति विश्वा:(अथर्ववेद का प्रथम सूक्त) ।

अर्थात् ३ तथा ७ से विश्व ओतप्रोत है।

यहां ३ का अर्थ ३ गुण-सत्त्व, रज, तम तथा ७ का अर्थ जगत् के मूल ७ पदार्थ-पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्रा तथा अहंकार हैं। इनके उपभेद मिलकर प्रकृति के २४ भेद होते हैं।

७ पदार्थों की ३ अवस्था से २१ तत्त्व हुये जिसके अनुसार ऋग्वेद की २१ शाखायें हैं। ऋग्वेद सत्त्व स्वरूप है अर्थात् तत्त्वों की स्थिति मात्र बताता है। यजुर्वेद क्रिया रूप (यज्ञ) में रज: गुण है-७+३ तत्त्वों से अन्य तत्त्वों तक गमन की १०ह्न१० स्थिति होगी।एक समन्वय विधि मिलाकर यजुर्वेद की १०१ शाखायें हैं। अत: इसका ब्राह्मण शतपथ कहा जाता है। क्रियाओं की पुन: १० प्रतिक्रिया या विकार आने से साम्य या निष्क्रिय अवस्था आती है जिसके बाद कोई अगली क्रिया नहीं होती। यह तमोगुण सामवेद है, अत: उसकी १० तत्त्वह्न१० क्रियाह्न१० प्रतिक्रिया=१००० शाखायें हैं। अथर्ववेद तीनों से परे की अवस्था है , अर्थात् समन्वय है। ३ वेदह्न३ गुण का समन्वय से इसकी ९ शाखायें हैं।

अथर्ववेद का यह सूत्र शरीर का बल बढ़ाने के प्रसंग में है। अत: यहां शरीर के २१ तत्त्व बाहर के २१ तत्त्वों से सम्बन्धित हैं। शरीर की ३ अवस्थाओं को मन, प्राण, वाक् कहते हैं, अर्थात् संकल्प, क्रिया, शक्ति। इसका दृश्य रूप कफ, वात, पित्त कहा जाता है, जिसका समन्वय स्वास्थ्य के लिये जरूरी है। ७ तत्त्व ७ धातुयें या रस हैं। ये अन्न से बनती हैं-

अन्न → रस → रक्त → मांस → मेद → हड्डी → मज्जा → वीर्य

रस १, रक्त २, मांस ३, मेद ४, हड्डी ५, मज्जा ६, वीर्य ७

अन्न ↓ किट्ट भाग-मल,मूत्र आदि

वीर्य ↓ ओज

स्वाद के अनुसार ६ रस हैं , जो मूल रस जल पर आधारित हैं।

जल → मधुर, अम्ल, नमकीन, कटु, तिक्त, कषाय।

शरीर के ७ कोष या क्रमश; ७ सूक्ष्म रूप हैं। यह ७ चक्रों तथा ७ लोकों से सम्बन्धित हैं। इनके कम्पन भेद के अनुसार संगीत के सात राग हैं। उनके अनुसार चित्त तथा प्रज्ञा की ७ अवस्थायें हैं।

	१	२	३	४	५	६	७
शरीर कोष-	अन्नमय	प्राणमय	मनोमय	विज्ञान	आनन्द	चित्त	आत्ममय
चक्र -	मूलाधार	स्वाधिष्ठान	मणिपूर	अनाहत	विशुद्धि	आज्ञा	सहस्रार
लोक-	भूः	भुवः	स्वः	महः	जनः	तपः	सत्यः
राग-	षड्ज	ऋषभ	गान्धार	मध्यम	पञ्चम	धैवत	निषाद
चित्त अवस्था-	व्युत्थान	निरोध	निर्माण	प्रसन्न	एकाग्रता	छिद्र	परिपक्व
प्रज्ञा अवस्था-	शरीरज्ञान	प्राण	मन	विज्ञान	आनुभाविक	रसात्मक	आत्म
संयम-	शरीर	इन्द्रिय	प्राण	मन	बुद्धि	चित्त	आत्म

चेतना की ४ अवस्थायें हैं-जाग्रत, स्वप्न, निद्रा तथा तुरीय। इनके बीच की ३ अवस्थाओं को मिलाकर चित्त की ७ अवस्थायें हैं।

वेदों केलिये त्रयी विद्या का व्यवहार होता है। गुणों के अनुसार उनके रूप हैं-

सत्त्व	रज	तम	निस्त्रैगुण्य
ऋक्	साम	यजुर्	अथर्व
कर्म	रूप	नाम	ज्ञान
वाक्	प्राण	मन	(आत्मा)
पृथ्वी	अन्तरिक्ष	द्युलोक	आकाश
अग्नि	वायु	आदित्य	ब्रह्म

तीन लोक तथा ७ लोक-हमारा निवास पृथ्वी भू; मण्डल है, यह सूर्य मण्डल पर आधारित है। इन दोनों को मिला कर तथा इनके बीच का अवकाश प्रथम त्रिलोकी है। सूर्य जिस मण्डल का भाग है ,वह द्वितीय त्रिलोकी है। सूर्य का आधार जनःलोक है जिसका आधार सनातन विश्व या परमेश्वर है, जिसे सत्य लोक कहते हैं। यह तीसरी त्रिलोकी है। इसमें ४ मण्डल तथा ३ अन्तरिक्ष हैं। पृथ्वी तथा सूर्य के बीच भुवः लोक में वरुण, बृहस्पति आदि के बड़े बड़े मण्डल हैं किन्तु पृथ्वी का सीधा सम्बन्ध चन्द्र से है, अतः सोम या चन्द्र-मण्डल पांचवां मण्डल माना जाता है।

प्रथम त्रिलोकी — द्वितीय त्रिलोकी — तृतीय त्रिलोकी

भूः	भुवः	स्वः	महः	जनः	तपः	सत्यः
१	२	३	४	५	६	७
पृथ्वी	चन्द्र	सूर्य		आकाशगंगा परमेष्ठी मण्डल		अनन्तविश्व स्वयम्भूमण्डल

मण्डल	अक्षर पुरुष	क्षर पुरुष	शुक्र या अव्यय
स्वयम्भू	ब्रह्मा	प्राण	वाक्
परमेष्ठी	विष्णु	आप	अप्
सूर्य	इन्द्र	वाक्	अग्नि
चन्द्र	सोम	अन्न	अप्
पृथ्वी	अग्नि	अन्नाद	वाक्

पुरुष की ५ कलाओं (क्षर या अक्षर) के क्रम के अनुसार पृथ्वी के बाद चन्द्र मण्डल गिनना चाहिये। तीन त्रिलोकियों से जैसे ७ लोक हुये उसी प्रकार तेज, अप् और अन्न के भी ३-३ भेद लेने से सात भेद हुये।

पृथ्वी(अन्न) अन्तरिक्ष(अप्) द्यु(तेज)

भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यः

अन्न — अप् — तेज अन्न — अप् — तेज

अन्न — अप् — तेज

यह ऊपर वाले क्रम का ही अन्य शब्दो में तत्त्व भेद से वर्णन है। यह तत्त्वों या पदार्थ की सूक्ष्मता दिखाता है।

भौतिक विज्ञान में ३ का भेद-(१) कणों की संहति (तत्त्व समास का एक अर्थ) के गुण का अध्ययन सांख्यिक भौतिक विज्ञान(Statistical Thermodynamics or Physics) में किया जाता है। जिन कणों पर कोई आवेग नहीं है उनकी संख्या उनकी शक्ति के अनुसार बदलती है (मैक्सवेल-बोल्जमैन सूत्र)। जिनका स्पिन पूर्ण संख्या है, उनमें परस्पर भेद करना मुश्किल है तथा वह अधिक सम्भावित स्थिति के पास इकट्ठे हो जाते हैं। उन्हें बोसोन (बोस-आइन्सटाइन सांख्यिकी) कहते हैं। इसके विपरीत जिनका स्पिन पूर्ण अंकों का आधा है वह फर्मियन कहे जाते हैं(फर्मी-डिराक सांख्यिकी)।

(२) शक्ति (ताप या अन्य ऊर्जा) अधिक ताप के स्थान से कम तापक्रम तक जाती है, जैसे पानी हमेशा ऊंचे से नीचे बहता है। यन्त्र द्वारा इस शक्ति-प्रवाह का कुछ अंश उपयोगी कार्य में बदला जा सकता है। इसमें अधिक तापक्रम का स्थान (Source) को सत्त्व, कम तापक्रम का स्थान (Sink) को तम तथा उसके भीतर ताप के प्रवाह को रज कहा जा सकता है। तापक्रम का अन्तर नहीं रहने पर कार्य नहीं हो सकता। इस प्रकार सत्त्व, रज, तम का भेद नहीं रहने से सृष्टि नहीं

हो सकती। सामान्य गाड़ी के इञ्जन में ईन्धन जलने से ताप उत्पन्न होता है, वह अपेक्षाकृत ठंढे वायुमण्डल में जाता है। इस ताप प्रवाह को नियन्त्रित कर गाड़ी का इञ्जन तथा चक्का चलता है। इसी प्रकार गर्म सूर्य (सत्त्व) से विभिन्न प्रकार की ऊर्जा ठंढी पृथ्वी पर आ रही है। उसी ऊर्जा प्रवाह के विभिन्न रूपान्तरों से वृक्ष, जन्तु तथा यान्त्रिक इञ्जन चल रहे हैं। इस प्रकार सूर्य (स्वर्लोक) सत्त्व, भुवः (पृथ्वी पर की चेतन सृष्टि, मशीनें, वायुमण्डल, समुद्र में गति आदि) रज तथा पृथ्वी तम हुआ। यही सबसे बड़ा यज्ञ या यान्त्रिक क्रिया है।

(३) विद्युत् आवेश के अनुसार भी पदार्थ तथा उसके कण तीन प्रकार के हैं-धन, ऋण आवेश तथा बिना आवेश का।

(४) परमाणु के अंगीभूत कण तीन प्रकार के हैं-

फोटोन-शून्य आवेश तथा मात्रा।

लेप्टोन-कम मात्रा, परस्पर क्रिया (Weak interaction) नहीं।

हाड्रोन-अधिक मात्रा, शक्तिशाली प्रतिक्रिया (Strong interaction)।

(५) परमाणु कणों के मूल तीन प्रकार के हैं-

क्वार्क-मूल कण-भाग।

हाड्रोन आदि- स्थायी कण।

ग्लूओन-क्वार्कों को जोड़ने वाले कण।

क्वार्क तथा ग्लूओन के भी प्रकृति के तीन गुणों की तरह तीन रंग कहे जाते हैं जिससे इनका ८ प्रकार का मिलन होता है। तीन रंग लाल, पीला, नीला इसलिये नाम दिया गया है क्योंकि इन मूल रंगों की तरह ये गुण भी मिलकर एक दूसरे को शून्य कर देते हैं। इसी प्रकार मूल प्रकृति के तीन रूपों का वर्णन है तथा उनके ८ प्रकार के भेद हैं-

अजामेकां लोहितशुक्ल कृष्णां बह्वी प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।
(श्वेताश्वतर उप.४/५)

अर्थात् एक ही प्रकृति (अजा) है जो लोहित (लाल), शुक्ल (सफेद या पीला?), कृष्ण (काला या नीला) रूपों में प्रजा की सृष्टि करती है। कृष्ण रूप-काली, शुक्ल-सरस्वती, लोहित-लक्ष्मी।

गणित में त्रिगुण-(१) तर्कशास्त्र में वस्तु तीन प्रकार से प्रमाणित होती है-

प्रमाणित	अप्रमाणित	संशय
सत्य	मिथ्या	अनिर्णय
Truth	False	Undecided

(२) न्याय दर्शन में भी ३ प्रमाण कहे गये हैं-प्रत्यक्ष, अपुमान, शब्द।

(३) दो राशियों की तुलना ३ प्रकार से कर गणित के सिद्धान्त प्रमाणित किये जाते हैं-एकराशि दूसरी राशि से- कम, बराबर, अधिक-तीन ही प्रकार हो सकती है।

(४) भास्कराचार्य ने लीलावती में कहा है कि सारा विश्व त्रैराशिक(Ratio and proportion) सेव्याप्त है। जिस प्रकार तीन ज्ञात राशियों के अनुपात से चौथी अज्ञात राशि निकलती है , उसी प्रकार त्रयी(ऋक्,साम, यजुर्) के उपयोग से अथर्ववेद होता है -त्रैराशिकेनैव यदेतदुक्तं व्याप्तं स्वभेदैर्हरिणेव विश्वम्।

(लीलावती, छाया व्यवहार)

शरीर में षट्चक्र-विन्दु से लेकर ब्रह्माण्ड की प्राणशक्ति आज्ञाचक्र में इकट्ठा होती है, जो शक्ति स्रोत का काम करता है। यह सत्त्व है (ज्ञान या सरस्वती)। इसका अन्त सबसे कम शक्ति के मूलाधार में होता है। वहां अन्त में प्राण शक्ति जमा होने का कुण्ड (Sink) है अत: उसे कुण्डलिनी कहा जाता है। कुण्डलिनी प्राय: सुप्त रहती है, जो तमोगुण और काली रूप है। उसके बीच में शक्ति-प्रवाह हो रहा है। उसके उपयोग के लिये सभी इञ्जन चक्र में चलते हैं, अत: उपयोग यन्त्रों को चक्र कहा जाता है। तीन आयाम केविश्व में एक ही मार्ग (सरल रेखा) है, ६ आयामके विश्व में ३ अधिक अर्थात् ४ मार्ग हो सकते हैं, अत; ४ क्रिया चक्र हैं। ऊपर के आयामों से आरम्भ कर चक्र हैं-विशुद्धि, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान। इसमें मध्यम चक्र रजोगुणी लक्ष्मी (अनाहत) या विष्णु रूप सूर्य (मणिपूर) के हैं। कुण्डलिनी का जागरण होने पर वहां की सञ्चित शक्ति का प्रवाह उल्टी दिशा में होता है। यह सृष्टि क्रम के विपरीत संहार क्रम कहा जाता है।

सांख्य तथा वेदान्त का चतु:सूत्री-वेदान्त के प्रथम ४ सूत्र चतु:सूत्री कहे जाते हैं। इसी प्रकार तत्त्व-समास के २-५ सूत्र चतु:सूत्री कहे जाते हैं।इनकी तुलना है-

(१) अथातो ब्रह्म जिज्ञासा-ब्रह्म की जिज्ञासा आरम्भ होती है।

सांख्य-पुरुष:-पुरुष भी ब्रह्म का ही नाम है।

(२) जन्माद्यस्य यत:-अष्टौ प्रकृतय:-प्रकृति ब्रह्म का ही दूसरा रूप है जिससे सृष्टि होती है।

(३) शास्त्र योनित्वात्-यह शास्त्र से ज्ञात होता है। त्रैगुण्यम्-का अर्थ भी ४ वेद हैं। (४) तत्तु समन्वयात्-षोड़श विकारा:-इनका तथा पिछले तत्त्वों का समन्वय ही पूर्ण प्रकृति है। वस्तुत: इसकी ज्यादा समानता प्रथम सूत्र -अथात: तत्त्वसमास:- से है।

६.सञ्चर: प्रतिसञ्चर:

अर्थ-सञ्चर: = सम्+चर्+क। १.मार्ग, एक राशि से दूसरी पर स्थानान्तर, २.रास्ता,पथ, ३.संकीर्ण पथ, ४.प्रवेश द्वार, ५.शरीर, ६.हत्या, ७.विकास। प्रतिसञ्चर:-प्रति+सम्+चर्+ट। १. पीछे मुड़ना, २.पुनश्चूषण, ३.विशेषत: विराट् जगत् का फिर से प्रकृति के रूप में लीन हो जाना।

अत: सञ्चर का अर्थ मूल प्रकृति तथा पुरुष से सृष्टि का विकास तथा प्रतिसञ्चर का अर्थ उसका लय होता है। सञ्चर विकास है, प्रतिसञ्चर ह्रास या लीन होना है। एक आगे की क्रिया, एक पीछे की क्रिया है। दोनों क्रम से एक दूसरे के बाद आते हैं, इस लिये एक सूत्र में ही वर्णन है। एक अन्य पाठ में त्रैगुण्य सञ्चर: तथा प्रतिसञ्चर: अलग-अलग सूत्र हैं। इसका अर्थ है कि तीन गुणों के कारण सृष्टि होती है तथा उसके बाद लय का क्रम आता है।

व्याख्या-१.पुरुष के संकल्प या इच्छा के कारण प्रकृति के तीन गुण प्रकट हुये जो परस्पर सन्तुलन के कारण प्रकट नहीं थे। तीन गुणों के कारण प्रकृति के कई भेद प्रकट हुये तथा उनकी संहति से सृष्टि हुयी। इस प्रकार का सृष्टि क्रम छान्दोग्य उपनिषद् (६/३) में दिखाया गया है-

तदैक्षत बहुस्यां प्रजयेयेति तत्तेजोऽसृजत। तत्तेज ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत। तस्माद् यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते।३। ता आप ऐक्षन्त बह्वय; स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त। तस्माद् यत्र क्व च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्य जायते।४।

उसने ईक्षण किया-मैं बहुत हो जाऊँ, प्रजावाला होऊँ। उसने तेज को रचा। उस तेज ने ईक्षण किया-मैं बहुत हो जाऊँ, प्रजावाला होऊँ। उसने जल को रचा। इसलिये जहाँ कहीं पुरुष गर्म होता है, उसे पसीना आता है, तेज से ही जल उत्पन्न होते हैं।३। उस जल ने ईक्षण किया-मैं बहुत होऊँ, प्रजावाला होऊँ। उसने पृथिवी को रचा। इसलिये जहाँ कहीं वर्षा होती है, वहाँ बहुत अन्न अर्थात् पार्थिव पदार्थ उत्पन्न होते हैं।४।

यहाँ एक एक तन्मात्रा बढ़ने से पांच महाभूतों की उत्पत्ति दिखायी गयी है-

शब्द +स्पर्श +रूप +रस +गन्ध

व्योम या शून्य ⟶ आकाश ⟶ वायु ⟶ तेज ⟶ जल ⟶ पृथिवी

प्रथम दो तत्त्व शब्द तथा स्पर्श गुण वाले हैं, जो क्रमश: शून्य आकाश के शक्ति-क्षेत्र (गुरुत्वाकर्षण, विद्युत्चुम्बकीय, नाभिकीय लघु तथा गुरु शक्ति) तथा यान्त्रिक कम्पन हैं, जो अदृश्य हैं। अन्तिम तीन तत्त्व दृश्य हैं, जिसका वर्णन कर उनकी व्यावहारिक क्रियाओं से तुलना की गयी है।

(२) विराट् विश्व की सृष्टि तथा प्रलय चक्रवत् होते हैं। यह सबसे बड़ा चक्र है। उदाहरण के लिये गीता, अध्याय ८ में-

आब्रह्मभुवनाल्लोका: पुनरावर्तिनोऽर्जुन।मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।१६।
सहस्र युग पर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदु:।रात्रिं युग सहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जना:।१७।
अव्यक्ताद्व्यक्तय:सर्वा:प्रभवन्त्यहरागमे।रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।१८।
भूतग्राम:स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।रात्र्यागमेऽवश:पार्थ प्रभवत्यहरागमे।१९।

परब्रह्म के अतिरिक्त ब्रह्मलोक से लेकर सभी लोक पुनरावर्ती स्वभाव वाले हैं। ब्रह्मा का दिन १००० चतुर्युगी का तथा इतने ही अवधि की रात होती है। सभी दृश्य भूत ब्रह्मा का दिन आरम्भ होने पर मूल प्रकृति से उत्पन्न होते हैं तथा रात्रि आरम्भ होने पर पुन: उसी में लीन हो जाते हैं।

(३) सञ्चर अर्थात् सृष्टि का अर्थ है-

पुरुष+मूल प्रकृति ⟶ ७ प्रकृतिविकृति ⟶ १६ विकृति

इसकी विपरीत क्रिया प्रतिसञ्चर या प्रलय है-

१६ विकृति(११ इन्द्रियां+५स्थूल भूत) ⟶ ७ प्रकृतिविकृति ⟶ मूल प्रकृति

सञ्चर का कारण तम पर रज का अधिक प्रभाव है तथा प्रति-सञ्चर का कारण रज पर तम का प्रभाव है।

ब्रह्मसूत्र अध्याय ४, पाद २, सूत्र १-५ में कहा गया है कि प्रलय से ७ प्रकृतियां केवल वृत्ति रूप से लय होती हैं न कि स्वरूप से, जिस प्रकार स्वप्न में व्यक्ति अन्तर्मुख होकर अपने को भूल जाता है, नष्ट नहीं होता।

(४) सञ्चर तथा प्रतिसञ्चर मिलाकर एक चक्र है। विश्व की प्राय: सभी क्रियायें चक्र हैं या चक्रों का समन्वय हैं। शरीर का चक्र नाड़ी- स्पन्दन, श्वास-प्रश्वास, पाचन कर्म (अपचय), जीवन-मरण-जीवन आदि हैं। हर शक्ति स्थानीय या

गतिशील तरंग का कम्पन है। ता पमें कण अपने ही स्थान पर कम्पन करते हैं। शब्द या विद्युत् चुम्बकीय तरंग उद्गम से आगे बढ़ते जाते हैं, जिसके कारण गमन के मार्ग में जो माध्यम है , उसके कणों पर कम्पन का प्रभाव आगे बढ़ता है। दिन-रात भी प्रकाश-अन्धकार (रूप तन्मात्रा) का या सृष्टि-प्रलय का चक्र है। उसके कारण मनुष्य में जागरण-सुषुप्ति (मन इन्द्रिय) का चक्र है। परमाणु में उसकी नाभि के कणों का व्यवहार भी चक्रवत् है। समय के जितने माप दिन, वर्ष (ऋतु चक्र), युग-सभी सृष्टि-प्रलय के चक्र हैं।

(५) हर रासायनिक परिवर्तन दोनों दिशाओं में होता है। इच्छित दिशा को सञ्चर तथा विपरीत दिशा की क्रिया को प्रति सञ्चर कहा जा सकता है। परिस्थितियों के अनुसार कोई भी प्रतिक्रिया दिशा सञ्चर या रजोगुण अधिकता वाली मानी जायगी । उस क्रिया को सञ्चर दिशा में चलाने के लिये उपयुक्त ताप (स्पर्शतत्त्व), प्रकाश (रूप तत्त्व), दबाव (पृथ्वी तत्त्व) आदि होना चाहिये। इन तत्त्वों की मात्रा बदलने से प्रतिसञ्चर क्रिया अधिक होगी, जिसे प्रलय कहा जा सकता है।

(६) प्रलय नाम के कारण यह नहीं समझना चाहिये कि प्रतिसञ्चर अवाञ्छनीय है तथा केवल सञ्चर होना चाहिये। भागवत गीता, अध्याय ४ में कहा है-

अपाने जुह्वतिप्राण प्राणोऽपानेतथापरे।प्राणापानगती रुद्धाप्राणायाम परायणाः ।१९ ।
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति। सर्वेप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपित कल्मषः ।२० ।

अन्य लोग प्राण को अपान में तथा अपान को प्राण में हवन करते हैं। कई प्राण अपा न की गति को नियन्त्रित कर प्राणायाम करते हैं। यह सभी यज्ञ का ठीक रूप कर रहे हैं, जिससे उनके विकार नष्ट हो रहे हैं।

प्राण ६ प्रकार के हैं, शरीर ७ प्रकार के हैं, तथा विकार १६ प्रकार के हैं। इस प्रकार इन यज्ञों के कई प्रकार के अर्थ हैं। अन्नमय कोष के लिये प्राण का अर्थ है, अन्न से प्राप्त होने वाली शक्ति। भोजन के रूप में जो प्राण आता है, उसका अवशिष्ट अंश अपान वायु से मल के रूप में नष्ट होता है। इस प्रकार अन्न का विकार नष्ट हो गया। अन्नमय प्राण ग्लूकोज, वसा आदि के रूप में शरीर में संचित रहता है, वह प्राण का अपान में हवन है। जब शरीर की इन्द्रियां काम करती हैं, तो संचित शक्ति खर्च होती है, जो अपान का प्राण में हवन है। इससे शरीर स्वस्थ और क्रियाशील रहता है तथा कार्य का मल कार्बन डायक्साइड के रूप में बाहर निकलता है। वसा का कम होना भी मल निकलना है।

श्वास-प्रश्वास क्रिया भी प्राणमय कोष का एक यज्ञ चक्र है। प्राण रोकने से भी शरीर के अन्य चक्र क्रियाशील होते हैं। सबसे सूक्ष्म हवन-यज्ञ में विन्दु होकर विश्व की प्राण शक्ति आती है तथा कुण्डलिनी शक्ति ऊपर सहस्रार तक चढ़ती है।

(७) भौतिक विज्ञान के ऊष्मा-गतिजसिद्धान्त(Thermodynamics) के अनुसार जितनी भी यान्त्रिक क्रियाओं में उपयोगी कार्य होता है, वह चक्र में ही काम कर सकती हैं।

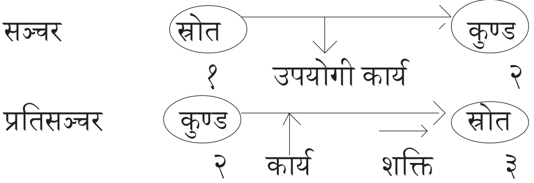

(८) इलेक्ट्रॉनिक तरंग(waves) उत्पन्न करने का बर्कहाउसेन नियम है कि क्रिया के प्रभावका कुछ अंश(Feedback)उसे चक्रवत् गति में लाने के लिये व्यवहारकिया जाता है।क्रिया के फल की समीक्षा या उसकी प्रतिक्रिया का अध्ययन शासन तथा व्यवसाय प्रबन्ध का मूल सिद्धान्त है।क्रिया=सञ्चर। प्रतिक्रिया=प्रतिसञ्चर।

(९) योगसाधना भी आधुनिक भाषा में पुन:प्रयोग (Feedback) तथा गीता की भाषा में अपान का प्राण में हवन है।योग-सूत्रों की संख्या बगल में है।

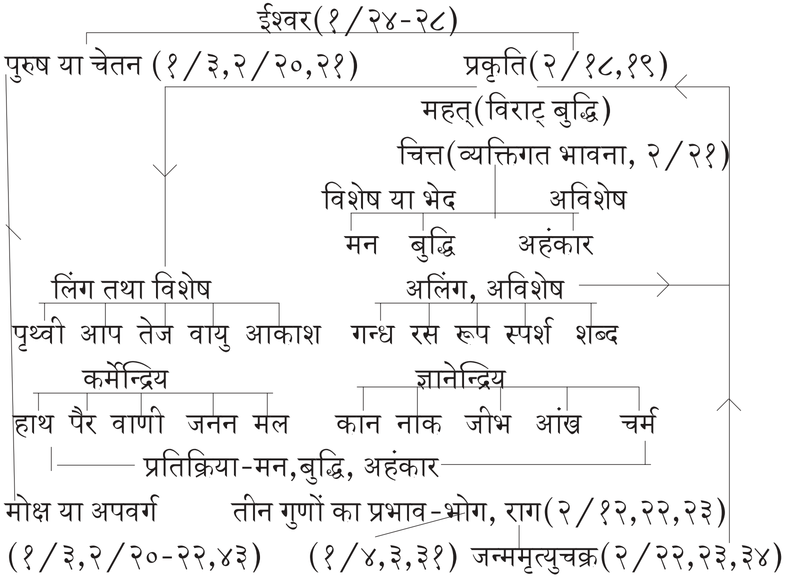

(१०) कभी -कभी सत्त्व, रज, तम का भेद करना मुश्किल होता है। किसी एक को सत्त्व मान कर बाकी को रज, तम माना जा सकता है। सृष्टि क्रिया के कारण ही प्रलय का आरम्भ होता है। रज बढ़ते बढ़ते तम में बदल जाता है।

ब्रह्माण्ड का विस्तार ब्रह्मा सत्त्व गुण है। पदार्थों के दूर हटने से उनका स्वतन्त्र अस्तित्व है। एक सौर मण्डल पर किसी दूसरे सौर मण्डल का प्रभाव प्राय: नहीं होता है , अत: उस सूर्य की कक्षा में ग्रह अबाधित होकर घूमते रहते हैं। इसी प्रकार परमाणु की नाभि के चारों ओर इलेक्ट्रानों की कक्षायें सम्भव हैं, वह निकट की कक्षा में रहकर परमाणु का आकार निर्धारित करते हैं। इसका कारण है कि ब्रह्माण्ड फैल रहा है और ठंढा हो रहा है।

सामान्यत: विश्व का कोई भी अंश छोड़ देने पर वह भेद(Order) से अभेद या बिखराव(Disorder) की स्थिति में जाने लगता है। थर्मोडायनामिक्स के अनुसार प्रकृति में इसका विपरीत सम्भव नहीं है। ज्यादा स्तरों में विभाजन (Order) ही जीवन के उच्च विकास का चिह्न है। यह प्रकृति के गुणों के कारण नहीं हो सकता। इसका कारण चेतन तत्त्व है जिसे विष्णु या रजोगुण नाम दिया गया है। रजोगुण के कारण किसी संहति की शक्ति खर्च होते होते वह निष्क्रिय अवस्था में पहुंच जाती है। सञ्चर-प्रतिसञ्चर की चक्रवत् क्रियाओं से काल का ज्ञान होता है। बार बार ऐसी क्रियाओं से पदार्थ भेदरहित बिखराव की अवस्था में पहुंच जाता है। अत: काल का अर्थ समय तथा मृत्यु (तमस) है। तमोगुण रूपी काल शिव का स्वरूप है।

७.अध्यात्ममधिभूतमधिदैवं च

शब्दार्थ-अध्यात्म=अधि+आत्मन्=आत्मा या व्यक्ति से सम्बन्ध रखनेवाला। अध्यात्मम् अव्यय है, जिसका अर्थ आत्मा से सम्बद्ध पदार्थ या परब्रह्म या आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध है।

आत्मन्=अत्+मनिण्। १.आत्मा, जीव, २.स्व, आत्म, ३.परमात्मा, ब्रह्म, ४.सार, ५.चरित्र विशेषता, ६.स्वभाव, ७.व्यक्ति, या समस्त शरीर, ८.मन, बुद्धि, ९.विचार शक्ति, १०.देखभाल, प्रयत्न, ११.सूर्य, अग्नि, या वायु। अधि उपसर्ग का अर्थ है ऊपर उठना, अधिकता, आधारित। अत: अध्यात्म का अर्थ हुआ आत्मा, व्यक्ति, शरीर या स्वभाव से सम्बन्धित, उन पर आधारित या निर्भर क्रिया, फल, गुण आदि।

अधिभूत-भूत का अर्थ जो निर्मित या हो चुका है। जो कुछ निर्माण है, ठीक या

बीता हुआ वह भूत है। संज्ञा रूप में इसका अर्थ है-१.शिव, २.प्राणी, जीव, ३.प्रेत, भूत, पिशाच, दानव, ४. पांच महातत्त्व, ५.अतीत, ६.संसार, ७.कुशल-क्षेम। अधिभूत का अर्थ भूत का आधार है, अर्थात् परमेश्वर या उसका प्रभाव है। अन्य अर्थ है जड़ तत्त्वों पर आधारित गुण, क्रिया या फल।

अधिदैव-दैव का अर्थ देव से सम्बन्धित या भाग्य है। देव का अर्थ देवता, इन्द्र, दिव्य पुरुष, शासक, सम्मानित उपाधि आदि है। अधिदैव का अर्थ हुआ देवताओं पर आधारित।

'च' का अर्थ है, इतने ही तीन भेद सृष्टि या दु:ख आदि के हैं।

व्याख्या-पिछले सूत्र की संगति से इस का अर्थ सृष्टि का प्रकार है। सामान्यत: इन शब्दों का व्यवहार तीन प्रकार के दु:खों के लिये होता है, जैसे-

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज्य नहिं काहुहि व्यापा।।

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड)

अन्तिम तत्त्व-समास सूत्र में भी त्रिविध दु:ख का उन्मूलन ही सांख्य का फल कहा गया है। शिव की प्रार्थना इसी प्रकार की जाती है-

त्रय: शूल निर्मूलनं शूलपाणि:।(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड)

मीमांसा दर्शन में आत्मा को सुख-दु:ख की उपाधि से घिरा हुआ माना जाता है। शैव दर्शन में इसे मल कहा गया है, जो चैतन्य रूपी सुवर्ण को ढंक लेता है। ईशावास्योपनिषद् में भी है-हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

शैव दर्शन का मल तीन प्रकार का है-आणव मल, मायीय मल, तथा काम मल। यह तीन प्रकार के दु:खों के समान है-आध्यात्मिक या व्यक्तिगत, आधिदैविक तथा आधिभौतिक।

भगवद्गीता, अध्याय ८ में तीन प्रकार के कर्मों केरूप में इन शब्दों का प्रयोग है-

किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम। अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।१।
अधियज्ञ: कथं कोऽत्र देहेस्मिन् मधुसूदन।२।
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्म उच्यते। भूतभावोद्भवकरो विसर्ग: कर्म संज्ञित:।३।
अधिभूतं क्षरो भाव:पुरुषस्याधिदैवतम्। अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर।४।

अर्थात् ४ प्रकार के कर्म हैं-१.अध्यात्म-अक्षर परम ब्रह्म का स्वभाव, अहंभाव। २.अधिभूत-वस्तुओं में भूतभाव समझना। ३. अधिदैव-क्षर पुरुष या देव भाव। ४.अधियज्ञ-देह और देही एक ही परम पुरुष हैं।

प्रथम तीन प्रकार के कर्मों से तीन प्रकार के दु:ख होते हैं।
सांख्य सूत्र १/१ इन दु:खों के वर्णन से ही आरम्भ होता है-
अथ त्रिविध दु:खात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थ:।
तीन प्रकार की सृष्टि का वर्णन तैत्तिरीय उप.शिक्षावल्ली, अनुवाक् ७ में है-
पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिश:। अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमानक्षत्राणि। आप ओषधयो वनस्पतय आकाश आत्मा। इत्यधिभूतम्। अथाध्यात्मम्। प्राणो व्यानोऽपान उदान: समान:।चक्षु: श्रोत्रं मनो वाक् त्वक्। चर्म मांसं स्नावास्थि मज्जा।एतादधिविद्याय ऋषिरवोचत्।पांक्तं वाइदं सर्वम्।पांक्तेनैव पांक्तं स्पृणोतीति।

आधिभौतिक और आध्यात्मिक अथवा विराट् और पिण्ड दोनों का सम्बन्ध है। दोनों की ३-३ श्रेणियां हैं तथा प्रत्येक के ५-५ अंग हैं। बाह्य भौतिक जगत् के ३ विभाग हैं-अधिलोक, अधिज्योतिष, अधिभूत। इनके ५-५ अंग (पांक्त) हैं-
अधिलोक-पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौ, दिशायें, अन्तर दिशायें।
अधिज्योतिष-अग्नि,वायु,आदित्य,चन्द्र, नक्षत्र (वायु विद्युत्चुम्बकीय विकिरण है)
अधिभूत-जल, औषधियां,वनस्पतियां, आकाश, आत्मा (अन्त:करण)।
आध्यात्मिक के ३ स्तर तथा पांक्त हैं-
अधिप्राण-प्राण, व्यान, अपान, उदान, समान।
अधिदैव-चक्षु, श्रोत्र, मन, वाक्, त्वचा।
अधिदेह-चर्म, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा।
यहां के तीन स्तर हैं-आध्यात्मिक,(तीनों स्तर), अधिभूत तथा अधिदैव (अधिलोक+अधिज्योतिष)
इन सृष्टियों के कर्मो के सम्बन्ध से तीन प्रकार के दु:ख हैं (या सुख)-
आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक।
आध्यात्मिक ३ प्रकार का है-शारीरिक या अधिदेह, मानसिक या अधिप्राण और अधिदैव।
शरीर का बलवान, फुर्त्तीला तथा स्वस्थ होना शारीरिक सुख है। शरीर का दुर्बल, अस्वस्थ, और रोगी होना शारीरिक दु:ख है। शुभ संकल्प, शान्ति, वैराग्य आदि मानसिक सुख हैं। ईर्ष्या, तृष्णा, शोक, राग आदि मानसिक दु:ख हैं।
आधिभौतिक सुख दूसरे प्राणियों से मिलता है-जैसे गौ आदि से दूध, घृत, घोड़े आदि से सवारी का, आधिभौतिक तथा दु:ख सर्प, बिच्छू आदि के काटने से होता

है। आधिदैविक सुख प्रकाश वृष्टि आदि से होता है। आधिदैविक दु:ख अतिवृष्टि और बिजली आदि के गिरने से होता है।

८.पञ्चाभिबुद्धय:

अर्थ-अभिबुद्धि=बुद्धि या ज्ञान की इन्द्रिय। यहां इस का अर्थ बुद्धि की वृत्ति किया जाता है।

व्याख्या-(१) पातञ्जल योग सूत्र, समाधि पाद में वृत्ति का अर्थ चित्त वृत्ति ही कहा गया है। सूत्र २ में योग का उद्देश्य ही चित्त की वृत्तियों का निरोध बताया गया है-योगश्चित्तवृत्ति निरोध:।

सूत्र ५-११ में वृत्तियों के भेद तथा उनकी परिभाषा दी गयी है -

वृत्तय: पञ्चतय्य: क्लिष्टाक्लिष्टा: ।५।

वृत्तियां ५ प्रकार की हैं। ये सभी क्लिष्ट (दु:खद) या अक्लिष्ट (सुखद) हो सकती हैं। चित्त की साम्यावस्था में गुणों के कारण अन्तर या विक्षेप होता है, वही वृत्ति है। प्रकृति के कारण क्लिष्ट वृत्तियां होती हैं, पुरुष उन्हें अक्लिष्ट बनाने की चेष्टा करता है।

प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतय: ।६।

वृत्तियों के कारण हैं-१.प्रमाण, २. विपर्यय, ३.विकल्प, ४.निद्रा, ५.स्मृति।

प्रत्यक्षानुमानागमा: प्रमाणानि।७।

प्रमाण या सम्यक् ज्ञान ३ प्रकार से होता है-प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम या शास्त्र।

विपर्ययोमिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम् ।८।

विपर्यय का अर्थ मिथ्याज्ञान है जो पदार्थ को उसके प्रतिष्ठित रूप में नहीं देखता है।

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्प: ।९।

विकल्प सिर्फ शब्दजाल है , जिसका स्पष्ट अर्थ नहीं है।

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ।१०।

विचारों तथा ज्ञान का सहज अभाव निद्रा है।

अनुभूत विषयासम्प्रमोष: स्मृति: ।११।

पुराने अनुभव किये गये विषयों का पुन: विचार स्मृति है।

(२) यहां प्रकृति के तत्त्वों में प्रकृति ह्न महान् ह्न अहंकार —
- ५ तन्मात्रा(तम)
- मन+१० इन्द्रिय(रज)
- ५ भूत (सत्त्व)

कहे गये हैं। इनमें चित्त या बुद्धि की चर्चा नहीं है। महान् पदार्थ का बाहरी या

सम्पूर्ण स्वरूप है, अहंकार भीतरी गुण है। इसे आधुनिक उष्मा-गतिकी (Thermodynamics) या व्यवस्था सिद्धान्त (System Theory) में बाह्य गुण (Extrinsic) तथा अन्तः गुण (Intrinsic Quality) कहते हैं। यहां गुण का अर्थ प्रवृत्ति या दृश्य लक्षण है। भीतरी वृत्ति, लक्षण या गुण को अन्त:करण या चित्त कहा गया है। तीन अन्त:करण या चित्त हैं-मन, बुद्धि, अहंकार। इसमें शुद्ध अहंकार की कोई वृत्ति नहीं है, या उसके २१ रूपों की वृत्ति कहना सम्भव नहीं है। चित्त में मन तथा बुद्धि की वृत्तियां होती हैं। बुद्धि की वृत्तियां ५ ऊपर कही गयीं तथा मन की वृत्तियां २ हैं-सुख (अक्लिष्ट) तथा दःुख(क्लिष्ट)।

सांख्य सूत्र २/३३ भी पातञ्जल सूत्र १/५ ही है-

वृत्तय; पञ्चतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाश्च।

इसकी व्याख्या वेदान्ति महादेव, विज्ञान भिक्षु तथा नागेश भट्ट ने बुद्धि वृत्ति के रूप में की है, जो इस समास सूत्र में प्रयुक्त है। इसे योग में चित्त वृत्ति कहा गया है जो वस्तुतः एक ही है। सांख्य कारिका में ३ प्रकार के अन्त:करण कहे गये हैं। सां.का.३७ में बुद्धि कोसर्वोच्च करण माना गया है, अर्थात् वृत्ति या कार्य में यही समर्थ है।

सांख्यकारिका ३३-अन्त:करणं त्रिविधं दशधा बाह्यं ....

!! ३७-सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात् पुरुषस्य साधयति बुद्धिः।
सैव स विशिनष्टि पुनः प्रधान पुरुषान्तरं सूक्ष्मम्॥

अर्थात् ३ अन्त:करण तथा १० बाह्य (करण) हैं।

बुद्धि पुरुष के सभी भोग सम्पादित करती है तथा प्रकृति पुरुष का सूक्ष्म भेद प्रकट करती है (अतः बुद्धि सर्वोच्च करण है)।

(३) भावागणेश ने इस सूत्र का अर्थ इस प्रकार किया है-

अभिबुद्धि, अभिमान, इच्छा, कर्त्तव्यता, क्रिया-५ अभिबुद्धि हैं।

अभिबुद्धि का अर्थ अभिमुखी बुद्धि है , अर्थात् यह अवश्य करना है, इस प्रकार का संकल्प। मैं करता हूं- यह वृत्ति अभिमान है। संकल्प का मूल या आरम्भ इच्छा है। ज्ञानेन्द्रियों की शब्द आदि विषयों में वृत्ति को कर्त्तव्यता कहते हैं। वचन आदि लक्षण वाली कर्मेन्द्रियों की वृत्ति को क्रिया कहते हैं।

सर्वोपकारिणी वृत्ति (अज्ञात) के अनुसार इसका अर्थ है-

बुद्धि से जिसका ज्ञान होता है वह अभिबुद्धि है। इस प्रकार अभिबुद्धि का अर्थ

बुद्धीन्द्रिय या ज्ञानेन्द्रिय हैं। इनकी संख्या ५ है तथा उनसे ज्ञात होने वाले तत्त्व या तन्मात्रायें भी ५ हैं।

अभिबुद्धि---	आंख	कान	नाक	जीभ	त्वचा
उनसे ज्ञात तत्त्व-	रूप	शब्द	गन्ध	रस	स्पर्श

इस व्याख्या के अनुसार अगले सूत्र का पाठ 'पञ्चकर्मयोनयः' है, तथा अर्थ ५ कर्मेन्द्रियां किया गया है, किन्तु प्रायः यही अर्थ ११वें सूत्र -पञ्चकर्मात्मानः- का है, अतः उचित नहीं लगता।

९.पञ्चदृग्योनयः

शब्दार्थ-दृग् या दृक्-दृश् धातु का अर्थ देखना तथा ज्ञान के अर्थ में है। पाणिनि सूत्र -दृशेः क्वनिप्(३/२/९४)-दृशेरनालोचने कङ् च-इसमें 'श्' का देखने तथा विचार करने के अर्थ में 'क्' भी हो जाता है। देखने के अर्थ में इसका रूप पश्य भी होता है। परवर्त्ती अक्षर के अनुसार 'क्' का 'ग्' होता है। इसका अर्थ दिव्य चक्षु (ज्ञान) से देखना भी है, जैसे गीता, अध्याय ११ में है-

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा। दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।८।
अपश्यद् देवदेवेश शरीरे पाण्डवस्तदा।१३।

मानसिक ज्ञान के अर्थ में- आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः(बृहदारण्यक उप.२/४/५)

योनि (यु+नि)-यु का अर्थ है-१मिलना या मिलाना, २.अलग-अलग करना, ३.बान्धना, मिलना(अदादि, जुहोत्यादि तथा क्र्यादि गणों में)। नि का अर्थ प्रायः उपसर्ग रूप में है-समूह, आश्रय, बुराई, दिखाना, नीचे की ओर गति, सन्देह, निश्चय आदि है। योनि का अर्थ हुआ-१.गर्भाशय, २.मूल स्थान, उद्गम या कारण-सा योनिः सर्व वैराणां सा हि लोकस्य निर्ऋतिः (उत्तर रामचरित ५/३०, कुमारसम्भव २/९,४/४३), ३.खान, ४.आवास, आधार या पात्र, ५.घर, ६.कुल, वंश, गोत्र, मनुष्य योनि, ७. जल।

अन्य अर्थ-१.योनि ऋग्वेद की वह आधार-भूत ऋचा है , जिस पर साम का निर्माण हुआ। २. ताम्बा (तमोगुण), ३.ज्ञान का स्रोत-

योनिर्ज्ञप्तिकारणं-वेदोऽखिलो धर्ममूलं-मीमांसा सूत्र २/२२ पर शाबर-भाष्य।

अतः दृग्योनि का अर्थ हुआ देखना-ज्ञान-अनुभव का मूल कारण। दूसरा अर्थ है दृग् या अनुभव का समूह।

व्याख्या-(१) दृग्योनि अर्थात् ज्ञान के स्रोत (ज्ञानान्द्रियां) पांच हैं-
नेत्र, श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वचा। इनसे रूप, शब्द, गन्ध, तथा स्पर्श का ज्ञान होता है।
(२) सांख्य-तत्त्व-विवेचन तथा तत्त्व-याथार्थ-दीपन आदि में इस सूत्र का पाठ- 'पञ्च कर्मयोनय:'-दिया है। कर्म से उत्पन्न तथा कर्म को उत्पन्न करने वाली दोनों अर्थ में कर्मयोनि ५ हैं-धृति, श्रद्धा, सुखा, अविदिषा तथा विविदिषा।
धृति-जो वाणी कर्म तथा सङ्कल्प में प्रतिष्ठित है।
श्रद्धा-इसके लक्षण हैं-अनसूया, ब्रह्मचर्य, यजन, याजन, तप, दान, प्रतिग्रह ,होम।
सुखा-किसी उद्देश्य के लियेविद्या, कर्म और तप का आचरण करना तथा भूलों का सुधार करना।
अविदिषा-वेद ज्ञान की इच्छा में प्रतिबन्धक क्रिया।
विविदिषा-यह अचेतन एकत्व, पृथकत्व, नित्य, सूक्ष्म, सत्कार्य और अक्षोभ्य है-यह जानने की इच्छा। केवल यही मोक्ष का कारण हैं, बाकी ४ कर्म-योनियां बन्धन करती हैं।

१०.पञ्च वायवः

अर्थ-वायु=वा+उण् या युक्। १.हवा, पवन, २.पवन मार्ग ७ प्रकार के हैं-
आवह, प्रवह, संवह, उद्वह, विवह, परिवह, परावह।
३.वायु देव, ४. जीवन का आधार या शक्ति, ५ प्रकार की-
प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान।
५.वात प्रकोप या वात रोग, ५. इसके समानार्थक मरुत् के ४९ भेद कहे जाते हैं।
व्याख्या-(१) अग्नि, प्राण, वायु, मरुत्-इन्हें प्राय: समानार्थक शब्दों के रूप में वेदों में व्यवहार किया गया है। सभी शक्तियां तथा क्रियायें प्राण का ही रूप हैं। परिचय केलिये प्राण को शक्ति (Force,energy) कहा जा सकता है, जो अत्यन्त सूक्ष्म है। वही शक्ति जब स्थूल रूप से विकसित होती है तो उसे राशि या पदार्थ (matter) कहते हैं।

प्राण की दो जातियां पायीं जाती हैं-आग्नेय प्राण तथा सौम्य प्राण। सोम सर्वत्र व्यापक है (Energy field, force field)। किसी स्थान पर उसका इकट्ठा रूप अग्नि (potential energy) या आन्तरिक उर्जा है। बाहर से सोम आये या आन्तरिक उर्जा से क्रिया हो वह वाक् है। वाक् से व्यापक सोम में

विचलन(vibration, fluctuation) होता है। प्राण की अधिकता अग्नि है, वाक् की अधिकता का क्षेत्र सोम है-दोनों का सन्तुलन मन है।

(२) सोम तथा औषधि-सोम से ओषधि उत्पन्न होती है-

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वस्त्वपो अजनयंस्त्वगाः।(ऋक् सं. १/९१/२२)

जिसका पौधा शीघ्र नष्ट हो तथा फल देर तक ठहरे वह ओषधि है-ओषधयः फलपाकान्ताः। फलों के पकते ही पौधा नष्ट हो जाता है-जैसे जौ, गेहूं, चावल आदि। वनस्पति का पौधा स्थायी है, किन्तु फल नष्ट हो जाता है-जैसे आम, अमरूद आदि। अतः ओषधियों में सोम प्रधान है, जो बल देता है। वनस्पतियों में अग्नि प्रधान है, जो बुद्धि देता है।

इस प्रकार प्राण ओषधि है, जिसका प्रयोग ४ प्रकार से होता है-

(क) आथर्वणी-अथर्वा=अ+थर्वा-अर्थात् जिसका चित्त स्थिर हो -चित्त को स्थिर कर जो चिकित्सा होती है। मन्त्र बल, मनोवैज्ञापिक या ध्यान से, कुछ अंश में होमियोपैथिक दवा।

(ख) आङ्गिरसी = अंगी, अवयवों या इन्द्रियों के रस से। जल, रक्त, या सूई (Injection) से द्रव पहुंचा कर। शल्य क्रिया।

(ग) दैवी-आप, तेज, वायु आदि देवों द्वारा। जल चिकित्सा, सौर चिकित्सा, ताप, किरणों से (Infrared), विद्युत्-चुम्बक शक्ति, कम्पन (Mechanical vibration) आदि।

(घ) मनुष्यजाः-मनुष्य द्वारा बनायी दवायें।

(३) सृष्टि क्रम में प्राण- शतपथ ब्राह्मण (६/१/१/१) के अनुसार-

असद्वा इदमग्र आसीत्। तदाहुः किं तदसदासीत् इति। ऋषयो वाव तेऽग्रे सदासीत्। तदाहुः के ते ऋषय इति। प्राणा वा ऋषयः।

असत् के बाद जब पदार्थ तथा शक्ति व्यक्त रूप में आये तो शक्ति के प्रथम रूप को ऋषि कहा गया जो प्रथम प्राण हुआ।

मनुस्मृति के अनुसार(३/२०१)-

ऋषिभ्यःपितरो जाताः पितृभ्यो देव दानवाः।देवेभ्यश्च जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः।

अर्थात् ऋषि प्राण से पितृ प्राण--देव तथा असुर प्राण। बृहदारण्यक उप. में याज्ञवल्क्य ने देव असुर के बाद गन्धर्व प्राण तथा उसके बाद मानव प्राण, पशु प्राण आदि कहा है। यह प्राणियों के विकास की श्रेणियां हैं ,जिन्हें १४ प्रकार का भूतसर्ग

कहा गया है। इनके अवान्तर भेद हैं -ऋषि ७, पितृ ८, देव ३३, असुर ९९, पशु ५, गन्धर्व २७।
(४) पुरुष की कलायें-सांख्य में पुरुष का अर्थ चेतन तत्त्व है। विभिन्न प्राणियों में चेतन तत्त्व की मात्रा के अनुसार १६ कलायें हैं। स्थायी कला के अतिरिक्त घटने बढ़ने वाली १५ मलायें चन्द्रमा की १५ कलाओं के समान हैं। व्यक्ति रूप में पुरुष का अर्थ है, पुर में शयन करने वाला अर्थात् एक परिधि में सीमित। विराट् पुरुष एक ही है और सर्वत्र व्याप्त है; वह परात्पर पुरुष हुआ। चयन के अनुसार उसके ३ रूप हैं-(१) जहां केवल स्थान का परिच्छेद हुआ है, बलों का चयन नहीं, वह उत्तम पुरुष या अव्यय पुरुष कहलाता है। (२) बलों पर बलों का चयन (अलग-अलग) होने पर वह अक्षर पुरुष कहलाता है। (३) बलों की ग्रन्थि पड़ जाने पर वह क्षर पुरुष कहलाता है जो प्रपञ्च (दृश्य जगत्) के रूप में परिणत होता है। क्षर-अक्षर विभाग का वर्णन गीता ८वें अध्याय अक्षर-ब्रह्म योग में तथा उत्तम पुरुष का वर्णन १५वें पुरुषोत्तम योग में किया गया है।
अव्यय पुरुष की ५ कलायें हैं-आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण, वाक्।
अक्षर पुरुष प्राण प्रधान या क्रिया प्रधान है। इसकी कलायें ईश्वर कहलाती हैं-ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सोम, अग्नि।
क्षर पुरुष की अक्षर की सहायता से ५ कलायें होती हैं-प्राण, आप, वाक्, अन्न, अन्नाद।
शतपथ ब्राह्मण काण्ड ६ में इनकी उत्पत्ति का क्रम आधिदैविक तथा उसकी दो धारायें आधिभौतिक और आध्यात्मिक बतायी हैं। आधिदैविक में इनका वही नाम है जो अक्षर पुरुष की कलायें हैं-ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सोम, अग्नि।
आधिभौतिक रूप में ५ मण्डल हैं-स्वयम्भू, परमेष्ठी, सौर, चान्द्र, भू।
इनके परस्पर संयोग से उत्पन्न होने वाले प्राणी शरीरों की ५ कलायें हैं-बीज चिति (कारण शरीर), देव चिति (सूक्ष्म शरीर), भूत चिति (स्थूल शरीर), प्रजा (सन्तति), तथा वित्त (सम्पत्ति)। इनकी मूल कलायें क्षर पुरुष की ही कलायें हैं-प्राण, आप्, वाक्, अन्न, अन्नाद।
(५) प्राण तथा वायु-प्राण शक्ति है; उसके एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने का नाम वायु है। प्राण के सञ्चार का माध्यम भी वायु या पवन कहलाता है। माध्यम अनित्य होने से अनिल भी कहलाता है। ५ मण्डल तथा उनके आकाशों को मिलाकर

७ लोक हैं। उनके शक्ति सञ्चार के माध्यमों के अनुसार ७ वायु है-

भूवायुरावह इह प्रवहस्तदूर्ध्वः स्यादुद्वहस्तदनु संवह संज्ञकश्च।
अन्यस्ततोऽपि सुवहः परिपूर्वकोऽस्याद्‌बाह्यः परावह इमे पवनाः प्रसिद्धाः।
(सिद्धान्त शिरोमणि, गोलाध्याय, मध्यगति वासना)

यहां वायुमण्डल के विभिन्न स्तरों के नाम हैं-१.आवह, २.प्रवह, ३. उद्‌वह, ४.संवह, ५.सुवह, ६.परिवह, ७.परावह। यहां पृथ्वी का वायुमण्डल आवह है, जिसमें धूम-ज्योति-सलिल-मरुत् का सन्निपात मेघ है (कालिदास का मेघदूत,५)। प्रवह नामक स्कन्ध वायु-मण्डल के बाद सूर्यमण्डल तक है। सूर्य के आकर्षण में ग्रह चलते हैं। अतः ज्योतिष ग्रन्थों में इस वायु को ग्रह गति का कारण कहा गया है। उद्वह सूर्य-मण्डल से चन्द्र मण्डल तक है। उद्वह का अर्थ ऊपर उठना है। यह सूर्य से निकलनेवाली वायु, प्रकाश का दबाव (Radiation pressure), अंगारे आदि हैं, तथा वस्तुतः सूर्य का वायुमण्डल है। सौर मण्डल के ग्रह प्रवह में हैं। नक्षत्र मण्डल तक संवह है, जो आकाशगंगा का बाहरी वायुमण्डल है, जिसमें उसके सूर्य आदि तारे हैं (महः लोक)।सुवह या विवह पांचवां मण्डल है जो आकाशगंगा का आकर्षण है (जनः लोक)। पुराणों में यह नक्षत्र मण्डल के ऊपर ग्रहों (या तारों) के मण्डल तक कहा गया है। उसके ऊपर सप्तर्षि मण्डल(दो आकाशगंगाओं के बीच का आकर्षण क्षेत्र) तक परिवह है। ध्रुव मण्डल तक का परावह है जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है।

(६) वायु तथा मरुत्-वायु के कारण अन्य पदार्थों पर जो दृश्य प्रभाव होता है, वह मरुत् कहलाता है। यह प्रति वायु-मण्डल में ७-७ माने गये हैं, इसलिये ४९ होते हैं। वायु अग्नि का ही गति रूप है, अतः अग्नि के भी ४९ रूपों का वर्णन वायु पुराण अध्याय २९- अग्निवंश में है। ६७ वें अध्याय काश्यपीय प्रजा-सर्ग में कहानी के रूप में ४९ मरुतों का वर्णन है। इन्द्र द्वारा बलि के वंशजों की हत्या कर बाण की राजधानी लोहित्यपुर पर अधिकार होने पर दिति ने कश्यप से इन्द्रहन्ता पुत्र की प्रार्थना की। कश्यप ने उसे सौ वर्ष तक व्रत पालन करने को कहा। इन्द्र ने उसका दोष देखने के लिये सौतेली माता दिति की सेवा की। एक दिन मध्याह्न में इन्द्र के सेवा करते समय दिति उनके दोनों पैरों पर सिर रखकर सो गयी। बाल बिखरने पर इन्द्र ने अशुद्ध दिति के गर्भ में प्रवेश कर गर्भ को ७ टुकड़ों में काटा। जब गर्भ रोने लगा तो इन्द्र ने उसे कहा मत रो (मरुत्), अतः उसका नाम मरुत् पड़ा। फिर उन सभी को ७-७ भागों में काटा। इस प्रकार ४९ मरुत् हुये। प्रति वायु के मरुत् इस

प्रकार हैं(वायु पुराण ६७/१२२-१३०)-
१.सत्त्वज्योति,आदित्य,सत्यज्योति,(अपर?)तिर्यक् ज्योति, सज्योति,ज्योतिष्मान्।
२.ऋत्‌जित्, सत्यजित्,सुषेण, सेनजित्, सत्यमित्र, अभिमित्र, हरिमित्र।
३.ऋत, सत्य, ध्रुव, धर्ता, विधर्ता, विधारय, ध्वान्त।
४.धुनि, उग्र, भीम, अभियु, साक्षिप, आह्वय-
५.ईदृक्,अन्यादृक्,प्रतिकृत्,यादृक्, ऋक्,समिति,संरम्भ।
६.ईदृक्,पुरुष, अन्यादक्ष,चेतस्,समिता,समिवृक्ष,प्रतिदृक्ष।
७.मरुतिद्,सरत, दिश,यजु,अनुदृक्,साम, मानुषाविश,(दैत्य,देव-पूर्व के)
यहां अदिति तथा दिति के बारे में बहुत मतभेद हैं। अदिति का अर्थ अखण्ड या अदित्य है। अदितिः-न दीयते खण्ड्यते इहत्वात्। ताण्ड्य महाब्रा.-दातुं छेत्तुं न योग्यायां पृथिव्यां। उसका उलटा अर्थ देव है। प्राण अर्थ में शक्ति का जो अखण्ड रूप या प्रवाह है, वह अदिति है। पदार्थ, घर्षण, अवरोध आदि से जो अलग-अलग स्थानों में विभक्त हो जाता है, वह दिति है। इस प्रकार दिति के सोने से या उसका समप्रवाह बन्द होने से वायु में कहीं प्रचण्ड प्रवाह, कहीं विद्युत्, कहीं उसका अभाव आदि होने से मरुत् के भेद उत्पन्न हो जाते हैं। नक्षत्रों में पुनर्वसु का देवता अदिति माना जाता है। उसके नाम से लगता है कि पुनर्वसु नक्षत्र में सूर्य जाने से (या पूर्णिमा का चन्द्र जाने से जिसको देखा जा सकता है) वर्ष का आरम्भ होता है। पुराना वर्ष समाप्त होता है। सम्वत्सर के अखण्ड क्रम (अदिति) का द्योतक है-अदितिर्जातम् अदितिर्जनित्वम्(शान्तिपाठ, या ऋग्वेद १०/७२/४)में है कि अदिति से दक्ष तथा दक्ष से अदिति हुआ। दक्ष अदिति रूप संवत्सर के विभाग हैं जिनसे कर्म का विभाजन होता है। या आकाश रूप अदिति होने से राशि-चक्र के विभाग हैं। दोनों ही अर्थों में १२ महीने के सूर्य के रूप में १२ आदित्य हैं, जो वस्तुतः एक ही हैं (आदित्य अर्थ)। इस अखण्ड तत्त्व से आदि होने के कारण भी आदित्य है। मनुष्य जाति में समता का व्यवहार करने वाले आदित्य हैं तथा स्वामी-दास, राजा-प्रजा, पुरुष-स्त्री आदि में भेद करने वाले दैत्य हैं। दिति से उत्पन्न ४९ मरुतों की तरह दृश्य जगत् में ५० प्रकार के विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि तथा सिद्धि हैं (एक मूल तत्त्व मिला कर)। इनका वर्णन अगले सूत्रों में है।
७.ऋषि रूप में शरीर प्राण-शतपथ ब्राह्मण (६/१/१/१) में लिखा है कि प्राण ७ रूपों में विभक्त है-२-२ मिलकर ४ मध्य में हैं, २ पक्षियों में पक्ष पैदा करते

हैं, एक पुच्छ या आधार रूप में नीचे लटकता है। इन सातों का सार भाग श्री रूप से ऊपर निकलता है, अत: उसे शिर कहा जाता है। मनुष्य शरीर के चारों विभागों में ७-७ प्राण तथा उनके सिर हैं-

शिरोगुहा -२ आंख + २ नासिका छिद्र में -४ आत्मा स्थान में हैं। २ कान पक्ष रूप में बाहर निकले हैं। एक मुख पुच्छ रूप में नीचे है। इन सातों की श्री से सबका सार भाग ब्रह्मरन्ध्र है जिसका सूर्य प्राण से आवागमन का सम्बन्ध है, तथा उस पर ध्वज रूप शिखा रखी जाती है।

उरोगुहा-२ फुफ्फुस (फेफड़ा)+ २ स्तन=४ आत्मा स्थान में हैं। पक्ष रूप से २ हाथ बाहर निकले हैं। पुच्छ रूप हृदय नीचे लटका हुआ है। सातों की श्री कण्ठ रूप है। वहां मुख्य प्राण है, जिस पर आघात लगते ही मृत्यु होती है।

उदर गुहा-२ क्लोम+२ यकृत् (प्लीहा)=४ आत्मा स्थान में हैं। २ पार्श्व (आमाशय तथा आन्त्र) पक्ष रूप में बाहर हैं। इनका पुच्छ नाभि है। इनकी श्री हृदय है जो पिछले गुहा का पुच्छ है।

पाद गुहा में-२ मूत्रेन्द्रिय +२ अण्डकोष = ४ आत्मा स्थान में हैं। पक्ष स्थान में २ पैर हैं। पुच्छ रूप में मलत्याग की इन्द्रिय है। सातों की श्री मस्तक स्थानीय नाभि है जो पिछले भाग का पुच्छ है।

सप्तर्षि मण्डल के तारों की स्थिति भी इसी प्रकार है। इनकी श्री रूप में ८ वां ध्रुव तारा है।

८.शिवरूपी प्राण-शवरूपी शिव में शक्ति आने से वह शिवरूप होता है। अग्निप्रधान वायु रुद्र है, वह अन्तरिक्ष या भुव: में है। यह उपद्रावक या रोगजनक है, अत: रौद्र वायु है। परमेष्ठी मण्डल की सोम प्रधान वायु शान्तिप्रद होने से साम्ब-सदाशिव है। अम्ब का अर्थ जल भी है।

पञ्चमुखी शिव के रूप में ५ मुख्य प्राण शरीर में हैं, जो आकाश के ५ तत्त्व रखते हैं। सप्तर्षि तथा ध्रुव,या ७ लोक तथा एक मुख्य मिलाकर ८ प्राण कहे जाते हैं। ये शरीर के ७ चक्रों, ७ धातुओं के अनुरूप हैं-इस रूप में शिव को अष्टमूर्त्ति कहा जाता है। ११ रुद्रों के रूप में १० प्राण तथा आत्मा हैं। तीन लोकों के रूप में ३ मुख्य प्राण तथा ३ अग्नियां हैं।

९.शरीर के प्राण भेद-३ मुख्य प्राणों के सम्बन्धित तत्त्व हैं-

लोक-	भू:	भुव:	स्व:
प्राण-	प्राण	अपान	व्यान
तत्त्व-	अग्नि	वायु	आदित्य
मण्डल -	मूलाधार स्वाधिष्ठान	मणिपूर अनाहत	विशुद्धि आज्ञा
नाड़ी -	इड़ा	पिङ्गला	सुषुम्ना
क्रिया-	श्वास क्रिया	मलमूत्र त्याग	शरीर का पोषण

पांच प्राण हैं-प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान। इनके साथ ५ उपप्राण मिलकर शरीर की १० मुख्य नाड़ियों से सम्बन्धित हैं। ५ प्राणों के स्थान हैं- प्राण-हृदय। अपान-गुदा। समान-नाभि। उदान-कण्ठ। व्यान-सम्पूर्ण शरीर।

दस मुख्य नाड़ियां- इड़ा-वाम श्वास। पिङ्गला-दाहिने श्वास में। मध्य श्वास में सुषुम्ना। पूषा-दक्षिण कर्ण। यशस्विनी-वाम कर्ण। मुख में अलम्बुषा। लिङ्ग में कुहू। गुदा में शंखिनी।

प्राण वायु प्राण का विसर्ग कर पुन: पूर्ण करता है, श्वास-प्रश्वास रूप से हृदय में है। यह निश्चित अवधि के बाद प्रयाण करता है, अत: प्राण है।

अपान वायु मनुष्यों का आहार नीचे ले जाता है, मूत्र तथा वीर्य प्रवाहित करता है। अत: इसका नाम अपान है।

समान वायु खाये-पिये या सूंघे हुये अन्न को तथा उससे बने रक्त-पित्त-कफ-वायु को समान रूप से सभी अङ्गों में पहुंचाता है। अत: समान नाम है।

उदान वायु शरीर के ऊपरी भाग अधर और मुख में स्पन्दन लाता है, नेत्रों में लालिमा तथा मर्म उद्विग्न करता है, अत: उदान नाम है।

व्यान वायु अङ्गों को झुकाता है, कण्ठ में वायु रोकता है तथा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है।

नाग वायु-डकार। कूर्म वायु-आंख खोलना। कृकर वायु-भक्षण करना। देवदत्त-निद्रा, तन्द्रा। धनञ्जय-पोषण, घोष (ध्वनि) मरने के बा द भी रहता है।

१० प्राण (उपप्राण सहित) तथा आत्मा-शरीर के ११ रुद्र हैं। रुद्रों के अन्य रूप हैं- मस्तिष्क के ७ प्राण-२ आंख, २ कान, २ नाक, १ मुख। नीचे के २ प्राण-मलमूत्र के द्वार तथा १०वीं नाभि -अन्तरिक्ष का वायु। ११ वां प्राणात्मा है।

आधिदैविक ११ रुद्र तारा-मण्डलों के स्वामी हैं। आधिभौतिक रुद्र हैं-५ तत्त्व,

-पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश। सूर्य, चन्द्र, विद्युत् (यजमान)। अग्नि के ३ रूप -पवमान, पावक, शुचि। अग्नि के ३ भेद घोर रूप हैं। प्रथम ८ रूपों में शिव अष्टमूर्त्ति हैं।

शिव मुखों से प्राणों का सम्बन्ध-

दिशायें	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	ऊपर/नीचे
शिवमुख	तत्पुरुष	अघोर	सद्योजात	वामदेव	ईशान/ईश
देवव्याप्ति	ईश्वर	रुद्र	विष्णु	ब्रह्मा	सदाशिव
वेद	अथर्व	साम	यजुर्	ऋक्	सर्वविद्यात्मक
महाभूत	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी	आकाश
प्राण	प्राण	व्यान	अपान	समान	उदान
शरीर अङ्ग	चक्षु	श्रोत्र	वाक्	मन	वायु
विराट् अङ्ग	आदित्य	चन्द्र	अग्नि	पर्जन्य	आकाश
फल	अनादि	श्री,यश	ब्रह्मतेज	कीर्त्ति	ओज

प्राणों की दिशायें छान्दोज्य उप.(३/१३) तथा शिवमुख तन्त्रालोक(१५/२०४-२०५) में हैं।

११.पञ्चकर्मात्मानः

कर्म का अर्थ क्रिया, वस्तुओं में गति या रूप परिवर्त्तन है।

आत्मानः का अर्थ हुआ आत्मा/व्यक्ति/परमात्मा का।

व्याख्या-(१) पञ्चकृत्य का अर्थ दिव्य शक्तियों के पांच कार्य हैं- सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान, अनुग्रह।

(२) पञ्चकर्म का अर्थ आयुर्वेद में चिकित्सा के पांच प्रकार हैं-वमन(उल्टी की ओषधि), रेचन (शौच लाने की ओषधि), नस्य (छींक लाने की ओषधि), अनुवासन (तेल युक्त वस्ति), निरूह (बिना तेल का वस्तिकर्म)।

(३) सामवेद के छान्दोग्योपनिषद् में सामगान प्राण की क्रिया कहा गया है। द्वितीय अध्याय में इसके ५ अङ्ग कहे गये हैं-१.हिङ्कार, २.प्रस्ताव, ३.उद्गीथ, ४.प्रतिहार, ५.निधन। जब गायन के ७ अङ्ग होते हैं, तब प्रस्ताव के बाद आदि तथा निधन के पूर्व उपद्रव होता है। सभी प्रकार की क्रियाओं में इसी प्रकार ५ भेद किये गये हैं।

लोक में प्रकृति के सामगान के आरोह क्रम में-पृथ्वी हिङ्कार, अग्नि प्रस्ताव, अन्तरिक्ष उद्गीथ, आदित्य प्रतिहार, तथा द्यौ निधन है। अवरोह क्रम में उसका

उलटा है। प्राण साम में प्राण, वाक्, चक्षु, श्रोत्र तथा मन-५ अङ्ग हैं। इन्द्रियों में प्राण हिङ्कार, वाक् प्रस्ताव, चक्षु उद्गीथ, श्रोत्र प्रतिहार तथा मन निधन है।

(४) मधु विद्या में सूर्य को प्राण शक्ति या मधु का मूल स्रोत कहा गया है (छान्दोग्य उप.३/१-११)। इसमे आदित्य देवों का मधु है, द्यौ लोक तिरछा बांस है, आकाश छत्ता तथा किरणें मधु नाड़ियां हैं।

पूर्व दिशा-ऋचा मधुमक्खियां, ऋग्वेद पुष्प तथा अमृत जल है। इसके रस हैं-यश, तेज, इन्द्रियों की शक्ति, अन्न आदि। लाल रस को वसु-गण अग्नि रूपी मुख में देख कर तृप्त होते हैं, लीन होते हैं, उदय होते हैं। आठ वसु हैं-अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा तथा नक्षत्र।

दक्षिण दिशा में यजुर्वेद मधुकर आदि हैं। सूर्य के शुक्ल रस को रुद्र-गण इन्द्र-रूपी मुह से देखकर तृप्त, लीन, उदय होते हैं। (११ रुद्र=११ इन्द्रियां)

पश्चिम दिशा में सामवेद मधुकर आदि हैं। सूर्य के कृष्ण रस को १२ आदित्य-गण वरुण रूपी मुख से देखकर तृप्त आदि होते हैं। (१२ राशि=१२ आदित्य)

उत्तर दिशा में अथर्वाङ्गिरस मधुकर आदि हैं, इतिहास पुराण पुष्प हैं। सूर्य के कृष्ण रस को देखकर मरुद्गण सोम रूपी मुख से तृप्त होते हैं।

ऊपर जानेवाली किरणों में गुह्य आदेश मधुकर है, ब्रह्म पुष्प है, अमृत जल है। उसका यश आदि रस क्षुब्ध मध्य भाग है। उसे साध्य-गण ब्रह्मा रूपी मुख से देखकर तृप्त होते हैं। ऊपर की किरणें उदय-अस्त नहीं होती हैं। साध्य १२ हैं-मन, मन्ता, प्राण, नर, अपान,वीर्यवान्, विनिर्भय, नय, संस, नारायण, वृष, प्रभु (अग्नि पुराण, गणभेद नाम अध्याय)

(५) बृहदारण्यक उपनिषद् (३/९) में हृदय की विभिन्न दिशा के तत्त्वों, क्रियाओं, देवताओं के नाम इस प्रकार हैं-

हृदय

दिशा- पूर्व दिशा	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	ध्रुव दिशा
तत्त्व- रूप	श्रद्धा	रेतस्	सत्य	वाक्
क्रिया-चक्षु	दक्षिणा	जल	दीक्षा	अग्नि
देवता-आदित्य	यज्ञ	वरुण	सोम	यम

(६) भावागणेश के अनुसार कर्मात्मा के अर्थ-वैकारिक, तैजस, भूतादि, सानुमान तथा निरनुमान हैं।

(७) शरीर के ५ कर्म हैं-बोलना, पकड़ना, चलना, मूत्रत्याग, मलत्याग। इनकी कर्मेन्द्रियां हैं-वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ, गुदा।
(८) पञ्चाग्नि हैं-दक्षिणाग्नि(अन्वाहार्यपचन), गार्हपत्य, आवहनीय, सभ्य, और आवसथ्य।
पञ्चाग्नि विद्या-छान्दोग्य ५/४-८)

अग्नि-	समिध	धूम	ज्वाला	अङ्गार	स्फुलिङ्ग
द्युलोक-	आदित्य	किरण	दिन	चन्द्रमा	नक्षत्र
पर्जन्य-	वायु	बादल	विद्युत्	वज्र	गर्जन
पृथिवी -	संवत्सर	आकाश	रात्रि	दिशा	अवान्तर दिशा
पुरुष-	वाक्	प्राण	जिह्वा	चक्षु	श्रोत्र
स्त्री-	उपस्थ	उपमन्त्रण	योनि	भीतर करना	सुख

(९) पदार्थ पिण्ड की ५ प्रकार की गतियां हैं-१. स्थिति- स्थान पर बने रहना या सम गति में रहना, २.रेखा में चलना-बदलती भति या दिशा में, ३.घूमना (rotation)-बदलती गति या दिशा, ४.फैलना, ५.सिकुड़ना - यह भौतिक विज्ञान के अनुसार है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार भी इसी प्रकार के ५ कर्म है-१.उत्क्षेपण (ऊपर फेंकना), २.अवक्षेपण (नीचे गिराना), ३.आकुञ्चन (सिकोड़ना), ४.प्रसारण (फैलाना), ५.गमन (अन्य प्रकार की क्रिया)।

१२.पञ्चपर्वा अविद्या

अर्थ-पर्वन्=पृ+वनिप्। पृ का अर्थ तुदादि गण में-व्यस्त, सक्रिय होना, का म सौंपना,जड़ करना, डालना है। जुहोत्यादि गण में इसका अर्थ है-आगे ले जाना,मुक्त करना, रक्षा करना आदि। क्र्यादि गण में अर्थ है-रक्षा करना। अत: पर्व का अर्थ है-गांठ, जोड़ आदि जो एक के बाद एक आते हैं। अन्य अर्थ हैं-१. अङ्ग, खण्ड, २.पुस्तक के अध्याय, ३.सीढ़ी के स्तर, ४.अवधि, समय विशेषकर चन्द्रमा की कला बदलने के समय पूर्णिमा, अमावास्या, दोनों पक्ष की अष्टमी, ६.बेंत या बांस की गांठ आदि।
अविद्या-विद् का अर्थ जानना, विद्यमान होना, प्राप्त करना, कहना, खोजना आदि है। विद्या=विद्+क्यप्+टाप्, का अर्थ है-१.ज्ञान, शिक्षा, विज्ञान। विद्य के ४ भेद हैं-अन्वीक्षिकी,त्रयी, वार्त्ता, दण्डनीति (कादम्बरी)। मनुस्मृति(७/४३)में आत्मविद्या को जोड़कर ५ कहे गये हैं। १४ विद्यायें हैं- ४ वेद, ६ वेदाङ्ग, धर्म,

मीमांसा, न्याय, पुराण। सौन्दर्यलहरी, ३८ में १८ विद्यायें कही गयी हैं-४ वेद, ६ वेदाङ्ग, धर्म, मीमांसा, न्याय, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद, नीति। २.यथार्थ विद्या या आत्मज्ञान। ३. जादू, मन्त्र आदि। इसके विपरीत अविद्या का अर्थ हुआ-१.अज्ञान, मूर्खता, २.आध्यात्मिक अज्ञान, ३.भ्रम या माया।

व्याख्या-(१) प्रसंग-५-५ प्रकार की प्राण शक्ति, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय तथा बुद्धि की वृत्तियां बताने के बाद अब उन्नति के मार्ग की बाधायें बतायीं जा रही हैं। मनुष्य की कुल बाधायें ५० हैं- ५ स्तरों की अविद्या, २८ अशक्ति,, ९ तुष्टि, तथा ८ सिद्धियां। ४ प्रकार की बाधाओं का वर्णन ४ सूत्रों में है। इन ५० बाधाओं या प्रत्ययों का वर्णन सांख्यकारिका में है-

एष प्रत्यय सर्गा विपर्ययाशक्ति तुष्टि सिद्ध्याख्य:।
गुण वैषम्य विमर्दात् तस्य च भेदास्तु पञ्चाशत्।४६।

गुणों की विषमता के कारण प्रत्ययों के ५० भेद हैं जिनके नाम विपर्यय (अविद्या), अशक्ति, तुष्टि तथा सिद्धि हैं।

पञ्च विपर्यय भेदा भवन्त्यशक्तिश्च करण वैकल्यात्।
अष्टाविंशति भेदा तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धि:।४७।

विपर्यय ५ प्रकार के, करणों की विकलता के कारण अशक्ति के २८ भेद, ९ तुष्टि तथा ८ सिद्धि हैं।

इन बाधाओं की सबसे अच्छी व्याख्या श्वेताश्वतर उप.१/४ में है-

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोड़शान्तं शतार्धारं विंशति प्रत्यराभि:।
अष्टकै: षड्भिर्विश्वरूपैक पाशं त्रिमार्ग भेदं द्विनिमित्तैक मोहम्।

जगत् या विराट् ब्रह्म एक चक्र के समान है जिसमें १ नेमि (केन्द्र भाग जिसमें धुरी हो) है। इसकी नाभि या नेमि प्रकृति या देवात्म शक्ति या कुण्डलिनी है जिसमें तीन घेरे हैं।यह तीन घेरे ३ गुण हैं-तत्त्व, रज, तम। यह तीन टायर की तरह हैं। घेरों के १६ विभाग हैं। १६ खण्डों को १६ विकृति माना जा सकता है। इसमें ८ सूक्ष्म तत्त्व हैं-मन,बुद्धि, अहंकार, ५ महाभूत-पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश। बाकी ८ इनके स्थूल तत्त्व हैं। प्रश्नोपनिषद् के प्रश्न ६ के अनुसार यह ब्रह्म की १६ कलायें हैं-प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, ज्योति, जल, पृथ्वी,इन्द्रियां(१०), मन, अन्न,वीर्य, तप, मन्त्र (वेद), कर्म(वैदिक कर्म), लोक(यज्ञों से प्राप्त होने वाले), तथा उनके नाम। इन खण्डों पर ५० अरे (५० प्रत्यय या बाधायें) तथा ५० सहायक अरे हैं।

५० प्रत्ययों का वर्णन अगले श्लोक में है। २० प्रत्यरे हैं-१० इन्द्रियों की १० शक्तियां, उनके ५ विषय तथा ५ क्रियायें हैं। शांकर भाष्य के अनुसार इस चक्र के अङ्ग रूप ६ अष्टक हैं-

१.प्रकृति अष्टक-अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहङ्कार, ५ तन्मात्रायें।

२.धातु अष्टक-त्वचा, रुधिर, मांस, मेद, स्नायु, अस्थि, मज्जा, शुक्र।

३.ऐश्वर्य अष्टक-अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व।

४.भावाष्टक-धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य
अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य

५.देवाष्टक-ब्रह्मा, प्रजापति, देव, पितृ, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच।

६.गुणाष्टक-दया, क्षमा, अनसूया, शौच, अनायास, मङ्गल (संकल्प सिद्धि), अकृपणता, और अस्पृहा।

यह चक्रचलाने के लिये विश्व रूप में एक पाश है। यह कामना या वासना का बन्धन है , जो अनेक (विश्व) रूपों वाला है। इस पाश (Chain) द्वारा चक्रघूम कर ३ मार्गों पर चलता है-धर्म, अधर्म, ज्ञान। या देवयान, पितृयान तथा इसी लोक में एक योनि से अन्य योनि में जाने का मार्ग-यह तीन मार्ग हैं।

दो निमित्त-सुख, दु:ख-तथा एक मोह इस चक्र को चला रहे हैं।

अगले श्लोक में ५० बाधाओं की नदी रूप में व्याख्या है-

पञ्चस्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादि मूलाम्।
पञ्चावर्त्तां पञ्चदु:खौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्च पर्वामधीम:।

संसार रूपी नदी के ५ जलस्रोत हैं, ५ उद्गम (योनि) से वह वेग सहित वक्र गति से निकलती है, उसमें ५ प्राण तरंगें हैं, ५ बुद्धि आदि मूल हैं , जिससे उसमें ५ भंवर पड़ते हैं। ५ प्रकार के दु:खों के वेग से युक्त है। ५० भेदों वाली हैं, तथा ५ पर्व हैं।

१.पांच स्रोत-पांच प्रकार का ज्ञान-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध।

२.पांच योनियां-५ प्रकार की वृत्तियां-प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति।

३.५ प्राणोर्मियां-प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान। या ५ कर्मेन्द्रियां।

४.जिसके आदि में ५ ज्ञानेन्द्रियां हैं , वे पञ्च बुद्धि हैं।

५.पांच आवर्त्त -५ तत्त्वों से सम्बन्धित ५ विषय भोग।

६. पांच दु:ख-गर्भ, जन्म, व्याधि, जरा, मृत्यु।

७.पचास भेद-५० प्रत्यय=५ विपर्यय या क्लेश + २८ अशान्ति +९ तुष्टि +८ सिद्धि।
८. पांच पर्व-गर्भ, शिशु, युवा, प्रौढ़, वृद्ध।
या-क्लेश, कर्म, विपाक, आशय, मोक्ष।
या-द्रष्टा, दृश्य, दोनों का संयोग, संसार के कारण अविद्या, द्रष्टा के स्वरूप की स्थिति(समाधि)।

२.<u>विद्या-अविद्या</u>-विद्या ज्ञान के रूप में उत्तम या अविद्या मूर्खता के रूप में त्याज्य नहीं है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है-

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततोभूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।९।

जो मनुष्य अविद्या की उपासना करते हैं, वह अन्धकार रूप तम में जाते हैं। जो सिर्फ विद्या में रत हैं, वह और घने तम में जाते हैं।

अन्यदेवाहुर्विद्यया अन्यदाहुरविद्यया। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।१०।

पण्डितों ने विद्या तथा अविद्या के अलग-अलग फलों की व्याख्या की है।

विद्यां च अविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।११।

अतः दोनों को ही जानना जरूरी है। अविद्या से मनुष्य मृत्यु को पार करता है तथा विद्या से अमृत तत्त्व पाता है।

अगले ३ श्लोकों में इसी प्रकार सम्भूति तथा असम्भूति से मृत्यु को पार करना तथा अमृत पाना लिखा है।

भगवद्गीता के विज्ञान भाष्य में पं. मधुसूदन ओझा ने ज्ञान विज्ञान की व्याख्या में आधुनिक तथा प्राचीन सभी प्रकार के अर्थों का समन्वय किया है। विद्या और ज्ञान समानार्थक हैं , जिनका अर्थ है, एकत्व का ज्ञान। इसका विपरीत, विज्ञान=विशेष या विकल्प ज्ञान, अविद्या=अपरा विद्या अर्थ लेने पर इनका अर्थ मूढ़ता नहीं है, बल्कि एक चीज को अनेक रूपों में देखना विज्ञान या अविद्या है। विज्ञान से देखा जाता है कि एक ही तत्त्व से अनन्त पदार्थों का विस्तार हुआ। सभी रूपों में समानता या एक तत्त्व है, यह देखना ज्ञान है। क्रिया आगे बढ़ना सम्भूति है (सञ्चर), विपरीत दिशा में जाना असम्भूति (प्रतिसञ्चर) है। ज्ञान-विज्ञान के इस अर्थ से सभी परिभाषायें ठीक निकलती हैं। अमरकोष के अनुसार-

मोक्षे धीर्ज्ञान मन्यत्र विज्ञानं शिल्प शास्त्रयोः।

अर्थात् मोक्ष के बारे में विचार ज्ञान है तथा उसके अतिरिक्त शिल्प या शास्त्र के विषय की बुद्धि को विज्ञान कहते हैं।

भागवद्गीता में शिल्प शास्त्र की चर्चा के बिना भी इन शब्दों का प्रयोग हुआ है -
ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्यामशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते (७/२)
भगवान् अर्जुन से कहते हैं- अब मैं विज्ञान सहित ज्ञान विशेष रूप से कहता हूं जिसे जानने के बाद कुछ बाकी नहीं रहता।
इदंतु ते गुप्ततमं प्रवक्ष्यामनसूयवे। ज्ञानं विज्ञान सहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्(९/१)
अर्थात् तुम्हें अत्यन्त गुप्त विज्ञान सहित ज्ञान का उपदेश करूंगा क्योंकि तुम दोष नहीं देखते। इसे जान कर तुम मुक्त हो जाओगे।
आधुनिक विज्ञान (Science) की परिभाषा है क्रमबद्ध ज्ञान। एक के बाद एक तथ्य आना विज्ञान या अविद्याका पर्व या सीमा रेखा हैं। विज्ञान के ५ पर्व हैं-

१.अविद्या-विषयों यातथ्यों का विभाजन।

२.अस्मिता-प्रति तत्त्व की अलग-अलग परिभाषा तथा व्याख्या।

३.राग-अलग-अलग तथ्यों में समानता खोज कर उन्हें एक वर्ग में करना(Generalization)।

४.द्वेष-अन्य वर्ग के तथ्यों से भेद दिखाना।

५.अभिनिवेश-सिद्धान्त स्थिर करना जिसके अनुसार नये तथ्यों को प्रमाणित या अप्रमाणित किया जा सकता है।

विज्ञान में अध्ययन के लिये विषयों को बांट देते हैं, जैसे भौतिक विज्ञान, रसायन, जीव विज्ञान, यन्त्र-शास्त्र आदि। सभी की बहुत सी घटनाओं के अध्ययन से उनकी समानता के नियम खोजे जाते हैं। किन परिस्थितियों में यह लागू होंगे या नहीं लागू होंगे, यह समझा जाता है, या प्रयोग द्वारा जांच किया जाता है। उसके बाद सिद्धान्त मालूम होता है। उस सूत्र के अनुसार अन्य की व्याख्या होती है।
३. अविद्या के ५ पर्व-अविद्यायें एक के बाद एक उत्पन्न होती हैं। उनके अलग अलग स्तरों के कारण उन्हें पर्व कहते हैं। इन्हें पातञ्जल योग सूत्र (२/३) में क्लेश कहा गया है -अव्यिास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाःक्लेषाः।
इन्हें सांख्य योग में तमस् आदि कहा गया है-
तमो मोहो महामोहस्तमिस्रो ह्यन्धसंज्ञकः।अविद्या पञ्चपर्वैषा सांख्ययोगेषु कीर्तिता।

स्तर/पर्व	योग के नाम (क्लेष)	सांख्य के नाम (अविद्या)
१	अविद्या	तमस्

२.	अस्मिता	मोह
३.	राग	महामोह
४.	द्वेष	तमिस्र
५.	अभिनिवेश	अन्धतमिस्र

ईशावास्योपनिषद् में दो गतियां तम तथा अन्धतम-इसके प्रथम तथा अन्तिम स्तर हैं। यह अलग अलग स्तरों केरूप में योगसूत्र २/४ में कहा गया है-

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्त तनु विच्छिन्नोदाराणाम्।

वाचस्पति मिश्र ने साधना के अनुसार क्लेशों की स्थिति बतायी है-

प्रसुप्तास्तत्त्वलीनानां तन्ववस्थाश्च योगिनाम्।

विच्छिन्नोदार रूपाश्च क्लेशा विषयसंगिनाम्॥

समाधि या मोक्ष-कोई क्लेश नहीं।

तत्त्वलीन अर्थात् विदेह या प्रकृति लय-सुप्तक्लेश

योगी-तनु क्लेश(पतला या शिथिल)

विषयी-विच्छिन्न तथा उदार क्लेश। विच्छिन्नमें एक क्लेश से दूसरा दब जाता है। उदार में सभी प्रकट रहते हैं।

४. <u>पर्वों के रूप भेद</u>-अविद्या की परिभाषा योगसूत्र २/५ में है-

अनित्याशुचिदु:खानात्मसुनित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।

जगत् का वास्तविक रूप	अविद्या के कारण दीखता रूप
अनित्य	नित्य
अपवित्र	पवित्र
दु:ख	सुख
अनात्म	आत्मा

सांख्यकारिका ४८ के अनुसार इनके भेद हैं-

भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोह:।

तामिस्राष्टादशधा तथा भवन्त्यन्धतामिस्र:॥

तम या अविद्या के ८ भेद हैं-प्रकृति के ८ भेदों (प्रकृति, महान्, अहंकार तथा ५ तन्मात्रा) को आत्मा समझने से ८ प्रकार के तम हैं।

योगसूत्र २/६ में अस्मिता का लक्षण है-दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता।

पञ्चशिखाचार्य ने मोह का लक्षण बताया है-बुद्धित: परं पुरुषमाकार शीलविद्यादि-

-भिर्विभक्तमपश्यन् कुर्यात् तत्रात्मबुद्धिं मोहेन।
अर्थात्, मोह या अस्मिता के कारण देखने का साधन चित्त को ही देखने वाला पुरुष समझा जाता है।
वाचस्पति मिश्र के अनुसार ८ प्रकार के ऐश्वर्य चित्त के विषय हैं; इन्हीं को प्राप्त कर देवगण अमरत्व का अभिमान करते हैं। अतः मोह भी ८ प्रकारका है।
सुख भोगने की इच्छा राग है (सुखानुशायी रागः २/७)
दिव्य और लौकिक (स्वर्ग और अपवर्ग) के ५-५ प्रकार के विषयों (सुख)- शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध में आसक्ति महामोह है। अतः यह १० प्रकार का है।
दुःख अनुभव के बाद उसके प्रति अनिच्छा की वासना द्वेष है-
दुःखानुशायी द्वेषः (२/८)
५-५ प्रकार के लौकिक और दिव्य सुखों की अप्राप्ति से १० प्रकार के दुःख हैं, अणिमा आदि ऐश्वर्य की इच्छा पूरी नहीं होना ८ प्रकार के दुःख हैं। इनके परिणाम से १८ प्रकार के द्वेष या तामिस्र होते हैं।
बुद्धिमान पुरुष में भी स्वभाव से ही भय या आशंका अभिनिवेश है-
स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढ़ोऽभिनिवेशः (२/९)।
१० प्रकार के सुखों तथा ८ प्रकार की सिद्धियों में अनिष्ट का भय-इस प्रकार १८ प्रकार का अभिनिवेश है। सामान्यतः मृत्यु का भय ही अभिनिवेश माना जाता है। कितना भी शास्त्र पढ़ने से यह डर दूर नहीं होता है-जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।

१३.अष्टाविंशतिधा अशक्तिः

प्रायः यही सांख्य सूत्र ३/२८ है-अशक्तिरष्टाविंशतिधा।
अष्टाविंशतिधा=२८ प्रकार का। अशक्ति=शक्ति का अभाव, निर्बलता।
व्याख्या-२८ अशक्तियों की गणना सांख्य कारिका ४९ में है-
एकादशेन्द्रियवधाः सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा।
सप्तदश वधाः बुद्धेर्विपर्ययात्तुष्टि सिद्धीनाम्॥
सभी २८ अशक्तियां बुद्धिवध या मानसिक अक्षमता/दुर्बलता के कारण होती हैं। ११ प्रकार केइन्द्रियवधों के कारण ११ प्रकार के बुद्धिवध होते हैं। अन्य १७ प्रकार के बुद्धिवध ९ तुष्टि तथा ९ सिद्धियों के विपर्यय के कारण होते हैं।
११ इन्द्रियवधों की गणना-वाधिर्यं कुष्ठिताऽन्धत्वं जड़ताऽजिघ्रता तथा।
मूकता काण पङ्गुत्वे क्लैव्योदावर्त्तमन्दतः॥

इन्द्रिय	अशक्ति	इन्द्रिय	अशक्ति
श्रोत्र	वधिरता	वाक्	मूकता
त्वक्	कुष्ठता/चर्मरोग	पाणि	हाथ की विकलता
चक्षु	अन्धत्व	पाद	पाद की विकलता
जिह्वा	स्वाद का ज्ञान न होना	उपस्थ	क्लीबता
नासिका	सूंघने की शक्ति न होना	पायु	गुदा दोष
मन	विक्षिप्तता	--	---

---

११ इन्द्रिय वध → ११ बुद्धिवध
९ तुष्टि विपर्यय → ९ बूदिधवध → २८ अशक्ति
८ सिद्धि विपर्यय → ८ बुद्धिवध

मस्तिष्क के ऊपरी भाग (Cortex) का सम्बन्ध विभिन्न इन्द्रियों से है। उनमें दोष आने से उन इन्द्रियों में अशक्ति आती है। मन भ्रूमध्य या आज्ञाचक्र में है। उसे मस्तिष्क के बायें-दाहिने भाग (२ कमल दल) के बीच सम्बन्ध जोड़ने वाले तन्तुओं के रूप में माना जा सकता है। मस्तिष्क के दोनों भागों का समन्वय न होने से विक्षिप्तता होती है। लघु मस्तिष्क में विभिन्न विन्दुओं पर संयम करने से विभिन्न प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं, जिनका वर्णन योगसूत्र के विभूति पाद में है। यह विन्दु चक्र का क्षेत्र है।

मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों की अशक्तियों के अनुसार अशक्तियां २८ प्रकार की हैं। साधना विधियों के स्रोत रूप में भी २८ शैव आगम हैं-१० शैव तथा १८ रौद्र आगम। शिव के ५ मुखों की तरह मस्तिष्क के ५ भाग हैं। कुछ लोग भूत जातियों की संख्या के अनुसार प्रत्ययों के भेद बताते हैं-

५विपर्यय	५ उद्भिद् जाति
२८ अशक्ति	२८ तिर्यक् जाति
९ तुष्टि	९ देव जाति(८ दैव विकल्प की गणना ५३ कारिका में है)
८ सिद्धि	८ मनुष्य जाति(एकही है किन्तु गुण-कर्म के अनुसार ४ विभाग)

(२) योग सूत्रों में भी साधना की बाधाओं का वर्णन है, पर उनकी कुल संख्या २८ नहीं होती। इनके ३ प्रकार के भेद हैं-

५ बुद्धि की वृत्तियां-प्रमाण, विपर्यय,विकल्प, निद्रा, स्मृति।

५ क्लेश-अविद्या, अस्मिता,राग, द्वेष, अभिनिवेश(पूर्वसूत्रों में वर्णित)
१३ चित्तविक्षेप-(योग सूत्र १/३१,३२)-व्याधि, स्त्यान(मानसिक तनाव), संशय, प्रमाद (असावधानी), आलस्य, अविरति (व्यसन में आसक्ति), भ्रान्तधारणा, अलब्धभूमिकत्व(मूल उद्देश्य नहीं जानना), अनवस्थित्व (उन्नति कामना नहीं रखना), दु:ख, दौर्मनस्य (निराशा), अङ्गमेजयत्व (शरीर की अस्थिरता), श्वास-प्रश्वास (अनियमित श्वास क्रिया)।

(३) २८ बुद्धि की अशक्ति के कारण बौद्ध ग्रन्थ महावंश में २८ प्रकार के बुद्धों का वर्णन है। यह तीन अन्य प्रकार से भी है-(क) ५२ अहर्गण (पृथ्वी ह्न $२^{५२-३}$) के गोलोक केक्षेत्रों के अनुसार ५२ शक्तिपीठ तथा मानव शरीर में ५२ शक्तिविन्दु (या ५२ सिद्धि) हैं। इनमें २४ जड प्रकृति के तत्त्व हैं तथा बाकी २८ बुद्ध के रूप हैं। (ख) सांख्य के ५ आयामी विश्व में ५ह्न५=२५ तत्त्व हैं। शैव दर्शन के ६ आयामों में ६ह्न६=३६ तत्त्व हैं। ११ अधिक तत्त्व ११ रुद्र हैं -४ शिव-शक्ति केरूप तथा ७ माया और उसके आवरण। इसके अतिरिक्त पुरुष १७ प्रकारका है क्योंकि एक समतल को किसी चिह्न द्वारा १७ प्रकार के रूपों से भरा जा सकता है। पूरी तरह छा जाने के कारण १७ को मेघ,घन आदि कहते हैं, तथा आधुनिक बीजगणित में इसे समतल का मणिभ सिद्धान्त(Plane crystellography theorem) कहा जाता है। (ग) ७ लोकों के चेतन तत्त्वों में प्रत्येक के विकास के ४-४ स्तर हैं जो ४ बुद्धहैं-श्रावक-सामान्य साधक,बोधिसत्त्व-विकासमान,प्रत्येक बुद्ध-विकसित व्यक्ति या बुद्ध का अवतार, सम्यक् बुद्ध-परम तत्त्व, सूक्ष्म काल के लिये बुद्धत्व का आभास। महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय ३०७-३०८ में इनके नाम हैं-अबुद्ध, अप्रतिबुद्ध,बुध्यमान,शुद्ध।

१४.नवधा तुष्टि:

सांख्य सूत्र ३/४० प्राय: यही है-तुष्टिर्नवधा।

नवधा=९ प्रकार का। तुष्टि-सामान्य भाषा में तुष्टि या सन्तोष दोनों का एक ही अर्थ है- जितना प्राप्त है उससे अधिक की इच्छा न करना। सन्तोष योगदर्शन में एक गुण है और अष्टाङ्ग योग के द्वितीय अङ्ग नियम में गिना जाता है। यहां तुष्टि का अर्थ साधना या कर्त्तव्य में थोड़ा पाने के बाद ही मोक्ष के साधनों को छोड़ना है। यह साधना की बाधा मानी जाती है। अच्छे अर्थ में सन्तोष एक साधन है।

व्याख्या-तुष्टि २ प्रकार की है-बाह्य और आध्यात्मिक। बाह्य ४ तथा आध्यात्मिक ५ प्रकार की हैं-आध्यात्मिकश्चतस्रः प्रकृत्युपादान काल भाग्याख्याः।
बाह्या विषयोपरमात् पञ्च च नव तुष्टयोऽभिमताः(सांख्यकारिका ५०)
अन्तरात्मा को समझे बिना केवल बाहरी विषयों से उपरति को बाह्य तुष्टि कहते हैं। बाहरी विषय ५ प्रकार के हैं, अतः उनकी तुष्टियां भी ५ प्रकार की हैं-शब्द तुष्टि, स्पर्शतुष्टि, रूपतुष्टि, रसतुष्टि, और गन्धतुष्टि। इन तुष्टियों के ५ दोष हैं-उपार्जन, संरक्षण, क्षय, भोग, हिंसा। इनको देखकर ५ प्रकार के वैराग्य या विषय भोगों से उपरति होती हैं। ५ प्रकार के दुःख हैं-

१.पार-विषय भोग पाने, अर्जन करने के लिये सेवकों को कष्ट, कृषि में पशु-पक्षियों को कष्ट, वाणिज्य में ग्राहकों को कष्ट आदि होते हैं।

२.सुपार-उपार्जित धन की रक्षा करने का कष्ट सुपार है। नहीं करने पर राजा, चोर, अग्नि, बाढ़ आदि से नष्ट होने का भय रहता है।

३.पारापार-धन या विषय भोग करने से नष्ट होजायगा इस विचार से वैराग्य होने पर उसे पारापार कहते हैं।

४.अनुत्तमाम्भ-बार बार भोग करने से कामना बढ़ती है तथा विषय नहीं मिलने पर कामी पुरुष को दुःख होता है। इस विचार से उत्पन्न वैराग्य अनुत्तमाम्भ कहलाता है।

५.उत्तमाम्भ- भूतों को दुःख न देकर विषय भोग नहीं हो सकता, इस प्रकार हिंसा दोष देखने से जो वैराग्य होता है, उसे उत्तमाम्भ कहते हैं।

प्रकृति से पृथक् आत्मा का विचार कर या आन्तरिक कारणों से ४ प्रकार की तुष्टि होती है-

१.अम्भ या प्रकृति तुष्टि-आत्मा को प्रकृति से अलग मान कर भी यह आशा होती है कि प्रकृति स्वयं विवेक उत्पन्न कराकर कैवल्य प्रदान करेगी। यह आशा गलत है क्योंकि प्रकृति पुरुष की इच्छा के अधीन है। इस प्रकार की मिथ्या आशा से श्रवण, मनन, ध्यान आदि अभ्यास छोड़ देना अम्भ है।

२.सलिल या उपादान तुष्टि-सिर्फ संन्यास लेने से विवेक मिल जायगा इस आशा से उपाय न करना उपादान तुष्टि है। यह विश्वास इसलिये गलत है कि संन्यास एक चिह्न मात्र है। उसमें भी आत्म-साक्षात्कार के लिये धारणा, ध्यान आदि आवश्यक है।

३.कालतुष्टि या मेघ-इस विश्वास पर कि समय पाकर स्वयं मुक्ति प्राप्त हो जायगी, उसके लिये कोई यत्न न करना तुष्टि है। यह काल का भरोसा इसलिये झूठा है कि काल सभी कार्यों का समान हेतु है- उन्नति तथा अवनति दोनों हो सकती है। अत: उन्नति के लिये यत्न करना जरूरी है।

४.भाग्य तुष्टि या वृष्टि-इस भरोसे पर कि यदि भाग्य में होगा तो स्वयं तत्त्व ज्ञान पाकर मुक्ति हो जायगी, उसके लिये यत्न न करना भाग्य तुष्टि है। यह गलत विश्वास है, क्योंकि पुरुषार्थ से ही भाग्य भी होता है।

इन तुष्टियों के लिये ही काम करना और उसके बाद काम छोड़ देना हेय कोटि में आता है। किन्तु साधन रूप कर्त्तव्य को बिना आलस्य और प्रमाद के किया जाता है तो इन तुष्टियों से धैर्य तथा शान्ति मिलती है। अत: इस प्रकार की तुष्टि शक्तिरूप है।

(२) भक्ति मार्ग-भक्ति-मार्ग भी ज्ञान मार्ग के सांख्य योग का ही दूसरा रूप है। पं. गोपीनाथ कविराज ने मैं (आत्मा) तथा वह (परमात्मा) की इच्छाओं के मिलन से इनका वर्णन किया है-

(क) वह इच्छामयह्नमैं इच्छायुक्त (संसार, दु:ख)

(ख) वह इच्छामयह्नमैं इच्छाहीन (भक्ति)

(ग) वह इच्छाहीनह्नमैं इच्छामय (योग)

(घ) वह इच्छाहीनह्नमैं इच्छाहीन (ज्ञान, कैवल्य)

ज्ञान मार्ग (सांख्य) की ९ तुष्टियों की तरह भक्ति मार्ग में भी ९ रस तथा ९ भक्ति क्रियायें (नवधा भक्ति) हैं।

नवधा भक्ति-श्रीमद्भागवत पुराण मे प्रह्लाद जी ने कहा है-

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णो: स्मरणं पाद सेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।

अर्थात्, (१) भगवान के नाम का स्वरूप, गुण, प्रभाव आदि का श्रवण, (२) कीर्त्तन, (३) स्मरण, (४) भगवान की पाद-सेवा, (५) पूजन, (६) वन्दन, (७) दास्य-भाव, (८) सखा-भाव, (९) आत्म-निवेदन-ये ९ प्रकार की भक्ति हैं।

शबरी प्रसंग में रामचरितमानस में राम द्वारा नवधा भक्ति का उपदेश है-

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान।
चौथि भगति मम गुन गाना करइ कपट तज गान।।

मन्त्र जान मम दृढ़ विश्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
छठ दस सील विरति बहु करमा। निरत निरन्तर सज्जन धरमा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोते सन्त अधिक कर लेखा।।
आठवँ जथा लाभ सन्तोषा। सपनेहुं नहिं देखत पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।
<u>९ रस या ९ भाव</u>-रौद्रोद्भुतश्चशृङ्गारो हास्यं वीरो दया तथा।
भयानकाश्च वीभत्सः शान्तः सप्रेम भक्तिकः।

मन की ९ प्रकार की भावनाओं के अनुसार ९ भक्ति की क्रियायें होती हैं-१.रौद्र, २.अद्भुत, ३.शृङ्गार, ४.हास्य, ५.वीर, ६.दया, ७.भयानक, ८.वीभत्स, ९.शान्त सप्रेम भक्ति।

नारद भक्ति-सूत्र ५६ में भक्ति के गुण तथा विकलता के अनुसार ३-३ प्रकार के भेद गौणी भक्ति के हैं। गुण के अनुसार सात्विक, राजसिक तथा तामसिक भक्ति हैं। भक्त की विकलता या इच्छा की तीव्रता के अनुसार भी ३ भेद हैं-आर्त्त, जिज्ञासु तथा अर्थार्थी।

१५.अष्टधा सिद्धिः

अष्टधा=८ प्रकार का।

सिद्धि=अभीष्ट विषय की प्राप्ति या कर्म में सफलता। मोक्ष से थोड़े कम स्तर की उन्नति।

व्याख्या-(१) सांख्य सूत्र ३/४४ इसका समानार्थक है-ऊहादिभिः सिद्धिरष्टधा। सभी ८ की गणना सांख्यकारिका ५१ में है-

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःख विघाता स्वप्नः सुहृत्प्राप्तिः।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः।।

इसके अनुसार ८ सिद्धियां ३ वर्गों में हैं-

(१) ज्ञान सम्बन्धी-ऊह, शब्द, अध्ययन।

(२) आत्म लाभ-तीन प्रकार के दुःखों का निवारण-आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक। यह तीन सिद्धियां मुख्य हैं, बाकी गौण हैं।

(३) अन्य सम्बन्धी-सुहृत्प्राप्ति, दान।

<u>(२) सिद्धि का अर्थ</u>-कई लोग ऊपर लिखे ८ सिद्धियों को सिद्धि का उपाय मानते हैं। उनके अनुसार ८ प्रकार से सिद्धि प्राप्त हो सकती है-तीन प्रकार के ज्ञान से,

अपने तीन प्रकार के दु:ख दूर करने से तथा गुरु या सिद्धों की सहायता या दान के कारण। किन्तु यह स्वयं ही सिद्धि हैं, उसका साधन नहीं हैं। सिद्धि के साधन पातञ्जल योग सूत्र ४/१ में हैं-जन्मौषधिमन्त्रतप: समाधिजा सिद्धय:।

अर्थात् सिद्धि ५ प्रकार से होती है , या ५ प्रकार के सिद्ध हैं-

(१) जन्म से ही (पूर्व संस्कार के कारण)। कुछ लोगों ने इसे ही ऊहा समझा है (वाचस्पति मिश्र की तत्त्व-कौमुदी टीका)

(२) औषध-औषध से भी समाधि का अनुभव हो सकता है। अथर्ववेद में ४ प्रकार के औषध हैं-दैवी, मानुषी, आङ्गिरस, अथर्वण।

(३) मन्त्र से-इष्ट देव के नाम या बीज मन्त्र से। यह अपने संस्कार, चेतना स्थिति, तथा प्रवृत्ति पर निर्भर है।

(४) तप-यम, नियम, संन्यास, त्याग आदि से।

(५) समाधि-धारणा, ध्यान, समाधि से।

अन्य स्थानों पर सिद्धियां ८ प्रकार की कही गयी हैं-

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।

प्राप्ति: प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धय:।।(अमरकोष १/१/३६, भागवत११/१/४-५, मार्कण्डे य पुराण आदि)

१.अणिमा-छोटा रूप धारण करना।

२.महिमा-बड़ा रूप।

३.गरिमा-भारी होना।

४.लघिमा-हल्का होना।

५.प्राप्ति-इच्छित वस्तु को लाना या प्राप्त करना (भूत संयम)

६.प्रकाम्य-बिना रुकावट इच्छा पूर्ण करना(भूत स्वरूप संयम)

७.वशित्व-पांचो भूतों तथा भौतिक पदार्थों को वश में करना(सूक्ष्म रूप में संयम)

८.ईशित्व-भूत भौतिक पदार्थों के उत्पत्ति विनाश का सामर्थ्य(अन्वय में संयम से)

पातञ्जल योग सूत्र ३/४४ में इनकी सिद्धि का उपाय है-

स्थूलस्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व संयमाद् भूतजय:। अर्थात्, स्थूल स्वरूप, सूक्ष्म अन्वय, और अर्थवत्त्व-इन पांच में संयम करने से भूतजय होता है।

इसके अनुसार ३/४५ सूत्र में सिद्धियों का वर्णन है-

ततोऽणिमादि प्रादुर्भाव: कायसम्पत् तद्धर्मानभिघातश्च। पिछले सूत्र के अर्थवत्त्व

संयम के अनुसार यहां गरिमा को महत्त्व में गिना जाता है। आठवीं सिद्धि है-यत्रकामावसायित्व-इसका अर्थ पूर्णकामत्व कहा जाता है, जिसका अर्थ कामनाओं का अन्त है-पूर्णकामोऽस्मि संवृत:। इसका एक अर्थ किया गया है, एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ में इच्छानुसार बदलने की शक्ति। यह अर्थवत्त्व में संयम से प्राप्त होती है। अष्ट सिद्धियों के अतिरिक्त २९ सिद्धियों की चर्चा योगसूत्र के विभूति पाद में हुयी है। अत: यहां बतायी गयी सिद्धियां उन ३० सिद्धियों का ८ प्रकार से वर्गीकरण होना चाहिये।

(३) ऊह आदि सिद्धि-ऊह का अर्थ तर्क या मनन शक्ति है। इसे तारतार सिद्धि भी कहते हैं। यह प्रथम प्रकार का ज्ञान है बिना शास्त्र तथा अध्ययन (गुरु के पास) प्राप्त होता है। इस प्रकार की सिद्धियों के पातञ्जल योगसूत्र में उदाहरण है-

निरोध-परिणाम-सिद्धि-शान्तोदिताव्यपदेश्य धर्मानुपाती धर्मी।(३/१४)। संस्कारों से चित्त की चञ्चलता होती है। उसे शान्त कर एकाग्रता की अवस्था लाना शान्त-प्रत्यय है। इसके साथ सिद्धियों की इच्छा के कारण अन्त:करण उसके लिये सचेष्ट रहता है वह उदित प्रत्यय है।इनका सन्तुलन एकाग्रता परिणाम है।शान्त (अतीत),उदित(वर्तमान), अव्यपदेश्य(भविष्य)-इन सभी वृत्तियों का निरोध।

पूर्व जन्म का ज्ञान-संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्व जाति ज्ञानम् (३/१८)

संस्कारों के अध्ययन से पूर्व जन्म का ज्ञान होता है।

ज्ञान प्राप्ति-प्रातिभाद्वा सर्वम्। (३/२४)

ध्यान करने पर मन में एक तारे का दर्शन होता है जिसे प्रातिभ तारा कहते हैं। इस पर संयम करने से सभी प्रकार काज्ञान प्राप्त होता है।

तन्मात्रा ज्ञान-तत: प्रातिभश्रवण वेदना दर्शास्वादवार्ता जायन्ते (३/३७)

इसकी विधि है-सत्त्वपुरुषयोरत्यन्ता संकीर्णयो: प्रत्ययाविशेषो भोग: परार्थत्त्वात् स्वार्थ संयमात् पुरुष ज्ञानम्। (३/३६)

बुद्धि तथा पुरुष में भेद करने पर ये सिद्धियां मिलती हैं-

प्रातिभ सिद्धि-अतीत, अनागत, विप्रकृष्ट (Complex), सूक्ष्म (atomic) पदार्थों का ज्ञान।

श्रावण सिद्धि-नाद, दिव्य ध्वनि, प्रणव का अनुभव।

वेदन सिद्धि-दिव्य स्पर्श ज्ञान।

आदर्श सिद्धि-दिव्य दृष्टि।

आस्वाद सिद्धि-दिव्य रस ज्ञान।
वार्ता सिद्धि-दिव्य गन्ध ज्ञान।
मनोजवित्व-ततो मनोजवित्वं विकरणभाव: प्रधानजयश्च (३/४९)
विधि-ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थ वत्त्वसंयमादिन्द्रिय जय:(३/४८)
मूल प्रकृति, स्वरूप, अस्मिता पर संयम करने से शरीर, बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियों की गति मन के समान तेज होती है (हनुमान् के समान)।
सर्वज्ञता-सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्व भावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च(३/५०)
सत्व तथा पुरुष के अन्तर पर संयम करने से सभी भाव स्थिति आदि का पूर्ण ज्ञान होता है।
त्रिकाल ज्ञान-क्षण तथा उसके क्रम पर संयम करने से विवेक ज्ञान होता है जो देश काल की सीमा से बाहर है।
(२) शब्द-शब्द का अर्थ शास्त्र या वाणी है। इसी भाव से श्रुति का अर्थ वेद है। शास्त्रों के अध्ययन से जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह शब्द ज्ञान है। शब्द ज्ञान पूर्ण ज्ञान नहीं है, यह केवल शब्दों द्वारा व्यक्त है -
शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्प: (१/९)
अर्थात् अर्थ विहीन शब्द ज्ञान विकल्प कहलाता है।
यहां शब्द सिद्धि का अर्थ शब्द अर्थात् शास्त्र तथा उसका अर्थ है।
उदाहरण-प्राणियों की भाषा-शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुत ज्ञानम्। (३/१७)
अर्थात् शब्द, अर्थ, विचार के समन्वय पर संयम करने से सभी प्राणियों की भाषा का ज्ञान होता है।
चित्त की अव्यक्त वाणी-प्रत्ययस्य परचित्त ज्ञानम् (३/१९)
ज्ञान में संयम करने से दूसरे के चित्त या विचारों का ज्ञान होता है।
दिव्य श्रोत्र-श्रोत्राकाशयो: सम्बन्ध संयमाद्दिव्य श्रोत्रम् (३/४२)
आकाश और शब्द पर संयम करने से दिव्य शब्द सुनने की शक्ति होती है।
इसे वाचस्पति मिश्र ने सुतार सिद्धि कहा है। योग सूत्र में तार सिद्धि है-
तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् (३/५५)
विवेक ज्ञान से योगी किसी क्रम से किसी विषय का स्पष्ट (तारक) ज्ञान प्राप्त करता है।

(३) **अध्ययन**-अध्ययन=अपनी बुद्धि शक्ति (ऊह) +शास्त्र (शब्द)+गुरु का निर्देश योगसूत्रों में गुरु से शिक्षा की कहीं चर्चा नहीं है, किन्तु सभी सूत्रों के अर्थ, प्रयोग, रहस्य आदि समझने के लिये गुरु की जरूरत है। इस अर्थ में-
ऊह=अपनी विचार शक्ति पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण।
शब्द=ऊह+शास्त्र।
अध्ययन=ऊह+शास्त्र+ प्रकृति। अर्थात् अध्ययन में अपनी तर्क विचार शक्ति से शास्त्र को समझ कर उसका परीक्षण तथा उपयोग किया जाता है। इस अर्थ में दत्तात्रेय के २४ गुरु सजीव और निर्जीव थे। यह तार सिद्धि है तथा हेतु (कारण) मानी जाती है।
अध्ययन सिद्धि के उदाहरण-
लोकों का ज्ञान-भुवन ज्ञानं सूर्ये संयमात् (३/२७)
सूर्य में संयम करने से विश्व के सात लोकों या शरीर के सात चक्रों का ज्ञान होता है।
नक्षत्र मण्डल-चन्द्रे तारा व्यूह ज्ञानम् (३/२८)।
चन्द्र पर संयम करने से नक्षत्र मण्डल का ज्ञान होता है।
गति का ज्ञान-ध्रुवे तद्गति ज्ञानम् (३/२९)
ध्रुव पर संयम करने से उसकी गति का ज्ञान होता है। किसी वस्तु को स्थिर मानने पर उसकी तुलना में अन्य वस्तुओं की गति मापी जाती है। अथवा, ध्रुव तारा या सनातन विश्व पर संयम करने से परिवर्त्तनशील वस्तुओं का स्थान या दिशा परिवर्त्तन जाना जा सकता है। शरीर का ध्रुव आज्ञा-चक्र या नासाग्र है-उस पर संयम करने से अपना या दूसरे का भविष्य जाना जा सकता है।
(४) **सुहृत्प्राप्ति**-या सम्यक् सिद्धि-वाचस्पति मिश्र के अनुसार गुरु-शिष्य तथा सहाध्यायिओं से विमर्श कर एक मत होकर जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह सुहृत्प्राप्ति है। इसका शाब्दिक अर्थ दूसरों को प्रभावित करना, मैत्री करना, उनके विचार जानना आदि है। योग-सूत्र के उदाहरण-
दूसरे का मनोभाव जानना-प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् (३/१९)
-चित्तवृत्ति (हाव-भाव) का साक्षात् करने से दूसरे के चित्त का ज्ञान होता है।
सुहृत् सिद्धि-मैत्र्यादिषु बलानि (३/२३)
-मैत्री आदि में संयम करने से मैत्री आदि बल प्राप्त होते हैं।
(१/३२) के अनुसार मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा-में प्रथम तीन पर संयम करने

से प्राणियों की मैत्री, दु:ख दूर करने की शक्ति तथा समभाव होता है। कुछ का विचार है कि उपेक्षा पर संयम करने से मनोबल या आत्मबल मिलता है।

(५) **दान या महामुदित**-दैप् शोधने (धातुपाठ १/६५६) के अनुसार इसका अर्थ संशय, विपरीत ज्ञान तथा कामनाओं को शुद्ध कर विवेक की प्राप्ति है (वाचस्पति मिश्र)। अन्य अर्थ है गुरु या सिद्ध के अनुग्रह से(शक्तिपात, व्यक्तिगत निर्देश) प्राप्त सिद्धि। एक अन्य मत है-धन प्राप्ति की सिद्धि जिससे लोगों को इसका दान दिया जा सके। धन प्राप्ति की सिद्धियों प्राप्ति तथा प्राकाम्य का वर्णन होचुका है। अन्य उदाहरण है, सिद्धों का दर्शन-मूर्ध (मूर्धा) ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम् (३/३२) मूर्धा या कपाल के ब्रह्मरन्ध्र में प्रकाश पर संयम करने से द्यौ तथा पृथ्वी लोक के बीच घूमने वाले सिद्धों का दर्शन होता है तथा उनसे उपदेश या अनुग्रह मिलता है।

(६) **तीन प्रकार के दु:खों**-आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक को दूर करने वाली सिद्धियों का नाम है-प्रमोद, मुदित, तथा मोदमान। ये सिद्धियां सिर्फ कार्य हैं, अर्थात् अपने लिये उपयोगी हैं।

प्रमोद-आध्यात्मिक का अर्थ अपने शरीर तथा मन का कष्ट दूर करना या उसका बल बढ़ाना है। इसके उदाहरण अणिमा, महिमा, गरिमा तथा लघिमा हैं। अन्य-शरीर दशा ज्ञान-नाभिचक्रे कायव्यूह ज्ञानम्(३/२९)

नाभि-चक्र में संयम करने से शरीर के व्यूह अर्थात् ७ धातुओं की स्थिति तथा ३ दोषों-वात, पित्त, कफ का ज्ञान होता है।

भूख प्यास मिटाना-कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः (३/३०)

कण्ठकूप (जीभ के नीचे कण्ठ के नी चे का गढ़ा) में प्राण आदि का स्पर्श होने से भूख-प्यास लगती है। उस पर संयम करने से भूख-प्यास नहीं लगती। अन्य मत है कि विशुद्धि चक्र का आकाश तत्त्व के साथ सम्बन्ध है, उस पर ध्यान करने से आकाश की प्राण शक्ति (विन्दु तथा आज्ञाचक्र होकर) या अमृत आता है, जिससे शरीर का सब प्रकार से पोषण होता है; अतः भूख प्यास नहीं लगती।

स्थिरता-कूर्म नाड्यां स्थैर्यम् (३/३१)।

कण्ठ-कूप के नीचे छाती में कछुए के आकार वाली नाड़ी है, उसमें संयम करने से स्थिरता होती ह। कूर्म नाड़ी का काम आंख की पलक तथा पुतली का काम करना है(कूर्म वायु)। भगवान का कूर्म -अवतार समुद्र-मन्थन के समय मकराचल को स्थिर करने के लिये हुआ था। शरीर में मन्दराचल मेरुदण्ड है तथा श्वास-प्रश्वास

उसको घुमाने वाले हैं। अत: उसका आधार स्वाधिष्ठान चक्र कूर्म नाड़ी का आधार होना चाहिये। कूर्म जल-स्थल दोनों का जीव है, अत: उसकी शक्ति मूलाधार-स्वाधिष्ठान (भू तथा जल तत्त्व) के बीच में होनी चाहिये। क्रियायोग साधना में इसे काया स्थैर्य कहा जाता है।

(७) **आधिभौतिक दु:ख** निवारण या मुदित सिद्धि-मुदित का अर्थ है,बाहरी पदार्थों से प्रसन्न। बाहरी पदार्थों के कारण जो कष्ट होता है, उसे दूर करने की शक्ति ही यह सिद्धि है। प्रकाम्य या वशित्व इस प्रकार की सिद्धि हैं। अन्य उदाहरण हैं-

शरीर बल-बलेषु हस्तिबलादीनि (३/२५)

बल में संयम करने से हाथी आदि का बल प्राप्त होता है। अन्य पक्षियों या जलचरों का बल भी इसी प्रकार प्राप्त होता है, जिससे जल, थल, वायु में विचरण तथा कार्य करने की शक्ति होती है।

मार्ग बाधाओं से ऊपर उठना-उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च(३/४०)

उदान वायु को जीतने से जल, कीचड़, कण्टक आदि पदार्थों का योगी से स्पर्श नहीं होता तथा वह ऊपर उठ सकता है (या प्राण वायु को वश में कर इच्छामृत्यु प्राप्त करता है)। इसीलिये इसका नाम उदान वायु है।

ज्वलन-समान जयाज्ज्वलनम् (३/४१)

समान वायु जीतने से शरीर में से तेज निकलता है। या ताप ज्वर पर नियन्त्रण।

(८) **आधिदैविक** दु:ख निवारण या मोदमान-आकाशीय या दिव्य कारणों पर विजय से उनसे उत्पन्न दु:ख दूर होते हैं। वह सिद्ध सब प्रकार से प्रसन्न होता है (मोदमान)। ईशित्व सिद्धि इसका चरम रूप है। अन्य उदाहरण हैं-

आकाश सिद्धि-कायाकाशयो: सम्बन्ध संयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाश गमनम् (३/४३)-शरीर तथा आकाश के परस्पर सम्बन्ध पर संयम करने से तथा रूई जैसे पदार्थ की धारणा से आकाश में गमन हो सकता है।

परकाया प्रवेश-बन्धनकारण शैथिल्यात् प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य पर शरीर प्रवेश: (३/३९)-बन्धन का कारण शिथिल कर चित्त के प्रवेश निर्गम नाड़ी के ज्ञान से चित्त दूसरे शरीर में प्रवेश कर सकता है।

भूतजय-स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्व संयमात् भूत जय:(३/४५)

पांच तत्त्वों की स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म अन्वय और अर्थवत्व अवस्थाओं पर संयम करने से भूतों पर जय होता है। इसे ईशित्व भी कहा जा सकता है (किसी पदार्थ का निर्माण या नाश)।

अन्तर्धान-काय रूपसंयमात् सद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुष्प्रकाशसम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् (३/२१)

शरीर के रूप में संयम करने से उसकी ग्राह्य शक्ति का स्तम्भ हो जाता है, अत: उसे दूसरे की आंख नहीं पकड़ पाती है। उसी प्रकार शब्दादि विषयों पर संयम करने से योगी के शरीर के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध को पास में बैठा आदमी नहीं जान सकता।

विदेह सिद्धि-बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा तत: प्रकाशावरणक्षय: (३/४४)

महाविदेह (शरीर हीन अवस्था) में चेतना शरीर से बाहर रहती है। उस पर संयम करने से ज्ञान के प्रकाश को छिपाने वाला आवरण (तामसिक स्थूल शरीर की बाधा) नष्ट होता है।

(४) **सिद्धि के भेद तथा स्वरूप**-सिद्धि केअणिमा आदि भेद प्रसिद्ध हैं। यहां ऊह आदि भेद हैं-दोनों की संख्या ८ है।

क्या वे एक ही हैं ?

सिद्धि कारण, कार्य है या उसकी शक्ति-मात्र है?

इन प्रश्नों का पूर्ण समाधान नहीं हो सकता, क्योंकि सिद्धि पाने पर ही इनका अर्थ, विधि आदि स्पष्ट होगी।

सम्पूर्ण सिद्ध परम-पुरुष के अतिरिक्त कोई नहीं है। इनका परिचय मात्र भी सम्भवत: केवल कपिल को ही था जो आदि-विद्वान् तथा भगवान् के सांख्य अवतार थे।

प्रति सिद्धि कुछ अंश तक ही प्राप्त होती है। योग सूत्रों के अनुसार उनका वर्णन साधना विधि तथा चेतना स्तर के अनुसार किया गया है। सांख्यकारिका में यह साधना क्रम से दिया गया है। यह कारण-कार्य का भी क्रम है। योग-सूत्र में अणिमा आदि का वर्णन प्राय: अन्त में है। उन दोनों के सभी सम्बन्धित पदों का प्राय: समान अर्थ मान कर सिद्धियों का रूप कुछ अंश में समझा जा सकता है।

इनकी तुलना सारणी रूप में कारण तथा विधि के साथ की जा रही है-

	सांख्य वर्णित सिद्धि	योग वर्णित सिद्धि
कारण	१.ऊह (संस्कार से)	१.अणिमा-अणोरणीयान्=आत्मा
(चेष्टा)	२.शब्द(+ शास्त्र से)	२.महिमा-महत् ज्ञान-वेद
	३.अध्ययन(+गुरु से)	३.गरिमा-गुरु तत्त्व
कार्य	४.आध्यात्मिक-आन्तरिक दु:ख	४.लघिमा-शरीर के भीतरी अङ्ग
(स्वयं का	५.आधिभौतिक-बाहरी पदार्थ	५.प्राप्ति-बाहरी पदार्थ की प्राप्ति
लाभ)	६.आधिदैविक-आकाशीय शक्ति	६. प्राकाम्य-कल्पवृक्ष (दिव्य शक्ति)
कार्य+कारण	७.सुहृत्प्राप्ति-अन्य से समन्वय	७.ईशित्व-लोकों पर सामान्य प्रभाव
अन्य कालाभ	८.दान-अन्य का कल्याण	८.वशित्व-पूर्णतया वश में करना या सुधार

व्याकरण महाभाष्य-रक्षोहागमलघ्वसन्देहा: प्रयोजनम्(पस्पशाह्निक)-अर्थात् व्याकरण के ५ उद्देश्य हैं- रक्षा,ऊह, आगम, लघु, असन्देह। यहां-
आगम=शब्द+गुरु से अध्ययन।
लघु=लघिमा, आन्तरिक सुख।
असन्देह-ज्ञान प्राप्ति, दिव्य शक्ति।
रक्षा-अन्य का लाभ।

(५) अङ्कुश-सांख्यकारिका के अनुसार इसके पूर्वोक्त ३ अङ्कुश हैं-
विपर्यय (५), अशक्ति (२८), तुष्टि (९)। स्वयं सिद्धियां (८) भी योग के लक्ष्य मोक्ष (अथवा सांख्य के अनुसार ज्ञान प्राप्ति) में अङ्कुश या बाधा हैं -
ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धय: (३/३८)।
ये सिद्धियां मानसिक शक्ति के विकास से होती हैं किन्तु समाधि पाने में बाधा हैं। प्रलोभन से मनुष्य समाधि का अभ्यास छोड़ देता है। इस प्रकार ५+२८+९+८=५० अङ्कुश समाधि या ज्ञान अवस्था पाने में हैं।

१६.दश मौलिकार्था:

शब्दार्थ-दश=दशा, रूप या स्थिति। इनकी संख्या दश होती है, अत: दश का अर्थ १० है।
मौलिक-मूल वस्तु का। यहां मूल वस्तुयें दो हैं-पुरुष तथा मूल प्रकृति (या प्रधान)। यहां इसका अन्य पाठ मूलिक है जिसका अर्थ भी मूलभूत है। सांख्य सूत्र १/६७ में इसका अर्थ समझाया गया है कि जिस पदार्थ की उत्पत्ति का मूल कारण नहीं है, उसे मूल (प्रकृति) कहते हैं -मूले मूलाभावादमूलम्।

इसकी व्याख्या सम्बन्धी राजवार्त्तिक की पंक्ति में मौलिकार्था: पाठ है। उसके बदले चूलिकार्था: सांख्यकारिका की युक्तिदीपिका व्याख्या में है। राजानक रत्नाकर कृत हरविजय काव्य में भी प्रकृति पुरुष वर्णन में चूलिकार्थ का प्रयोग हुआ है-

प्रकृते: पृथक् प्रकृति शून्यतां गत:, प्रतिषिद्ध वस्तु गतधर्म निष्क्रिय:।
पुरुषस्त्वमेव किल पञ्चविंशक:, स्फुट चूलिकार्थ वचनैर्निगद्यते ।।

मूलिक=मूल+इन्, मौलिक:=मूल+ठञ्।
चूलिक-चुल्+अन्=चूड़ा (यहां 'ल' का 'ड़' होता है),
चूलिक=चुल्+इन्-मुख्य, शीर्ष या मूल।

अर्थ-आशय, प्रयोजन, लक्ष्य, उद्देश्य, २.कारण, ३.वस्तु या विषय, ४. धन सम्पत्ति, ५.तात्पर्य, सारांश, ६.उपयोग।

व्याख्या-(१) **दस अर्थ क्यों**-यहां मूलिकार्था: का अर्थ मूल के गुण हैं। पदार्थ का धर्म भी उसका गुण कहा जाता है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं-

धृति क्षमा दमो स्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह:।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकंधर्म लक्षणम् ।।(६/९२)

योग-शास्त्र में यम तथा नियम-ये धर्म के पालन रूप योग के प्रथम दो अङ्ग हैं। मन के भी ५-५ अर्थात् कुल १० अङ्ग हैं-

अहिंसा सत्या स्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा: (२/३०)
शौच सन्तोष तप: स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमा: (२/३२)

यम निषेध तथा नियम उसका विपरीत विधि है। इसी प्रकार यहां बताये गये मूल के धर्मों में कुछ परस्पर विपरीत दीखते हैं। मनुस्मृति तथा योगसूत्र के लक्षण प्राय: समान हैं-

मनु	योग	मनु	योग
धृति	----	इन्द्रिय निग्रह	ब्रह्मचर्य
क्षमा	----	धी	स्वाध्याय
दम	तप	विद्या	----
अस्तेय	अस्तेय	सत्य	सत्य
शौच	शौच	अक्रोध	अहिंसा

पुरुष तथा मूल प्रकृति को शैव दर्शन में शिव तथा शक्ति कहा गया है। इनके भेद ११ हैं जो शैव दर्शन के ११ अतिरिक्त तत्त्व हैं। परमशिव को छोड़कर १० भेद

यहां भी हैं। या शिव के ५ मुखों की २-२ सीमाओं के रूप में १० महाविद्यायें हैं, जो १० मौलिक अर्थों के समान ५ परस्पर विपरीत साधनायें हैं।

१० शैवागमों के समान विचार करने की १० विधियां हैं , जिसके अनुसार १० लक्षण हैं।

सांख्यसूत्र या सांख्यकारिका में कहीं भी दस लक्षणों का वर्णन नहीं है। पर अन्तिम ७२ वीं सांख्यकारिका में इसे षष्टितन्त्र पर आधारित बताया गया है। इसकी तत्त्वकौमुदी -व्याख्या में वाचस्पति मिश्र ने कहा है कि २५ तत्त्वों के ६० गुण हैं। इसमें मूल (प्रकृति+पुरुष) के अतिरिक्त अन्य २३ तत्त्वों के ५० गुणों का वर्णन हो चुका, बाकी १० गुण मूल तत्त्वों के हैं। अन्य में ५० गुण हैं-५ विपर्यय (अविद्या), ९ तुष्टि, करणों की २८ अशक्ति, तथा ८ प्रकार की सिद्धि। इनमें भी पुरुष तथा प्रकृति सम्मिलित है। किन्तु १० अर्थ केवल दो मूल तत्त्वों के हैं।

(२) **मूलार्थ-सूची**-दस मौलिक अर्थों की सूची कहीं भी नहीं है। किन्तु सांख्यकारिका ७२ की व्याख्या में एक अनुपलब्ध पुस्तक राजवार्त्तिक के उद्धरण से इनका नाम दिया गया है-

प्रधानास्तित्त्वमेकत्वमर्थवत्त्वमथान्यता। पारार्थ्यं च तथानैक्य वियोगो योग एव च।।
शेषवृत्तिरकर्त्तृत्वं मौलिकार्थाः स्मृता दश। विपर्ययः पञ्चविधस्तथोक्ता नव तुष्टयः।
करणानामसामर्थ्यमष्टाविंशतिधा स्मृतम्। इति षष्टिः पदार्थानामष्टाभिः सह सिद्धिभिः।।

इसमें प्रधान (मूल प्रकृति) के गुण हैं- एकत्व, अर्थवत्ता, परार्थत्व।
दोनों के विषय में-अस्तित्त्व, वियोग तथा योग।
अन्य २३ तत्त्वों से भिन्नता (शेषवृत्ति)-अन्य तत्त्वों (शेष) की स्थूल तथा सूक्ष्म अवस्थायें वृत्ति हैं, उनकी वृत्तियों का कारण मूल तत्त्व है।

एकत्व, अर्थवत्त्व, परार्थ्य-अव्यक्त मूल प्रकृति में ये ३ धर्म हैं। व्यक्त के विपरीत धर्म दिखाकर अव्यक्त का धर्म सांख्यकारिका १० में दिया गया है-

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्।

इसमें एकत्व गुण इनका विपरीत है -हेतुमत् (जिसकी उत्पत्ति का कारण हो-कारण नहीं रहने से व्यक्त के एक से अधिक भेद होते हैं), अनित्य (सदा नहीं रहने से कई रूपों में प्रकट होगा), अव्यापी (हर स्थान में व्याप्त नहीं रहने से अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग रूप होगा), सक्रिय (क्रिया से अपना रूप बदलता है), अनेक , अपने कारण में आश्रित (व्यक्त कारणों के अनुसार भिन्न भिन्न होगा),

अवयवयुक्त, लिङ्ग (अलग रूप के पहचान का चिह्न)।

अर्थवत्त्व का अर्थ प्रयोजन वाला है। मूल प्रकृति के अन्य भेद उत्पन्न करना इसका प्रयोजन है।

परार्थ्य-पुरुष के लिये प्रकृति काम करती है, अपने लिये नहीं। सांख्यकारिका में पुरुष के लिये प्रकृति का कार्य विस्तार से समझाया गया है-

इत्येव प्रकृति कृतो महदादि विशेष भूत पर्यन्तः।
प्रति पुरुष विमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थारम्भः ।।५६ ।।

प्रत्येक पुरुष के मोक्ष के लिये महत्तत्त्व से लेकर महाभूतों तक की सृष्टि प्रकृति द्वारा की गयी है। यह सृष्टि अपने लिये की गयी है, ऐसा प्रतीत होने पर भी वस्तुतः दूसरे के लिये ही है, क्योंकि प्रत्येक पुरुष का मोक्ष होना इस का फल है।

वत्सविवृद्धि निमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिस्तस्य।
पुरुष विमोक्ष निमित्तं तथा प्रवृत्ति; प्रधानस्य ।।५७ ।।

जिस प्रकार बछड़े की वृद्धि के लिये अचेतन दुग्ध (स्वयं) निःसृत होता है, उसी प्रकार पुरष के मोक्ष के लिये (अचेतन) प्रकृति भी (स्वतः) प्रवृत्त होती है।

औत्सुक्य निवृत्त्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्तते लोकः।
पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम् ।।५८ ।।

जिस प्रकार उत्सुकता की निवृत्ति (=स्वेच्छा की पूर्त्ति) के लिये कोई व्यक्ति कार्यों में प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार प्रकृति पुरुष के मोक्ष के लिये प्रवृत्त होती है।

रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः ।।५९ ।।

जिस पअकार कोई नर्तकी रङ्गस्थ (नाट्य स्थान स्थित) दर्शकों के समक्ष नृत्य कर चुकने के बाद फिर नृत्य नहीं करती, उसी प्रकार प्रकृति पुरुष के सामने अपने को प्रकाशित करने के बाद निवृत्त हो जाती है।

नानाविधै रु पायैरु पकारिण्यनुपकारिणः पुंसः।
गुणवत्यगुणस्य सतस्तस्यार्थमपार्थकं चरति ।।६० ।।

गुणवती (त्रिगुणमयी) एवं उपकारिणी प्रकृति व्यर्थ ही निर्गुण एवं अनुपकारी (उपकारहीन) पुरुष का अर्थ (भोगापवर्गरूप पुरुषार्थ) अनेक उपायों (फलसाधनों) द्वारा सम्पादित करती है।

प्रकृतेः सुकुमारतर न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति।

या दृष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य ।।६१।।

मेरी (ईश्वरकृष्ण) की यह धारणा है कि प्रकृति से अधिक सुकुमार (कोमल) कोई अन्य पदार्थ नहीं है, क्योंकि यह ज्ञात होते ही कि पुरुष ने मुझे देख लिया है, प्रकृति उसकी दृष्टि मे नहीं आती।

इसी अर्थ के सांख्य सूत्र हैं-

३/६९-नर्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात्(सां.का.५९)

३/७०-दोषबोधेऽपि नोपसर्पण प्रधानस्य कुलवधूवत्।(सां.का.६१)

१/६६-संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य।२/३७-धेनुवत् वत्साय।(सां.का.५७)

भावागणेशादि ने अर्थवत्त्व को पुरुषार्थत्व मानकर पुरुष का धर्म कहा है। एकत्व भी शुद्ध चेतन तत्त्व या समष्टि अन्तकरण मानने से पुरुष (शबल रूपईश्वर) का धर्म है।

सांख्यसूत्र १/१५२-एवमेकत्वेन परिवर्तमानस्य न विरुद्ध धर्माध्यासः।

इस प्रकार पुरुष एक रूप में ही पूर्ण जगत् है किन्तु बुद्धि केधर्म (सुख-दुःख), शरीर के धर्म आदि आरोपित होते हैं, अर्थात् दीखते हैं किन्तु वास्तविक परिवर्तन नहीं आता।

अर्थवत्त्व-पुरुषार्थ करणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात् (२/३६)

अव्यक्त प्रकृति के उल्लास से पुरुष के लिये करणों की उत्पत्ति हुयी। करण १३ हैं- ३ अन्तःकरण, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ ज्ञानेन्द्रिय।

पुरुष गुण-अन्यत्व-जड़ वर्ग से भिन्न होने के कारण अन्यत्व पुरुष का धर्म है-

न प्रकृतिर्न विकृतिर्पुरुषः। (सांख्य कारिका ३)

सांख्य कारिका ११७-संघात परार्थत्वात् त्रिगुणादि विपर्ययादधिष्ठानात्।

पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात्कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ।।

संघातों(मिलित पदार्थों) के दूसरों केलिये होने के कारण, त्रिगुण आदि से विरुद्ध होने के कारण, सभी त्रिगुणात्मक उपाधियों के लिये अधिष्ठाता की सत्ता अपरिहार्य होने के कारण, भोग्य पदार्थ के लिये भोक्ता की अनिवार्यता तथा कैवल्य के लिये प्रवृत्ति होने के कारण पुरुष की प्रकृति से पृथक् सत्ता सिद्ध होती है।

अकर्तृत्व-अहंकारः कर्त्ता न पुरुषः(सांख्य सूत्र ६/५४)

अकर्त्तुरपि फलोपभोगोऽन्नाद्यवत्(सांख्य सूत्र १/१०५)

सांख्य कारिका १९-तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य कैवल्य

माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्त्तृभावश्च ।।

त्रिगुण आदि के विपर्यास के कारण तथा पुरुष के बहुत्त्व के कारण पुरुष का साक्षित्व, कैवल्य, मध्यस्थ भाव, द्रष्टृत्व और अकर्त्तृत्व भाव सिद्ध होते हैं।

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम् ।
गुण कर्त्तृत्वेऽपि तथाकर्त्तेव भवत्युदासीनः ।२०।

अतः पुरुष के संयोग से अचेतन लिङ्ग चेतना युक्त प्रतीत होता है। उसी प्रकार वास्तविक कर्त्ता गुण होने पर भी उदासीन पुरुष कर्त्ता सा प्रतीत होता है (किन्तु नहीं है)।

बहुत्त्व-सांख्यकारिका १८-जन्म मरण करणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च।
पुरुष बहुत्त्वं सिद्धं त्रैगुण्य विपर्ययाच्चैव ।।

जन्म, मरण, करणों (इन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार) की व्यवस्था के कारण, एक साथ सबकी प्रवृत्ति न होने के कारण तथा प्राणियों में सात्त्विकादि के भेद के कारण पुरुष की बहुता सिद्ध होती है।

सांख्य सूत्र ६/४५-पुरुष बहुत्वं व्यवस्थातः।

एक ही पुरुष व्यवस्था (अर्थात् अलग अलग अन्तःकरण, स्थान, समय आदि भेद के कारण) बहुत प्रतीत होता है।

सांख्य सूत्र १/१४९-जन्मादि व्यवस्थातः पुरुष बहुत्वम्।

श्वेताश्वतर उपनिषद्(४/५)-
अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुषेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।।

एक अजन्मा प्रकृति ने तीन गुणों से बहुत प्रजा उत्पन्न की। पुरुष भी अज है। उसका एक रूप (बद्ध) सेवा करती हुयी प्रकृति में लिप्त रहता है, दूसरा मुक्त रूप भोग के बाद प्रकृति को छोड़ देता है।

पुरुष सूक्त (ऋक् १०/९०,वा.यजु.३१,अथर्व१९/६, शतपथ ब्रा.१३/६/२/१२, सामवेद आरण्यक काण्ड ६/४/२) का प्रथम सूक्त पुरुष के अनेक रूपों का वर्णन करता है-

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतोवृत्वात्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम्।
पुरुष हजारों सिरों, आखों, पैरों वाला है, वह भूमि (भ=२४, भूमि=२४ जड़तत्त्व)को सब तरफ से घेरकर उससे १० अङ्गुल अधिक स्थित है।

नवम ऋचा में पुरुष से छन्दों, वेदों की उत्पत्ति बतायी गयी है-
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत: ऋच: सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत।
आत्मा की आहुति → ऋक्-साम → छन्द → यजुर्वेद
छन्दों की गणना से पुरुष के बहु रूपों की गणना की गयी है (ऋक् १/१६४/४१)
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी सा बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्।।
(वाक् रूपी) गौ (अनन्त) सलिल (तरंगयुक्त पदार्थ या आकाश) का विभाजन कर (१,२), ४, ८, ९ पदों वाले छन्दों में विभक्त हुयी। हजार अक्षर तथा उससे परे शब्द करती है या परम व्योम में व्याप्त है।

अत: पुरुष अनन्त है किन्तु उसके गौ रूप में विभाजन की संख्या है- (१+२)ह४ह८ह९ह१०००ह१०००० =८,६४,००,००,०००। यह ब्रह्मा के दिन-रात (२ कल्पों) में वर्षों की संख्या है।

उभय के गुण-<u>अस्तित्व</u>-पुरुष तथा अव्यक्त प्रकृति दोनों नित्य, सदा वर्तमान हैं। संयोग तथा वियोग परिणामी अव्यक्त के स्वाभाविक तथा वास्तविक धर्म हैं, किन्तु नित्य पुरुष में उसका आभास मात्र होता है-
सांख्यसूत्र ५/८०-संयोगाश्च वियोगान्ता इति न देशादि लाभोऽपि।
संयोग=(पुरुष+प्रकृति) से सृष्टि रचना होती है।
वियोग से मोक्ष होता है।
दोनों एक साथ रहने से प्रलय होता है (अभेद अवस्था)।

<u>शेषवृत्तित्व</u>-प्रकृति के भेदों से मुक्त होने पर भी उनकी वृत्ति पूर्व अवस्था के प्रभाव से जारी रहती है-इसे शेष वृत्तित्व कहते हैं। इसे सामान्यत: पुरुष तथा अव्यक्त दोनों का गुण माना जाता है। किन्तु भावागणेश ने चक्रभ्रमिवत् (कुम्हार के चक्र जैसा) शरीर की स्थिति मानकर इसे केवल पुरुष का धर्म बताया है। चक्रभ्रमि सांख्यकारिका ६७ में समझाया है-
सम्यग्ज्ञानाधिगमाद् धर्मादी नामकारण प्राप्तौ ।
तिष्ठति संस्का रवशाच्चक्रभ्रमिवद् धृत शरीर: ।।
तत्त्व ज्ञान प्राप्त होने से धर्म-अधर्म आदि की कारणता (भोग आदि की उत्पत्ति

होने पर भी) संस्कार (वेग) से (कुछ काल तक) घूमता रहता है।

इसी का सारांश सांख्य सूत्र ३/८२ में है-चक्रभ्रमणवद् धृत शरीरः।

कुछ यही आशय ईशावास्योपनिषद् के शान्ति पाठ का है-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

(पूर्ण पुरुष)-(पूर्ण प्रकृति)=पूर्ण प्रकृति का संस्कार

१७.अनुग्रहः सर्गः

अर्थ-अनुग्रह=अनु+ग्रह+अप् या ल्युट्-१.प्रसाद, कृपा, उपकार, आभार। निग्रहानुग्रहकर्त्ता (पञ्चतन्त्र), पादार्पणानिग्रहपूतपृष्ठम्(रघुवंश २.३५)।

२. स्वीकृति।

निग्रह-अनुग्रह का विपरीत भी है, तथा समानार्थक भी। (निग्रह=नि+ग्रह+अप्) १.रोक रखना,नियन्त्रित करना, वश में करना जैसे इन्द्रिय निग्रह।२.दबाना, रोकना, कुचलना। ३.पकड़ना, गिरफ्तार करना। ४.पराजय। ५.रोगों की चिकित्सा। ६.दण्ड, सजा। ७.डांट फटकार। ८.अरुचि। ९.तर्कदोष, त्रुटि। १०.सीमा।

यहां दर्शन का सूत्र का अर्थ जानने के लिये मूल शब्द से आरम्भ करना होगा। मूल शब्द ग्रह् धातु (क्र्यादि) है जिसके अर्थ हैं-१.पकड़ना,ग्रहण करना, कस कर पकड़ना। २.प्राप्त करना, स्वीकार करना, बलपूर्वक वसूल करना। ३.बन्दी बनाना। ४.मोह लेना, आकृष्ट करना। ५.जीत लेना। ६.प्रसन्न करना। ७.सीखना। ८.ध्यान देना, विचार करना। ९.समझना, उच्चारण करना। १०. धारण करना।

इसका वैदिक रूप ग्रभ् है जिसके अंग्रेजी में समानार्थक शब्द हैं-Grapple, grip, gravel (ग्रावन्=पत्थर, बादल, पहाड़), Gravity(भारीपन, गुरुत्व)।

यहां आरम्भिक सूत्र (Pre-amble) है तत्त्व-समास, अर्थात् तत्त्वों का सङ्कलन। अतः ग्रह का अर्थ होगा-पदार्थों का संकलन, निकट आना, सम्मिलित होना, बलपूर्वक बन्ध जाना। अनु का अर्थ है पीछे या क्रम से (ऊपर नीचे, अपने अपने स्थान पर,समय का क्रम आदि)।

अतः अनुग्रहका अर्थ है-तत्त्वों का बलपूर्वक संकलन जिसमें समय, स्थान, दिशा, उपयोग आदि का क्रम हो।

निग्रह का अर्थ होगा-तत्त्वों का बलपूर्वक संकलन जिसमें तत्त्वों का कोई क्रम नहीं होने से वे कार्य करने में स्वतन्त्र नहीं हैं, क्रम नहीं होने से उनका रूप स्पष्ट नहीं है।

सर्ग=सृज्+घञ्। १.छोड़ना, परित्याग करना। २.सृष्टि। ३. सृष्टि रचना। ४.प्रकृति, विश्व (जिससे सृष्टि निकलती है)। ५.प्राकृतिक गुण। ६.सङ्कल्प, निर्धारण। ७.स्वीकृति। ८.अनुभाग, अध्याय। ९.मल-त्याग। १०. आक्रमण (सेना का)- Surge ahead।

सृष्टि समान्य तत्त्वों की सृष्टि है। सर्ग में विशेष बात है कि उसमें शक्ति, चेतना, काल, दिशा आदि का क्रम है, जो कि अनुग्रह अर्थ से मिलता है।

व्याख्या-(१) इसका सामान्य अर्थ किया जाता है कि प्रकृति के अनुग्रह से सृष्टि हुयी। यह प्रकृति का परार्थ गुण है जिसका वर्णन पिछले सूत्र में किया गया है। पुरुष पर कृपा करने के लिये प्राकृतिक सृष्टि है। इसके लिये सांख्यकारिकाओं ५६-५८ का उदाहरण दिया गया है।

(२) प्रकृति के गुणों केचलते २४ प्रकार के रूप हुये। किन्तु केवल उसके रूपों से सृष्टि नहीं होती। उसके लिये ग्रह् अर्थात् बलों(Gravitation,electromagnetic, nuclear, molecular) के कारण पदार्थ कणों का सङ्कलन होता है। उसके बाद कुछ नये बल मिलाकर वे आपस में बन्धे रहते हैं, जिससे निग्रह होता है। चेतन तत्त्व के कारण उस सङ्कलन में कर्म, स्थान, शक्ति आदि का क्रम होता है जिसे अनुग्रह कहते हैं। वह सृष्टि सर्ग कहलाती है। सर्ग में चेतना के विभिन्न स्तर दीखते हैं। चेतना का लक्षण है-ग्रह अर्थात् विचार, समझना, चीजों को पकड़ना। अनुग्रह का लक्षण है-देश, काल, परिस्थिति तथा इच्छा के अनुसार क्रमबद्ध कार्य करना। सर्ग की दो प्रकार से उत्पत्ति सांख्यकारिका ५२ में बतायी गयी है-

न विना भावैर्लिङ्गं न विना लिङ्गेन भाव निर्वृत्तिः।
लिङ्गाख्यो भावाख्यस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः।।

सर्ग दो प्रकार से कार्य करता है-लिङ्ग तथा भाव। भाव बुद्धि का परिणाम है, तथा लिङ्ग तन्मात्रा का परिणाम है। तन्मात्राओं की विषमता या परिवर्तन से वस्तुओं का रूप या पहचान बदलता है; वह लिङ्ग है।

भाव ——→ तन्मात्रा परिवर्तन ——→ फल
सङ्कल्प क्रिया (चेतन सर्ग का लक्षण)

(३) शैव दर्शन में अनुग्रह तथा निग्रह का वर्णन ईश्वर के ५ कार्यों केरूप में है-
सृष्टि-सृज् धातु से बना है जिसका अर्थ है अपने से बाहर करना, छोड़ना। इसका वर्णन यहां सञ्चर के रूप में है। यह सृष्टि बाहर से नहीं आती है, पहले से विराजमान

प्रकृति-पुरुष (या शिव) से ही निकलती है।

स्थिति-सञ्चर, प्रतिसञ्चर-दोनों हों तथा उनमें सन्तुलन रहे।

संहार या संहृति-यह प्रतिसञ्चर है। इसका अर्थ है समेटना या बटोर लेना। जो बाहर व्यक्त हुआ था वह अव्यक्त हो जाता है, जिससे लगता है कि विनाश हो गया।

निग्रह-विलय, पिधान या तिरोधान-अपने सच्चे स्वरूप का आवरण या गोपन कर लेना। चेतन शक्ति का लोप।

अनुग्रह-अपने स्वरूप या चेतन शक्ति का प्रकाश।

(४) काल के द्वारा निग्रह या चेतना का लय(मृत्यु) होती है। ईश्वर के द्वारा अनुग्रह सा सर्ग अर्थात् चेतन जीव की उत्पत्ति होती है। इन लक्षणों से हम काल का स्वरूप जान पाते हैं। पदार्थों या कणों का स्वाभाविक गुण है-क्रमबद्धता से बिखराव की तरफ गति। इसे थर्मोडायनामिक्स में इन्ट्रोपी (Entropy) या क्रमहीनता की वृद्धि कहते हैं। जीवन के विकास का लक्षण उलटा है। उसमें कर्मेन्द्रियां , ज्ञानेन्द्रियां, अन्त:करण-इन सभी का अधिक क्रमबद्ध रूप हो जाता है। यह स्वाभाविक क्रम के विपरीत गति चेतन तत्त्व के कारण होती है, जिसे पुरुष या विष्णु कहते हैं। अत: ब्रह्मा का अर्थ चतुर्थ आयाम-तत्त्वों की सृष्टि तथा उनका फैलाव या विस्तार है। शिव का अर्थ समय या मृत्यु रूप में काल है जिसका माप पदार्थ में क्रमहीनता की स्थिति से होता है -यह पञ्चम आयाम है। विष्णु का चेतन तत्त्व ६ठा आयाम है जो जीवन का विकास करता है।

१८.चतुर्दशविधो भूतसर्गः

अर्थ-चतुर्दश-चौदह (४+१०)

विधो=प्रकार का। निर्जीव या जड़ पदार्थों के लिये धा का प्रयोग हुआ था। विध: का अर्थ है काम का क्रम। वह १४ प्रकार का है। जीवन की १४ प्रकार की क्रियायें हैं।

भूत=जो भू (पृथ्वी या 'भ' =२४ तत्त्वों) से निकला (त:) है।

भू+चेतन तत्त्व का अंश=भूत।

सर्ग=चेतन सृष्टि।

व्याख्या-(१) **१४ प्रकार क्यों**-प्रकृति के २४ भेदों की २४ प्रकार की क्रियायें हैं। उनमें १० लक्षण पुरुष तथा मूल प्रकृति के हैं। बाकी १४ अन्य भूतों की क्रियायें होंगी।

१४ भूतसर्ग होने के कारण ब्रह्मा के प्रत्येक कल्प में १४ मन्वन्तर, १४ इन्द्र तथा १४ सप्तर्षि होते हैं।

पुरुष (ईश्वर, अर्हत्, बुद्ध) जब अवतार लेता है, तब उसकी कुल संख्या पुरुष के लक्षण १०+ भूतसर्ग १४=२४ होती है। २४ विष्णु के अवतार, तीर्थङ्कर या सिद्ध हैं।

१६ विकृतियों के अनुसार पुरुष की १६ कलायें होती हैं। इसमें एक परम पुरुष है, बाकी १५ कलायें हैं-अव्यय, अक्षर, क्षर पुरुषों की ५-५ कलायें(सूत्र १० की व्याख्या) हैं। इसमें अव्यय पुरुष की प्रथम कला आनन्द साम्यावस्था है, अत: वह भूतसर्ग में नहीं गिना जाता। बाकी १४ कलाओं के अनुसार भूत सर्गों के १४ स्तर चेतन कला की वृद्धि के अनुसार हैं।

(२) **भूत सर्गों के नाम**-सांख्यकारिका ५३ के अनुसार-

अष्टविकल्पो देवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति। मानुष्यश्चैकविध: समासतो भौतिक सर्ग:।

संक्षेप में भौतिक सृष्टि है-८ प्रकार की देव योनि

५ प्रकार की तिर्यक् सृष्टि

१ प्रकार की मनुष्य सृष्टि।

देवयोनि के प्रकार हैं-ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितृयोनि, गन्धर्व, राक्षस और पिशाच। तिर्यक् सृष्टि-पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप, तथा स्थावर (वृक्ष आदि) हैं।

(३) **लोक तथा सर्ग**-अध्याय १ पृष्ठ ११ पर ५ बड़े मण्डलों के ७ लोकों का वर्णन किया गया है। ७ छोटे विश्वों को ही ७ छोटे लोक माना जा सकता है। इन १४ लोकों के चेतना स्तर के अनुसार १४ प्रकार की सृष्टि है। अथवा १३ विश्वों (५ बड़े मण्डल, मध्य में मनुष्य, ७ छोटे विश्व) के १३ प्रकार के भूतसर्ग, तथा एक अविभाज्य ब्रह्म है जो सभी विश्वों के लिये समान है।

सांख्यकारिका ५४ में लोकों के ३ भाग किये गये हैं-

उर्ध्व सत्त्वविशालस्तमोविशालश्च मूलसर्ग:।मध्ये रजोविशालो ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त:।

उर्ध्व लोकों में सत्त्वप्रधान और अधोलोकों में तम: प्रधान सृष्टि है। मध्य में (मनुष्य) रजोविशाल है। यही ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब (क्षुद्र तृण) पर्यन्त सृष्टि है।

इस श्लोक के समानार्थक सांख्यसूत्र हैं-

३/४६-दैवादि प्रभेदा।

३/४७-आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात्।

३/४८-ऊर्ध्व सत्त्व विशााला।

३/४९-तमो विशाला मूलतः।

३/५०-मध्ये रजो विशालाः।

(४) **योनियों का स्वरूप**-मनुष्य से नीचे की ५ योनियां तम प्रधान हैं और प्रत्यक्ष दीखती हैं। इन्हें तिर्यक् (तिरछी) योनि कहते हैं। मनुष्य इनसे आगे बढ़ा है या मनुष्य की तुलना में वे नीचे (तिरस्) हैं, अतः तिर्यक् नाम है। सबसे कम विकसित स्थावर वृक्ष हैं। उसके बाद क्रमशः कीट, सरीसृप, पशु-पक्षी हैं। मनुष्य से ऊपर की योनियां भी मानसिक विकास का क्रम हैं। उन योनियों के नाम के लोक भी पृथ्वी पर हैं-सिद्धपुर=मेक्सिको(सूर्यसिद्धान्त के अनुसार उज्जैन से १८०° पूर्व), यमकोटिपत्तन-न्यूजीलैण्ड (९०° पूर्व)। पश्चिम एसिया में- यमपुरी=यमन, अम्मान, उसकी राजधानी संयमनीपुरी(साना)। ब्रह्मदेश (बर्मा, म्याम्मार=महाअमर)। गन्धर्वदेश-अफगानिस्तान में गान्धार। यक्ष-तिब्बत, मध्य एसिया। किन्नर-चीन। गरुड़, नाग-मध्य एसिया। राक्षस या नैर्ऋत्य-दक्षिण अफ्रीका। असुर-उत्तर अफ्रीका, पश्चिम एसिया। दैत्य-पश्चिम यूरोप (Dutch, Deutchland)। दानव-पूर्वी यूरोप-डैन्यूब नदी (Danube) का पूर्व उत्तर क्षेत्र आदि। किन्तु सभी स्थानों में मनुष्यों या पशु-पक्षियों का स्वरूप एक ही होता है। विभिन्न समयों में उनके विकास, संस्कृति की अवस्था में भेद होता है किन्तु वह योनि भेद नहीं माना जा सकता। आकाश के लोकों की तरह पृथ्वी सतह पर भी लोकों के विभाजन है, ये सिर्फ प्राकृतिक विभाग हैं। भारतीय गोलार्ध में भारत भू-लोक, चीन भुवः,तथा साइबेरिया-रूस स्वर्गलोक हैं। इनके पुनः ३-३ विभाजन से ७ लोक हुये। भारत में विन्ध्य से दक्षिण भू, तिब्बत (त्रिविष्टप) स्वर्ग और बीच में भुवः लोक है। चीन मह; लोक है क्योंकि ब्रह्मा ने यहां के लोगों को महान (हान जाति) कहा था। मंगोलिया जनः लोक है, आकाश का जनःलोक पितरों का अन्तिम स्थान है, मुकुल (मुक्त) या मंगोल का अर्थ अरबी में प्रेत (=प्र+इतः-यहां या इस शरीर से मुक्त) होता है। आकाश का जनः ही अरबी में जन्नत है। साइबेरिया तपस् (Steppees) लोक है, क्योंकि यहां का जीवन कठिन है। उत्तरी ध्रुव सत्य लोक के समान सबसे ठंढा है। यूरोप में भी भूमध्यसागर से सटा भाग भूलोक तथा स्वीडेन (स्थानीय नाम स्वर्ग- Sverge) स्वः लोक तथा मध्य का मैदान भुवर् (Baveria)लोक है। दक्षिण अमेरिका में ब्राजील (हिब्रू अर्थ लौह) भूलोक, अर्जेण्टाइना (रजत, हिब्रू, ग्रीक में Argentum) भुवः लोक तथा दक्षिण ध्रुव स्वः

है। अफ्रीका का भी उत्तर भाग लौह (मुर=लोहा-मोरक्को), दक्षिण भाग स्वर्ण (जिम्बाबवे का जाम्बूनद स्वर्ण) तथा मध्य भाग भुवः है। अटलाण्टिकमहासागर के दोनों तरफ ७ तल(भारत के लिये नीचा) हैं। अतल=इटली, उस क्षेत्र का अन्त होने पर अतलान्तक(Atlantic) सागर जिसमें प्राचीन काल का अतलान्तिस महाद्वीप था। तल सम्भवतः दक्षिण अफ्रीका था क्योंकि तल-अतल के बीच तलातल उत्तरी अफ्रीका था (प्रचीन मिश्र का क्षेत्र तिल-एत-तल-अमर्ना)। रसातल भारत की विपरीत दिशा में दक्षिण अमेरिका था, वहां सबसे ज्यादा प्रवाह की आमेजन नदी है। सुतल, वितल मध्य अमेरिका के दक्षिण भाग तथा कनाडा थे। योग दर्शन के अनुसार दैव सर्ग की योनियां हैं-ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, दैव, गान्धर्व, पित्र्य, विदेह और प्रकृतिलय। देव वर्ग का विकास क्रम है-गान्धर्व, पित्र्य, दैव, ऐन्द्र, प्राजापत्य, ब्राह्म, विदेह तथा प्रकृतिलय। प्रथम ६ योनियों का क्रम लोकों की सूक्ष्मता के आधार पर है। भूलोक मनुष्य योनि से सम्बन्धित है। पृथ्वी के वातावरण, प्रकाश, ताप आदि अवस्थाओं में यह चेतना का सर्वाधिक प्राकृतिक विकास है। उससे क्रमशः सूक्ष्म चेतनायें भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यः लोकों की है। अन्तिम दो अवस्थाओं-विदेह तथा प्रकृतिलय में योगी कैवल्य तुल्य स्थिति में है। अतः इनकी किसी लोक के साथ तुलना नहीं की गयी (योग दर्शन, विभूति पाद सूत्र २६ का व्यास-भाष्य)। मनुष्य से आरम्भ कर देवलोक की ६ योनियां- शरीर के ७ कोषों, चित्त की ७ अवस्थाओं, तथा समाधि के ७ स्तरों के समकक्ष हैं। उपनिषद् में इनका आनन्द क्रमशः पिछले से १०० गुणा बताया गया है। सूक्ष्मता के विचार से आनन्द के कई अवान्तर भेद हैं। अतः विभिन्नउपनिषदों में स्तरों की गिनती भिन्न-भिन्न है।

तैत्तिरीय उपनिषद्शीक्षा-वल्ली,अनुवाक् ८	बृहदारण्यक उपनिषद् ४/३/२	शतपथ ब्राह्मण १४/७/१/३१
१.मनुष्य लोक	१.मनुष्य लोक	१.मनुष्य लोक
२.मनुष्य-गन्धर्व	२.पितर लोक	२.पितर लोक
३.देव-गन्धर्व	३.गन्धर्व लोक	३.कर्म देव
४.पितरदेव	४.आजानजदेव	४.आजानजदेव
५.आजानजदेव	५.प्रजापतिलोक	५.आनन्ददेव
६.कर्मदेव	६.ब्रह्मा का लोक	६.गन्धर्व लोक

७.आनन्ददैव	---------	७.प्रजापति
८.इन्द्रलोक	---------	८.ब्रह्म लोक
९.बृहस्पति लोक	----------	---------
१०.प्रजापति लोक	---------	---------
११.ब्रह्म लोक	----------	----------

शैव दर्शन में इन स्तरों काक्रम है-

क्रम तत्त्व	प्रमाता	मल	प्रमेय
१.पुरुष से पृथ्वी तक	सकलदेवों से लेकर वृक्षों तथा खनिज पदार्थों तक	आणव,मायीय तथा कार्म मल	प्रत्येक वस्तु का एक दूसरे से तथा अपने से भिन्न होने का ज्ञान
२.माया तत्त्व	शून्य, प्रलयाकल	आणव तथा मायीय	शून्य
३.महामाया	विज्ञानाकल तथा सकल	आणव,बोध है, कर्त्तृत्व नहीं है	प्रलयाकलों का ज्ञान
४.शुद्ध विद्या	मन्त्र,अहं-इदं भिन्न	---	प्रत्येक वस्तु का भेद, किन्तु आत्मा का रूप
५.ईश्वर- ज्ञान प्रधान	मन्त्रेश्वर। अह-इदं का समान ज्ञान, एकता	--	विश्व(इदं)अहं (आत्मा) से पृथक् नहीं
६.सदाशिव इच्छा प्रधान	मन्त्र महेश्वर।अहं स्पष्ट विश्व अपना ही रूप		विश्व का अस्फुट ज्ञान जो आत्मबोध ही है।
७.शिव	शिव प्रमाता		सब कुछ प्रकाशमय

१९.त्रिविधो बन्धः

अर्थ-त्रि=तीन, जो एक तथा दो संख्या को पार कर आयी है।

विधो=प्रकार, स्तर रूप में।

बन्ध-बन्धन, आत्मा का प्रकृति के विभिन्न रूपों से संयोग, पुरुष का मुक्त स्वरूप ज्ञान मे बाधा।

व्याख्या (१) सांख्य सूत्र या कारिका में बन्ध के तीन भेदों की कहीं गणना नहीं है। वाचस्पति मिश्र की तत्त्वकौमुदी व्याख्या में इसकी चर्चा है। सांख्य कारिका ४४ है-

धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद्भवत्यधर्मेण।ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः।

धर्म से ऊर्ध्व लोकों तथा अधर्म से अधोलोकों में गति होती है। ज्ञान से अपवर्ग तथा

उसके विपरीत अज्ञान से बन्धन प्राप्त होता है। ऐसा शास्त्र वचन है।ऊर्ध्व लोकों में बह्मलोक पर्यन्त गति या अध: लोक की गति-दोनों ही बन्धन है,क्योंकि बार-बार संसार में आना पड़ता है (गीता८/१६)-

आब्रह्मभुवनाल्लोका: पुनरावर्तिनोऽर्जुन।मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म नविद्यते।

पूर्ण ज्ञान परमात्मा का ही ज्ञान है, अपूर्ण ज्ञान वाला प्रकृति को ही पुरुष समझता है, जिससे ऊर्ध्व लोकों तक जाकर वापस आना पड़ता है। प्रकृति के विभागों के क्रम में ३ प्रकार के बन्धन हैं-

(क) वैकृतिक-जो भूत, मन, इन्द्रिय आदि १६ विकारों में आसक्त हो रहे हैं अथवा राजसी प्रवृत्ति वाले मनुष्य जिनके कर्म सत्वगुण तमोगुण दोनों से मिश्रित हैं, वे इन वासनाओं के अधीन उसी भूमि में मनुष्यलोक में जन्म लेते हैं।

वैराग्यात्प्रकृतिलय: संसारो भवति राजसद्रागात् (सांख्यकारिका ४५)

अर्थात् , राजसी राग से संसार (चक्र) होता है, वैराग्य (राग नहीं होने से) प्रकृति की वासनाओं का लय होता है।

तत्त्वकौमुदी में दिये गये वायुपुराण उद्धरण (वर्त्तमान प्रकाशित पुराण में उपलब्ध नहीं है) के अनुसार विभिन्न विकारों कोआत्मा समझ कर उपासना करने वाले कई मन्वन्तरों (७१ चतुर्युगी) तक अपने पदों पर सुखी (ज्वर हीन) रहते हैं।

आत्मा के इन्द्रिय रूप के उपासक-	१० मन्वन्तर
पञ्च महाभूतों के उपासक --	१०० मन्वन्तर
अहङ्कार के उपासक --	१००० मन्वन्तर
बुद्धि के उपासक --	१०,००० मन्वन्तर
अव्यक्त प्रकृति के उपासक --	१ लाख मन्वन्तर

(ख) दाक्षिणिक-जो आत्म साक्षात्कार से शून्य हाकर केवल सूक्ष्म विषयों (प्रकृति+ विकृति)--महत् (बुद्धि), अहङ्कार तथा ५ तन्मात्रायें-में आसक्त हैं, उनका बन्धन दाक्षिणिक है। वे सकाम इष्ट-पूर्त आदि परोपकार तथा अहिंसात्मक सात्विक कर्मों में लगे हुये हैं, वे ६ दैव सर्गों में सात्विक वासना का फल भोग कर फिर मनुष्य योनि में आते हैं। इसे गीता में दक्षिणायन गति या चन्द्रलोक का मार्ग कहा गया है-

धूमो रात्रिस्तथाकृष्ण:षण्मासा दक्षिणायनम्।तत्रचान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते।

(ग) प्राकृतिक-जो अव्यक्त प्रकृति (मूलप्रकृति या प्रधान) को ही आत्मा समझते हैं, वे सम्प्रज्ञात समाधि की उच्चतर और उच्चतम अवस्थाओं में पहुंचकर बहुत

समय तक विदेह या प्रकृति लय अवस्था में रहते हैं। किन्तु आत्म साक्षात्कार के लिये उन्हें फिर जन्म लेना पड़ता है, जैसे पानी में डुबकी लगानेवाला पुरुष फिरऊपर उठता है-न कारण लयात् कृतकृत्यता मग्नवदुत्थानात्। (सांख्यसूत्र १/५४) कारण लय होने से कृतकृत्यता (मोक्ष-प्राप्ति) नहीं होती, उसे डूबे पुरुष की तरह फिर उठना पड़ता है।

२०.त्रिविधो मोक्षः

अर्थ-त्रिविधः-तीन स्तर का।

मोक्षः-प्रकृति के रूपों से पुरुष या आत्मा की मुक्ति या स्वतन्त्रता,आत्मसाक्षात्कार।

व्याख्या-(१) तीन प्रकार के बन्धन हैं, अतः उनसे छूटने के तीन प्रकार के मोक्ष हैं। स्थूल विषयों से आसक्ति हटाना, राजसी-तामसी वासनाओं को छोड़ना-वैकारिक बन्धन से मोक्ष है। सूक्ष्म विषयों में असक्ति होना तथा सात्विक कार्यों में निष्काम भाव होना दाक्षिणिक मोक्ष है। सानन्द तथा अस्मिता की स्थिति की समाधि के आनन्द में आसक्ति से परम वैराग्य द्वारा चित्त को हटाकर स्वरूप स्थिति पाना प्राकृतिक बन्धन से मोक्ष है।

(२) **गीता में बन्धन तथा मोक्ष**-गीता(३/३) में मुक्ति के दो मार्ग बताये गये हैं-लोकेऽस्मिन्द्विविधानिष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।ज्ञानयोगेन सांख्यानांकर्मयोगेन योगिनाम् किन्तु ६/४७ तथा १२/२ में भक्त को इन दोनों योगियों से श्रेष्ठ बताया गया है। ये तीनों परस्पर सम्बन्धित हैं। भक्ति से ज्ञान होता है-श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् (गीता ४/४९) परमतत्त्व में आसक्ति से उसे जानने की इच्छा होगी, उसके अनुसार चेष्टा से ज्ञान प्राप्त होगा। ज्ञानयुक्त होने पर निष्काम कर्म होगा तथा उसमें कुशलता होगी जो कर्म योग है। इसी प्रकार निष्काम कर्म से लोक संग्रह तथा उससे भक्ति होती है। कर्म के विधि, स्वरूप आदि केचिन्तन से ज्ञान होता है। ज्ञान होने से भी भक्ति योग का मार्ग ज्ञात होता है।

(क) कर्मयोग-इस योग मेंबन्धन मुक्त होने के लिये कर्म के फल में आसक्ति नहीं, वर्तमान कर्म में ही लगा रहे, लोक संग्रह तथा कर्त्तव्य दृष्टि से काम करे।

(ख) ज्ञान योग-सत्-असत्, नित्य-अनित्य विवेक द्वारा असत् शरीर आदि से अपने को अलग अनुभव करे।

(ग) भक्ति योग-अपने सहित सारे संसार को भगवान का ही रूप मान कर सभी कर्मों को भगवान को ही अर्पण करे।

(३) **शैव दर्शन**-इसमें बन्धन को पाश कहा गया है। पाश के अन्तर्गत ५ गौण कारण बताये गये हैं-

(क) मल-गन्दगी, विकार या दूषित पदार्थ। इसे वैकृतिक बन्धन कह सकते हैं।

(ख) माया को जीव अनुभव कर सकता है।

(ग) कर्म के अधीन पुरुष रहता है।

(घ) निरोध में बन्धन है (यह शिव का भी तत्त्व है)।

(ङ) विन्दु आम्भ तथा अन्त का स्रोत है।

इसमें तीन प्रथम प्रमुख हैं-मल, माया, कर्म।

बद्ध पुरुष या पशु के तीन प्रकार हैं-१.सकल पशु-जो सभी विकारों , गुणों, माया तथा कर्मों के पाश से बन्धा है।

२.प्रलयाकल पशु-इसमें कर्म मल का लय होता है, माया तथा आणव मल रहते हैं।

३.विज्ञानाकलपशु-इसमें माया का मल भी समाप्त हो जाता है। केवल आणव मल रहता है।

इसके बाद मोक्ष की ४ स्थितियां भी सूत्र १८ की व्याख्य के अन्त में हैं। मोक्ष के ४ रूपों के अन्य नाम हैं-(१) सालोक्य-लोक की प्राप्ति, (२) सामीप्य का अर्थ है निकटता, (३) साम्य का अर्थ है गुणों, लक्षणों को अपनाना, (४) सायुज्य या योग-एक होना।

२१.त्रिविधं प्रमाणम्

अर्थ-त्रिविधं=तीन प्रकार का, ३ स्तर का।

प्रमाण=निश्चित ज्ञान, सत्य, यथार्थ।

मा-प्रतिषेध अर्थ का अव्यय है (मा+क्विप्)

क्रिया रूप में-मा=१.मापना, २.नाप तौल करना, चिह्न लगाना, सीमाङ्कन करना, ३.मापदण्ड या अन्य से तुलना करना, ४.अन्दर होना, अन्दर स्थान ढूंढ़ना, मुक्त या सहित होना।

संज्ञा रूप-मा=मा+क+टाप्-१.लक्ष्मी, २.माता, ३.माप।

माप=लक्ष्मीपति या माप, मानसार में विष्णु को माप का रूप बताया गया है।

प्रमा=प्र+मा+अङ्+टाप्=१.प्रत्यक्ष ज्ञान, बोध। २.(तर्क में) विशुद्ध ज्ञान। ३.मान या मानक। ४.सीमा परिमाण। ५.साक्ष्य प्रमाण। ६.अधिकारी, निर्णायक जिसका वचन प्रमाण माना जाय। ७.सत्य ज्ञान, यथार्थ। ८.प्रमाण की रीति, यथार्थ ज्ञान

प्राप्त करने के उपाय। ९.मुख्य, मूल। १०.एकता। ११.वेद, शास्त्र, धर्मग्रन्थ। १२.कारण, हेतु।

व्याख्या-(१) सूत्र ८ में अभिबुद्धि या बुद्धि की ५ वृत्तियां बतायी गयी हैं। उसमें प्रथम या श्रेष्ठ वृत्ति प्रमाण या यथार्थ ज्ञान है। यही पातञ्जल योग सूत्र १/६ में भी है। योगसूत्र ७ में उसके ३ भेद हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।

यह भेद तथा लक्षण सांख्यकारिका ४ तथा ५ में हैं-

दृष्टमनुमानमाप्तं वचनं सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेय सिद्धि प्रमाणाद्धि

दृष्ट (प्रत्यक्ष), अनुमान तथा आप्त वचन (शब्द प्रमाण में ही अन्य सभी प्रमाणों का भाव होने से-सांख्य में)-ये तीन प्रमाण मान्य हैं। प्रमाण से ही प्रमेय की सिद्धि (निश्चय ज्ञान) होती है।

प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टं त्रिविधमनुमानमाख्यातम्।
तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकमाप्त श्रुतिराप्तवचनं तु।।

विषय से सम्बन्धित इन्द्रियों पर निर्भर अध्यवसाय (बुद्धि का धर्म या वृत्ति) दृष्ट या प्रत्यक्ष प्रमाण है। अनुमा न ३ प्रकार का-(पूर्ववत्, शेषवत्, सामान्यतो दृष्ट) है। वह लिङ्ग (आकार या आकाश का क्षेत्र) तथा लिङ्गी (लिङ्ग में व्याप्त) पूर्वक ज्ञान (चित्त वृत्ति) है। आप्त वचन का अर्थ है-आप्ता श्रुति (अर्थात् युक्त-वाक्य से उत्पन्न अर्थ ज्ञान)।

इन दोनों श्लोकों का भाव सांख्यसूत्र १/८७ में है-

द्वयोरेकतरस्य वाप्य सन्निकृष्टार्थ परिच्छित्तिः प्रमा, तत्साधकतमं यत्तत् त्रिविधं प्रमाणम्।

द्वयोः का अर्थ है दो प्रकार की इन्द्रियों-ज्ञान तथा कर्म की ५-५ से अनुभव किया हुआ ज्ञान-प्रत्यक्ष।

एकतरस्य-कई विद्यमान लिङ्ग या लिङ्गी में उचित का चुनाव-अनुमान या अपि शब्द का भी यही भाव है।

असन्निकृष्ट का अर्थ अस्पष्ट या वैकल्पिक अर्थों में से स्पष्ट सीमित (परिच्छिन्न) अर्थ प्राप्त करना है। इस कर्म का फल प्रमिति (या प्रमेय) है। इस प्रकार का साधन या चित्तवृत्ति प्रमाण है।

प्रत्यक्ष प्रमाण और प्रमा-विज्ञान भिक्षु के योगवार्त्तिक में प्रत्यक्ष प्रमाण की व्याख्या-

प्रमाता चेतनः शुद्धः प्रमाणंवृत्तिरेवच ।प्रमार्थाकार वृत्तीनां चेतने प्रतिबिम्बनम्।
प्रतिबिम्बित वृत्तीनां विषयो मेय उच्यते ।वृत्तयःसाक्षिभास्याःस्युःकरणस्थानपेक्षणात्

साक्षाद्दर्शन रूपं च साक्षित्वं सांख्य सूत्रितम्।अविकारेण द्रष्टृत्वं साक्षित्वं चापरे जगुः
शुद्ध चेतन को प्रमाता (जीवात्मा रूप में प्रतिबिम्बित आत्मा), वृत्ति को प्रमाण, तथा चेतन में अर्थाकार वृत्तियों का प्रतिबिम्ब प्रमा कहा जाता है। प्रतिबिम्बित वृत्तियों के विषय को मेय अर्थात् प्रमेय कहते हैं। करण अर्थात् इन्द्रियों द्वारा अनुभव न की गयी वृत्तियां साक्षिभास्य होती हैं। सांख्य सूत्र में साक्षात् दर्शन रूप को साक्षी कहा गया है, किन्तु कुछ अधिकारी द्रष्टा रूप को ही साक्षी मानते हैं।

अनुमान-लिङ्ग-लिङ्गी, साधन-साध्य या कार्य-कारण के सम्बन्ध से जो यथार्थ ज्ञान होता है, उसे अनुमान कहते हैं। अनुमान ३ प्रकार का होता है-

१.पूर्ववत्-जहाँ कारण को देखकर कार्य का अनुमान हो जैसे बादलों को देखकर वर्षा का अनुमान।

२.शेषवत्-कार्य से कारण का अनुमान, जैसे नदी के मटमैले पानी को देखकर वर्षा का अनुमान।

३.सामान्यतो दृष्ट-जो सामान्य रूप से देखा गया हो किन्तु विशेष या वर्तमान में नहीं देखा गया है। जैसे घट को देखकर उसे बनाने वाले कुम्हार का अनुमान क्योंकि प्रत्येक बनी हुयी चीज का कोई चेतन कारण होता है।

अनुमान का मूल पहले किया हुआ प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रत्यक्ष प्रमाण में ३ कारण से भ्रान्ति दोष होते हैं-

१.विषय दोष- पदार्थ बहुत दूर या निकट हो, बीच में अवधान हो, बहुत सूक्ष्म हो, ज्यादा प्रकट वस्तु से छिप जाय या समान वस्तुओं से मिश्रित हो- इन अवस्थाओं में नहीं दीखता। सांख्यकारिका ७-

अतिदूरात् सामीप्याद् इन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्याद् व्यवधानाद् अभिभवात् समानाभिहाराच्च ।।

२.इन्द्रिय दोष-इन्द्रियों में अक्षमता हो।

३.मनो दोष-मन के असावधान या अस्थिर होने पर पदार्थ का ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता है।

शब्द प्रमाण-अलौकिक विषय में वेद प्रमाण होते हैं। इसे आगम प्रमाण भी कहते हैं। वेद के आश्रित ऋषि, मुनि तथा आचार्यों के वचन भी इसी में हैं। लौकिक विषय में भी आप्त पुरुष ही प्रमाण हो सकते हैं, जो सत्य जानते हैं। जितने शास्त्र ग्रन्थ हैं, वह समाज में बहुत दिनों से स्वीकृत हैं, अतः उन्हें हम ठीक मानते हैं।

प्रमाण ज्ञान ही सत्य है। अत: सत्य भी ३ प्रकार के हैं-

तीनो कालों-भूत, भविष्य, वर्त्तमान का सत्य।

प्रतिष्ठा (शब्द), नामरूप (अनुमान), तथा यज्ञरूप (प्रत्यक्ष)।

सत्य (केन्द्र में, कारण रूप), ऋत (प्रत्यक्ष या मापा हुआ-क्षेत्र रूप), तथा अनुमानित या अनुभव से परे।

सत्य के विभिन्न रूपों में गर्भस्थ भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति देवता ओं ने श्रीमद्भागवत पुराण (१०/२/२६) में की है-

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।

सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना: ।।

हम सत्यरूप भगवान् की शरण में आये हैं। वह सत्यव्रत हैं, अर्थात् उनके व्रत, सङ्कल्प तथा कर्म सत्य हैं। सबके परम कारण रूप में सत्य हैं, या सत्य पर आधारित हैं। तीन रूपों में (अन्तर्यामी, वेद तथा सूत्रात्मा) या तीन कालों में सत्य हैं। वह सत्य के भी (प्रतिष्ठा, नामरूप यज्ञ के) कारण हैं। तीनों सत्यों में वह निहित हैं। वह सत्य के भी सत्य हैं-कारण के कारण अथवा प्रजापति रूप सत्य के आधार हैं। ऋत, सत्य जिनके नेत्र हैं-या इन दोनों नेताओं(रस्सियों) से जिसने जगत् को नियन्त्रित रखा है।

२२.एतत् सम्यग्ज्ञात्वा कृतकृत्य:स्यात् न पुनस्त्रिविधेन दु:खेनाभिभूयते

अर्थ-एतत्- तत् का अर्थ वह अर्थात् जगत् या उसका अधिष्ठाता ईश्वर। एतत् का अर्थ निश्चित रूप से या विशेष रूप से जिसका निर्देश किया जाय। या (यह+वह) दोनों।

सम्यक्-ठीक प्रकार। स्थिति और उसका ज्ञान दोनों समान हों।

ज्ञात्वा-जानकर।

कृतकृत्य-कृत्य=करने योग्य, उद्देश्य या मूल लक्ष्य। कृतकृत्य का अर्थ जो लक्ष्य पा चुका हो।

स्यात्=हो।

न पुन:-फिर नहीं।

त्रिविधेन-३ प्रकार के।

अभिभूयते-प्रभावित, अशक्त होता है।

यह (तत्त्व-समास- जगत् तथा उसके तत्त्व) ठीक ठीक जानकर मनुष्य अपने लक्ष्य

(मोक्ष या साक्षात्कार) को पाता है तथा फिर तीन प्रकार के दु:खों से नहीं दबाया जाता।

व्याख्या-(१) **त्रिविध दु:ख**-तीन प्रकार के दु:खों का वर्णन सूत्र ७ की व्याख्या में है। तीन प्रकार की सृष्टि-आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक के कारण ३ प्रकार के दु:ख उत्पन्न होते हैं। दु:ख और सुख-ये मन की स्थितियां हैं। अन्त:करण की अवस्था तथा बाह्य क्रियाओं में भेद से दु:ख तथा उनके समन्वय से सुख होता है। अर्थात् इच्छित अवस्था की प्राप्ति सुख तथा उसमें बाधा दु:ख है।

(२) **एतत्**-यह का अर्थ सांख्य शास्त्र या तत्त्व-समास-सूत्र है। दु:ख को दूर करने के साधन के रूप में इस शास्त्र का वर्णन सांख्य सूत्र के प्रथम तथा अन्तिम सूत्रों में हुआ है-अथ त्रिविध दु:खात्यन्तनिवृत्तिरत्न्त पुरुषार्थ: (१/१)

अर्थात् अब अत्यन्त पुरुषार्थ का वर्णन होता है जो त्रिविध दु:खों से पूर्णरूप मुक्ति का मार्ग है।

यद्वातद्वा तदुच्छितिः पुरुषार्थस्तदुच्छितिः पुरुषार्थः (६/७०)

यत्-कर्मक्षय। तत्-ज्ञान। वा-अथवा किसी अन्य उपाय से। तत्=ग्रन्थ समाप्ति के लिये इसे दो बार कहा गया है, अथवा मुक्ति मार्ग के इन भेदों को दूर करना भी पुरुषार्थ है।

सांख्व दर्शन का यह ज्ञान जिसका सूत्रों में निर्देश है, यह गुरु परम्परा से प्राप्त है , नहीं तो सूत्रों की व्याख्या नहीं हो सकती थी।

एतत् पवित्रमग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ।
आसुरिरपि पञ्चशिखाय तेन बहुधा कृतं तन्त्रम्। सांख्य कारिका,७०।

मुनि कपिल ने कृपापूर्वक आसुरि को यह पवित्र कारक तथा श्रेष्ठ ज्ञान दिया था। आसुरि ने पञ्चशिख को (यह ज्ञान) दिया और उन्होंने बहुत प्रकार से(षष्टितन्त्र) इसका प्रतिपादन किया।

शिष्यपरम्परयाऽऽगतमीश्वरकृष्णेन चैतदार्याभिः।
संक्षिप्तमार्यमतिना सम्यग्विज्ञाय सिद्धान्तम्। सां.का.७१।

आर्यमति (तत्त्वज्ञानी) ईश्वरकृष्ण ने सांख्यसिद्धान्त को शिष्य परम्परा से आये इस ज्ञान को ठीक प्रकार से जानने के लिये आर्या छन्दों में संक्षिप्त किया।

सप्तत्या किल तेऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य।
आख्यायिका विरहिताः परवाद विवर्जिताश्चेति।

इन सत्तर कारिकाओं के ग्रन्थ में षष्टितन्त्र के सभी विषयों का वर्णन है। केवल आख्यायिका (दृष्टान्त कथायें) तथा दूसरे मतों का खण्डन नहीं है।

(३) **सभी विषय दु:खमय**-तत्त्वसमास में सुखों के प्रकार का कहीं वर्णन नहीं है, केवल दु:खों के तीन भेद हैं। इसका कारण है कि इच्छित फल की प्राप्ति का जो सुख है, वह भी तात्कालिक या परवर्त्ती दु:ख का कारण है। पातञ्जल योग सूत्र २/१५ में इस विचार से दु:खों के तीन भेद बताये हैं-

परिणाम ताप संस्कार दु:खैर्गुणवृत्तिविरोधच्च दु:खमेव विवेकिन:।

विवेकियों के लिये सभी दु:ख ही हैं-परिणाम, ताप तथा संस्कार दु:ख से तथा गुण वृत्तियों के विरोध से भी।

परिणाम दु:ख-विषयसुख के भोग से इन्द्रियों की तृप्ति नहीं होती है, बल्कि राग, क्लेश होता है -सुखानुशायी राग:(योगसूत्र २/७)।

भोग का अभ्यास बढ़ने से तृष्णा और बढ़ती है (मनुस्मृति २/९४)-

न जातु काम: कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविष्य कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।

कामना विषय भोग से शान्त नहीं होती, और बढ़ती है, जैसे आग हवन डालने से बढ़ती है।

विषय भोग से इन्द्रियां दुर्बल होती हैं, और अन्त में भोग शक्ति बिल्कुल नहीं रहती। तब तृष्णा और सताती है।

ताप दु:ख-विषय सुख का प्रबन्ध करने में, उसके भोग में परिश्रम रूपी कष्ट होता है। इसमें जो रुकावटें होती हैं, उससे द्वेष क्लेश होता है-दु:खानुशायी द्वेष:(योग सूत्र २/८)। सुख के नाश होने का दु:ख भोग काल में भी सताता है।

संस्कार दु:ख-सुख भोग के जो संस्कार चित्त पर पड़ते हैं, उससे उनकी कामना और राग होता है। इसमें रुकावटों के कारण द्वेष होता है। उससे शुभ अशुभ कर्मों के भी संस्कार पड़ते हैं।

गुणवृत्ति विरोध-सत्व, रज, तम को सुख -दु:ख, मोह रूप में वर्णन किया गया है। इनका वर्णन भगवद्गीता २/६२-६३ में है-

ध्यायतो विषयान्पुंस: सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्सञ्जायते काम: कामात्क्रोधोऽभिजायते।६२।

क्रोधाद् भवति सम्मोह: सम्मोहात्स्मृति विभ्रम:।

स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।६३।

विषयों का चिन्तन⟶सङ्ग या निकटता⟶कामना या इच्छा⟶क्रोध ⟶सम्मोह (अज्ञान)⟶स्मृति का भ्रम ⟶बुद्धि का नाश⟶अपना नाश

नाश से बचने का उपाय श्लोकों ६४-६५ में है-

बिना राग द्वेष का विषय भोग⟶आत्म नियन्त्रण⟶प्रसाद⟶ सभी दु:खों की हानि⟶प्रसन्नता⟶स्थिर बुद्धि⟶शान्ति(ब्राह्मी स्थिति)

सांख्य सूत्रों ६/७-८ में भी सभी दु:खमय बताया गया है।

कुत्रापि कोऽपि सुखीति ।७।

तदपि दु:ख शबलमिति दु:ख पक्षे नि:सिपन्ते विवेचका: ।८।

कहां पर कौन सुखी है, अर्थात् कोई नहीं। (सुख भी) दु:ख से मिला हुआ है, अत: विवेकी उसे भी दु:ख ही समझते हैं।

नानक दुखिया सब संसार। सुखी वे हि जिन्ह नाथ अधार।।

(४) **क्लेश**-सामान्यत: क्लेश को ही दु:ख माना गया है। किन्तु चित्त की वह वृत्तियां क्लिष्ट हैं, जिनसे अविद्या का बन्धन और मजबूत होता है । जो चित्त-वृत्ति विद्या या आत्म-साक्षात्कार की दिशा में बढ़ाये वह अक्लिष्ट है।

(५) **कृतकृत्य**-मनुष्य जिन ४ तत्त्वों को पाना चाहता है उसे पुरुषार्थ कहते हैं- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। प्रथम तीन क्रिया रूप हैं। अत: उन तीन का भी अन्तिम उद्देश्य मोक्ष ही है जिसे कृत्य या पुरुषार्थ कहा गया है। आत्मज्ञान या मोक्ष की स्थिति पाने वाला कृतकृत्य है। मनुष्य तत्त्वसमास का ज्ञान प्राप्त कर कृतकृत्य होता है। तभी वह तीन दु:खों से मुक्ति पा सकता है।

(६) **कर्मों का फल**-किसी भी क्रिया के कारण क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट दोनों परिणाम होते हैं। सामान्यत: प्रत्येक परिवर्त्तन में परिश्रम, अव्यवस्था तथा उद्वेग आदि होते हैं। इसे भौतिक विज्ञान में अव्यवस्था की वृद्धि (Increase in disorder or entropy) कहते हैं। समुद्र-मन्थन के पहले विष हुआ, क्रमश: अच्छी चीजें आने के बाद अन्त में अमृत हुआ। तत्त्वों का ठीक ज्ञान रखकर कार्य करने के से तपस् या अन्धकार या मोह से रजस् दु:ख तथा अन्त में सत्व या सुख तक पहुंचा जा सकता है-तमसो मा ज्योतिर्गमय। अन्धकार से प्रकाश तक जाना ही इस ज्ञान का लक्ष्य है।

*****

अध्याय ५

सांख्यकारिका

भूमिका-ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका की सबसे प्रसिद्ध व्याख्या वाचस्पति मिश्र की सांख्य-तत्त्व-कौमुदी है, जिसके मङ्गलाचरण में उन्हों ने श्वेताश्वतर उपनिषद् के इस श्लोक को आधार माना है-

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वी: प्रजा: सृजमानां सरूपा:।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्य: ।४/५।

अर्थात् एक ही अजा (अजन्मा प्रकृति) के लोहित, शुक्ल, कृष्ण रूपों (तीन गुणों-महालक्ष्मी, महासरस्वती, महाकाली रूपों) से विविध सृष्टि हुयी। अज (पुरुष) का एक रूप (जीव) इन कर्मों में लिप्त रहता है, दूसरा इनको त्याग देता है।

मङ्गलाचरण-अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां, बह्वी: प्रजा: सृजमानां नमाम:।
अजा ये तां जुषमाणां भजन्ते, जहात्येनां भुक्तभोगां नुमास्तान् ।१।

हम उस (प्रकृति) को नमस्कार करते हैं, जो अज(अनुत्पन्न, अर्थात् जिसका कोई उपादान कारण नहीं है), एक,लोहित-शुक्ल-कृष्ण रूपवाली (सत्त्व-रज-तम गुण वाली) तथा बहुत प्रजाओं की सृष्टि करने वाली है। जो अनुत्पन्न प्राणी (क्षेत्रज्ञ आत्मा) सेवा करने वाली प्रकृति का अनुसरण करते हैं तथा भुक्तभोगा प्रकृति को त्याग देते हैं, उन्हें भी नमस्कार।

कपिलाय महामुनये मुनये शिष्याय तस्य चासुरये।
पञ्चशिखाय तथेश्वरकृष्णायैते नमस्याम: ।२।

महामुनि कपिल, उनके शिष्य मुनि आसुरि, पञ्चशिख (आसुरि शिष्य) तथा ईश्वरकृष्ण को उनका अनुग्रह पाने के लिये नमस्कार है।

शब्दार्थ सहित कारिकायें

दु:खत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ।१।

त्रिविध दु:ख से अभिघात(हानि) के कारण उसे नष्ट करने के हेतु (उपाय) के बारे में जिज्ञासा होती है। दु:खनाशक इष्ट (लौकिक) उपाय रहने के कारण यह शास्त्रीय जिज्ञासा बेकार नहीं है, क्योंकि लौकिक उपाय से तीन दु:खों का एकान्त (अवश्यम्भावी) तथा अत्यन्त(पुन: उत्पन्न न हो) अभाव नहीं होता।

दृष्टवदा नुश्राविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशयातिशययुक्तः।
तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्त विज्ञानात्।२।

आनुश्राविक (वैदिक) उपाय (यज्ञ अदि कर्म) भी लौकिक उपायों के समान (तीन दु:खों के पूर्ण निवारण में असमर्थ) हैं, क्योंकि ये अशुद्धि, विनाश तथा अतिशय से अनुविद्ध हैं। व्यक्त (महत्तत्त्व आदि विकार), अव्यक्त (सभी व्यक्तों की उपादान रूप प्रकृति) तथा ज्ञ (चिद्रूप पुरुष) के विज्ञान से उत्पन्न उपाय अधिक प्रशस्त (ठीक) है।

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विका रो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।३।

मूल प्रकृति किसी का विकार (कार्य) नहीं है, महान् आदि सात पदार्थ प्रकृति (अपने कार्यों की) तथा विकृति (अपने कारण मूल प्रकृति की) दोनों हैं। सोलह पदार्थ सिर्फ विकार (कार्य) हैं, पुरुष न कारण, न कार्य है।

दृष्टमनुमानमाप्तं वचनं सर्वप्रमाण सिद्धत्वात्।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेय सिद्धिः प्रमाणाद्धि।४।

दृष्ट (प्रत्यक्ष), अनुमान तथा आप्त वचन (शब्द-प्रमाण) में ही बाकी प्रमाण शामिल होने से सांख्य में तीन ही प्रमाण मान्य है। प्रमाण से ही प्रमेयों की सिद्धि (निश्चय ज्ञान) होती है।

प्रतिविषयाध्वसायो दृष्टं त्रिविध मनुमानमाख्यातम्।
तल्लिङ्ग लिङ्गि पूर्वकमाप्तश्रुतिराप्त वचनं तु।५।

विषय से लिप्त इन्द्रिय पर आश्रित अध्यवसाय (बुद्धि धर्म) दृष्ट कहलाता है। अनुमान तीन प्रकार का (पूर्ववत्, शेषवत्, सामान्यतोदृष्ट) है। वह लिङ्ग (व्याप्य) तथा लिङ्गी (व्यापक) ज्ञान चित्तवृत्ति ही है। आप्त वचन का अर्थ है, आप्ता श्रुति (अर्थात् तर्क सम्मत वाक्य द्वारा ज्ञान)।

सामान्यतस्तु दृष्टाद् अतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात्।
तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तागमात् सिद्धम्।६।

अतीन्द्रिय पदार्थ सामान्यतोदृष्ट नामक अनुमान से सिद्ध (प्राप्त) होते हैं, उससे एवं शेषवत् अनुमान से असिद्ध परोक्ष पदार्थ आप्तागम रूप प्रमाण से सिद्ध होता है।

अतिदूरात् सामीप्याद् इन्द्रियघातान्मनोऽनवस्था नात्।
सौक्ष्म्याद् व्यवधानाद् अभिभवात् समानाभिहाराच्च।७।

(वस्तुओं के नहीं दीखने के कारण हैं) -बहुत दूरी, बहुत निकटता, इन्द्रियों का घात (अक्षमता), सूक्ष्म होना, बीच में व्यवधान आना, अभिभव(तिरस्कृत, ज्यादा प्रकाशित वस्तु के सामने छिप जाना), सदृश वस्तु में मिलना।

सौक्ष्म्या त्त दनु पलब्धिनर्भावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः।
महदादि तच्च कार्यं प्रकृतिसरूपं विरूपं च।८।

सूक्ष्म होने के कारण उसकी (प्रकृति की) उपलब्धि (प्रत्वक्ष) नहीं होती, अभाव के कारण नहीं; क्योंकि कार्यो से उसकी उपलब्धि होती है। यह कार्य महदादि अव्यक्त पदार्थ हैं , जो प्रकृति के समान भी हैं, अलग भी।

असदकरणादुपादान ग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम्।९।

(कारण के पहले भी) कार्य रहता है, क्योंकि-(१) असत् (अविद्यमान) होने पर कार्य नहीं उत्पन्न हो सकता, (२) (कार्य की उत्पत्ति के लिये) उपादान कारण के साथ कार्य का सम्बन्ध मानना पड़ता है, (३) सभी कार्य सभी उपादान कारणों से नहीं होते, (४) शक्त (क्षमता वाला) कारण ही शक्य कार्य कर सकता है, और (५) कार्य कारण से अभिन्न है।

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्।१०।

व्यक्त हेतुमान् (सकारण या उत्पन्न होने वाला), अनित्य (नष्ट होने वाला), अव्यापी (एक ही स्थान पर), सक्रिय (स्पन्दरू प क्रिया), अपने कारण में आश्रित, लिङ्ग(प्रधान का बाहरी रूप, अनुमापक) एवं अवयव युक्त है । अव्यक्त इसका विपरीत है।

त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनम्प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्।११।

व्यक्त तथा अव्यक्त दोनों ही त्रिगुण रूप, अविवेकी (मिलकर काम करने वाले), विषय, सर्वसाधारण (अनेक), अचेतन (जड़), तथा प्रसवधर्मी (उत्पादक या परिणामी) हैं। पुरुष इन दोनों से विपरीत तथा समान भी है।

प्रीत्यप्रीति विषादात्मकाः प्रकाश प्रवृत्ति नियमार्थाः।
अन्योन्याभिवाश्रय जनन मिथुन वृत्तयश्च गुणाः।१२।

गुण प्रीति(सुख), अप्रीति (दुःख), विषाद् (मोह) रूप हैं। प्रकाश, प्रवृत्ति

(परिणाम) और नियम(रोक) इनके अर्थ हैं। ये गुण एक दूसरे का अभिभव, आश्रय (सहकारी), जनन (उत्पादन) और मिथुन (सहचर) हैं।

सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः।१३।

सत्त्व लघु तथा प्रकाशक है, रज उपष्टम्भकारी (उत्तेजक, उद्‌घाटक), और चल है, तम गुरु तथा आवरण कारी है। (परस्पर विरुद्ध) ये तीन गुण पुरुषार्थ से प्रयोजित होकर प्रदीप के समान मिलकर कार्य करते हैं।

अविवेक्यादेः सिद्धिस्त्रैगुण्यात्तद्विपर्य येऽभावात्।
कारणगुणात्मकत्वात्कार्यस्याव्यक्तमपि सिद्धम्।१४।

(त्रिगुण रूप अव्यक्त प्रधान में) अविवेकित्व आदि धर्मों की सत्ता सिद्ध होती है, क्योंकि ये सत्त्वादि गुण सुख-दुःख-मोहात्मक हैं। जहां ये धर्म नहीं हैं, वहां इन तीन गुणों का अभाव दीखता है। (व्यक्त महत् आदि) कार्यों के कारण अव्यक्त प्रकृति की सत्ता भी सिद्ध होती है।

भेदानां परिणामात् समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च।
कारण कार्य विभागादविभागाद्वैश्वरूप्यस्य।१५।
कारणमस्त्यव्यक्तम् प्रवर्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च।
परिणामतः सलिलवत् प्रतिप्रतिगुणाश्रय विशेषात्। १६।

महत् आदि कार्यों का अव्यक्त रूप उपादान कारण इनसे सिद्ध है-(१) भेदों (महान् आदि) के परिमित होने से, (२) समन्वय से, (३) कारण की शक्ति से कार्य की प्रवृत्ति (उत्पत्ति) होने से, (४) कारण द्वारा कार्य के विभाग से तथा वैश्वरूप्य (अनेक प्रकार के कार्यों) का अपने कारण में अविभाग। यह अव्यक्त अपने त्रिगुण रूप एवं समुदय(प्रधान-अप्रधान से मिलकर), जल की तरह प्रवृत्त होता है। जैसे जल में अन्य चीजें घुल मिल जाती हैं, उसी प्रकार किसी गुण के प्रधान होने पर गौण गुण उसके आश्रय मे रहते हैं।

संघात परार्थत्वात् त्रिगुणादि विपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृ भावात्कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।१७।

प्रकृति से अलग पुरुष की सत्ता इनसे सिद्ध है-संघात(मिलित पदार्थ) दूसरे के लिये हैं, त्रिगुण आदि से विरुद्ध हैं, सभी त्रिगुणात्मक पदार्थों के अधिष्ठान रूप में, भोग्य पदार्थ बिना भोक्ता के नहीं हो सकता, तथा कैवल्य के लिये प्रवृत्ति होती है।

जन्म मरण करणानां प्रति नियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च।
पुरुष बहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्य विपर्ययाच्चैव।१८।

जन्म मरण तथा करणों (इन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहङ्कार) की व्यवस्था के कारण तथा प्राणियों में सात्त्विक आदि भेद के कारण पुरुष की बहुता सिद्ध होती है।

तस्माच्च विपर्या सात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृ भावश्च।१९।

पुरुष के साक्षित्व, कैवल्य, मध्यस्थ (उदासीन), द्रष्टृत्व और अकर्त्तृत्व के प्रमाण हैं-त्रिगुणों का विपर्यास (विपरीतता) तथा पुरुष का बहुत्व।

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
गुण कर्तृत्वेऽपि तथा कर्तेव भवत्युदासीनः।२०।

अतः पुरुष के संयोग से अचेतन लिङ्ग चेतन दीखता है, गुणों के कर्ता होने पर भी पुरुष कर्ता जैसा दीखता है।

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्ध वदुभयो रपि संयो गास्तत्कृतः सर्गः।२१।

पुरुष के द्वारा प्रधान (प्रकृति) के दर्शन (भोग) के लिये तथा पुरुष के कैवल्य के लिये पुरुष और प्रकृति का संयोग होता है, जिससे सृष्टि होती है। यह संयोग पङ्गु तथा अन्ध के संयोग की तरह (एक दूसरे पर निर्भर) है।

प्रकृते र्म हां स्ततो ऽहङ्का रस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात्पञ्च भ्यः पञ्च भूतानि।२२।

(मूल) प्रकृति से महान् (महत्तत्व) और महान् से अहङ्कार उत्पन्न होता है, अहङ्कार से पांच तन्मात्रा तथा ११ इन्द्रियां-कुल १६ तत्त्व होते हैं। इन १६ से ५ तन्मात्रा द्वारा ५ महाभूत होते हैं।

अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्।२३।

अध्यवसाय(निश्चय करने वाला तत्त्व) बुद्धि है। धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य इसके सात्त्विक रूप हैं। इन ४ के विपरीत तामस रूप हैं।

अभिमानो ऽ हङ्का रस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्त्त ते सर्गः।
एकादशश्च गणस्तान्मात्रः पञ्चकश्चैव।२४।

अभिमान को अहङ्कार कहते हैं। उससे दो प्रकार के कार्य होते हैं-११ इन्द्रियां, ५

तन्मात्रा।

सात्त्विक एकादशकः प्रवर्त्त ते वैकृता दहङ्का रात्।
भूतादेस्ता न्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्।२५।

वैकृत नामक अहङ्कार से ११ इन्द्रियों का सात्त्विक गण उत्पन्न होता है। भूतादि संज्ञक तमास अहङ्कार से तामस ता न्मात्र गण उत्पन्न होता है। तैजसात्मक राजस अहङ्कार इन दोनों गणों की उत्पत्ति में सहायक है।

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुः श्रोत्र घ्राण रसनत्वगाख्यानि।
वाक् पाणि पाद पायूपस्थान् कर्मेन्द्रियाण्याहुः।२६।

चक्षु, कर्ण, घ्राण, रसना, तथा त्वक् नामक ५ बुद्धीन्द्रियां और वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ नामक ५ कर्मेन्द्रियां हैं।

उभयात्मकमत्र मनः सङ्कल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात्।
गुण परिणाम विशेषान्नानात्वं बाह्य भेदाश्च।२७।

इनमें(इन्द्रियों में) मन उभयात्मक इन्द्रिय है। यह सङ्कल्प करने वाला है और इन्द्रियों के सजातीय होने के कारण (अहङ्कार से उत्पन्न होने के कारण) इन्द्रिय भी कहलाता है। गुणों के परिणाम भेद के कारण विविध इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं, जैसे (एक भूता दि से जात) बाह्य पदार्थ के भेद गुण-परिणाम भेद के कारण होते हैं।

रूपादिषु पञ्चानामालोचन मात्रमिष्यते वृत्तिः।
वचनादान विहरणोत्सर्गानन्दाश्च पञ्चानाम्।२८।

चक्षु आदि ५ ज्ञानेन्द्रियों की वृत्ति रूप,शब्द,गन्ध, रस, और स्पर्श-इन ५ विषयों का आलोचनामात्र (वस्तु ज्ञान मात्र) है, ऐसा कहा जाता है। उसी प्रकार वाक् आदि ५ कर्मेन्द्रियों के व्यापार वचन, आदान (ग्रहण), विहरण, उत्सर्ग(मलत्याग) और आनन्द (मैथुन कर्म) कहे जाते हैं।

स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च।२९।

तीनों अनतःकरणों (महत्-अहङ्कार-मन)) के अपने अपने लक्षण ही उनके व्यापार हैं। प्राण आदि पञ्च वायु कारणत्रय की साधारण वृत्ति हैं।

युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।
दृष्टे तथाप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः।३०।

प्रत्यक्ष (विषय) में चारों ही (कोई एक बाह्य तथा तीन अन्तः) करणों के व्यापार

कभी एक साथ कभी क्रमश: दीखते हैं। इसी प्रकार अदृष्ट विषय में भी तीनों अन्त:करणों की वृत्तियां कभी एक साथ कभी क्रमश: दीखती हैं।

स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्परा कूत हेतुकां वृत्तिम्।
पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित्का र्य ते करणम्।३१।

ये (आन्तर और बाह्य) कारण परस्पर आकूत (अभिप्राय अर्थात् स्व-स्व कार्योन्मुखता) के कारण अपनी-अपनी वृत्ति (=व्यापार) को प्राप्त करते हैं। (करणों की कार्योन्मुखता में) भोग-अपवर्ग-रूप पुरुषार्थ ही हेतु है, अन्य कोई (अर्थात् ईश्वर या अभिमानी देव आदि) करणों के प्रयोजक या प्रवर्त्तक नहीं हैं।

करणं त्रयोदश विधं तदाहरण धारण प्रकाशकम्।
कार्यं च तस्य दशधाऽऽहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च।३२।

करण तेरह प्रकार के हैं। वे आहरण, धारण तथा प्रकाश करने वाले हैं। इनका कार्य आहार्य, धार्य और प्रकाश्य है, प्रत्येक कार्य दस प्रकार का होता है।

अन्त:करणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम्।
साम्प्रत कालं बाह्यं त्रिकाल माभ्यन्तरं करणम्।३३।

अन्त:करण तीन प्रकार के हैं, और इन तीन अन्त:करणों के बाह्य करण दस प्रकार के हैं। बाह्य करण वर्तमान विषयक और अन्त:करण त्रिकाल विषयक होते हैं।

बुद्धीन्द्रियाणि तेषां पञ्च विशेषाविशेष विषयाणि।
वाग्भवति शब्दविषया शेषाणि तु पञ्च विषयाणि।३४।

इन दस बाह्य करणों (इन्द्रियों) में पांच ज्ञानेन्द्रियां विशेष (भूत) और अविशेष (तन्मात्र) रूप विविध ग्राह्य विषयों में प्रवृत्त होती हैं। वाक् रूप कर्मेन्द्रिय का विषय शब्द है; शेष ४ कर्मेन्द्रियां, शब्द-स्पर्शादि पञ्चगुणमय पाञ्चभौतिक विषयों में प्रवृत्त होती हैं।

सान्त: करणा बुद्धि: सर्वं विषयमवगाहते यस्मात्।
तस्मात् त्रिविधं करणं द्वारि द्वाराणि शेषाणि।३५।

क्योंकि अन्त:करणों के साथ (अध्यवसाय लक्षण की) बुद्धि समस्त विषयों में व्याप्त होती है, अत: ये तीनों अन्त:करण द्वारी (प्रधान) हैं; अन्य करण द्वार (साधन-मात्र) हैं।

एते प्रदी प कल्पा: परस्पर विलक्षणा गुण विशेषा:।
कृत्स्नं पुरुषस्यार्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति।३६।

गुणों के परिणामभूत एवं परस्पर विलक्षण ये करण प्रदीप के समान (मिलकर काम कर सकते) हैं। ये पुरुष के सभी अर्थों को प्रकाशित कर उसे बुद्धि को समर्पित कर देते हैं।

सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात्पुरुषस्य साधयति बुद्धिः।
सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधान पुरुषान्तरं सूक्ष्मम्।३७।

चूँकि बुद्धि पुरुष के लिये सर्व विषयक भोग को सम्पादित करती है और वही प्रकृति और पुरुष के सूक्ष्म भेद को प्रकट करती है (अतः बुद्धि को ही सर्वोच्च करण माना जाता है)।

तन्मात्राण्यविशेषा स्तेभ्यो भूतानि पञ्च पञ्चभ्यः।
एते स्मृता विशेषाः शान्ता घोराश्च मूढ़ाश्च।३८।

पांच तन्मात्र अविशेष (विशेष रहित) हैं; इन पांचों से आकाश आदि पांच भूत उत्पन्न होते हैं, जो विशेष कहलाते हैं। ये विशेष शान्त (सुखात्मक), घोर दुःखात्मक) और मूढ़ (मोहात्मक) होते हैं।

सूक्ष्मा माता पितृजाः सह प्रभूतैस्त्रिधा विशेषाः स्युः।
सूक्ष्मास्तेषां नियता मातापितृजा निवर्तन्ते।३९।

सूक्ष्म शरीर, माता और पिता से उत्पन्न शरीर, तथा प्रभूत (महाभूत)-ये तीन प्रकार के विशेष होते हैं। इनसे सूक्ष्म शरीर नियत होते हैं। किन्तु माता पिता से उत्पन्न शरीर नाशवान् होते हैं।

पूर्वोत्पन्ना मसक्तं नियतं महदादि सूक्ष्म पर्यन्तम्।
संसरति निरु पभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम्।४०।

सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न, असक्त (अबाधित गति वाले), नियत (स्थायी), महत्तत्त्व से लेकर सूक्ष्म (तन्मात्र) तत्त्वों से बना हुआ, भोग रहित (अर्थात् स्थूल शरीर हीन), धर्माधर्म आदि भावों से अधिवासित, लयशील यह सूक्ष्म शरीर संसरण करता रहता है।

चित्रं यथाश्रय मृते स्थाण्वादिभ्यो विना यथाच्छाया।
तद्वद्विना विशेषै र्न तिष्ठति निराश्रयं लिङ्गम्।४१।

जिस प्रकार आधार के बिना चित्र और स्थाणु (खूंटा) आदि के बिना छाया नहीं रह सकती, उसी प्रकार विशेष के बिना लिङ्ग (अर्थात् बुद्धि, अहङ्कार, इन्द्रिय,तन्मात्र की समष्टि) आश्रयहीन होकर नहीं रह सकता।

पुरुषार्थ हेतुकमिदं निमित्त नैमित्तिक प्रसङ्गेन।
प्रकृतेर्विभुत्वयो गान्नटवद् व्यवतिष्ठते लिङ्गम्।४२।

पुरुषार्थ-रूप हेतु स प्रवर्तित यह लिङ्ग (सूक्ष्म शरीर) धर्म, अधर्म आदि निमित्त और नैमित्तिक (निमित्त हेतु स्थूल शरीर ग्रहण) से सम्बद्ध (अर्थात् निमित्त-नैमित्तिक-परतन्त्र) होने के कारण प्रकृति के विभुत्वयोग (सर्वव्यापकता) से नट के समान (बहुविध रूपों में) अवस्थित है (अर्थात् भोगापवर्ग का सम्पादन करता रहता है)।

सांसिद्धिकाश्च भावाः प्रकृतिका वैकृताश्च धर्माद्याः।
दृष्टाः करणाश्रयिणः कार्याश्रियिणश्च कललाद्याः।४३।

प्रकृति अर्थात् स्वभाव से ही सिद्ध सांसिद्धिक तथा (निमित्त से सिद्ध) वैकृत धर्म, अधर्म आदि भाव करण अर्थात् बुद्धि में आश्रित रहते हैं (बुद्धि-वृत्ति रूप में) एवं कलल (शुक्र-रज का संयुक्त रूप, यह कई रात्रियों के बाद कलल होता है) आदि भाव कार्य अर्थात् नैमित्तिक (शरीर) के होते हैं (अर्थात् कलल आदि शारीरिक धर्म हैं)।

धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण।
ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः।४४।

धर्म से ऊर्ध्व लोकों में तथा अधर्म से अधः लोकों में गति होती है। ज्ञान से अपवर्ग (मोक्ष) तथा उसके विपरीत अज्ञान से बन्धन प्राप्त होता है -ऐसा शास्त्रकारों का कथन है।

वैराग्यात्प्रकृतिल यः संसारो भवति राजसाद्रागात्।
ऐश्वर्यादविघातो विपर्ययात्तद्विपर्यासः।४५।

वैराग्य से प्रकृतिलय होता है; रजः प्रधान राग से संसरण, ऐश्वर्य से इच्छा की बाधाहीनता (इच्छासिद्धि) तथा ऐश्वर्य के अभाव (अनीश्वरता) से इच्छासिद्धि में विपर्यास होता है।

एष प्रत्यय सर्गो विपर्ययाशक्तितुष्टि सिद्धयाख्यः।
गुणवैषम्यविमर्दात् तस्य च भेदास्तु पञ्चाशत्।४६।

(आठ धर्मादि बुद्धि कार्य रूप) यह प्रत्यय सर्ग विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि और सिद्धि रूप आख्या (संज्ञा) से युक्त है। गुणों के वैषम्यजनित विमर्द (परस्पराभिभव) से इस विपर्ययादि प्रत्यय सर्ग के पचास भेद होते हैं।

पञ्च विपर्यय भेदा भवन्त्यशक्तिश्च करण वैकल्यात्।
अष्टाविंशति भेदा तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धिः।४७।

विपर्यय के पांच भेद हैं, करणों की विकलता के कारण अशक्ति के अट्ठाइस भेद हैं। तुष्टि के नौ भेद और सिद्धि के आठ भेद होते हैं।

भेदास्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः।
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवत्यन्धतामिस्रः।४८।

तमः के आठ भेद, मोह के आठ भेद, महामोह के दस भेद और अन्धतामिस्र के अठारह भेद होते हैं।

एकादशेन्द्रिय वधाः सह बुद्धि वधैरशक्तिरुद्दिष्टा।
सप्तदश वधा बुद्धे र्विपर्ययात्तुष्टि सिद्धीनाम्।४९।

एकादश इन्द्रियवध (११ इन्द्रियों के नाशक ११ दोष) और बुद्धि के अपने स्वरूपगत उपघात-ये दो पदार्थ-ये दो अशक्ति कहे गये थे। बुद्धि के अपने उपघात १७ हैं-जिनमें नौ तुष्टि के विपर्यय हैं तथा आठ सिद्धि के।

आध्यात्मिकाश्चतस्रः प्रकृत्यु पादान काल भाग्याख्याः।
बाह्या विषयो परमात् पञ्च च नव तुष्टयोऽभिमताः।५०।

प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य-ये ४ आध्यात्मिक तुष्टियां होती हैं। विषयों के प्रति वैराग्य के कारण ५ बाह्य तुष्टियां हैं-इस प्रकार ९ तुष्टियां (पूर्वाचार्यों द्वारा) मानी गयी हैं।

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःख विघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः।५१।

ऊह, शब्द, अध्ययन, त्रिविध दुःख विनाश, सुहृत्प्राप्ति, तथा दान (शुद्धि)-ये ८ सिद्धियां हैं। पूर्वोक्त विपर्यय, अशक्ति और तुष्टि रूप त्रिविध प्रत्यय सिद्धि के निवारक हैं।(तत्त्व कौमुदी में अध्ययन, शब्द, ऊह, सुहृत्प्राप्ति, दान और दुःख विघात-इस क्रम से व्याख्या है।

न विना भावैर्लिङ्गं न विना लिङ्गेन भाव निर्वृत्तिः।
लिङ्गाख्यो भावाख्यस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्त ते सर्गः।५२।

न भाव (बुद्धि के धर्मादि परिणाम) के बिना लिंङ्ग (तन्मात्र परिणाम) सम्भव है, न लिङ्ग के बिना भाव ही। इस लिये लिङ्ग, भाव-इन नामों के २ सर्ग प्रवृत्त होते है।

अष्ट विकल्पो देवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिक सर्गः।५३।

देवसृष्टि (देवयोनि) ८ प्रकार की है, तिर्यक् सृष्टि (तिर्यग्योनि) ५ प्रकार की तथा मनुष्य सृष्टि (मानव जाति) १ प्रकार की है। यही संक्षेप में भौतिक सृष्टि है।

ऊर्ध्वं सत्त्व विशालस्तमो विशालश्च मूलतः सर्गः।
मध्ये रजो विशालो ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्तः।५४।

ऊर्ध्व लोकों में सत्त्व प्रधान और अधो लोकों में तमः प्रधान सृष्टि होती है। मध्य में रजः प्रधान सृष्टि होती है। यही ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सृष्टि है।

तत्र जरा मरण कृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुषः।
लिङ्गस्या विनिवृत्तेस्तस्माद् दुःखं स्वभावेन।५५।

लिङ्ग और पुरुष का भेदज्ञान न रहने से कारण (अथवा लिङ्ग की विनिवृत्ति न होने तक) चेतन पुरुष शरीरादि में उत्पन्न जरा-मरण-हेतुक दुःख भोगता है। अतः यह सिद्ध होता है कि स्वभाव से ही दुःख होता है।

इत्येव प्रकृति कृतो महदादि विशेष भूत पर्यन्तः।
प्रति पुरुष विमोक्षार्थे स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः।५६।

प्रत्येक पुरुष के मोक्ष के लिये महत्तत्त्व से लेकर महाभूतों तक की सृष्टि प्रकृति द्वारा की गयी है। यह सृष्टि अपने लिये की गयी है, ऐसा प्रतीत होने पर भी वस्तुतः दूसरे के लिये ही है, क्योंकि प्रत्येक पुरुष का मोक्ष होना इसका फल है।

वत्स विवृद्धि निमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुष विमोक्ष निमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य।५७।

जिस प्रकार बछड़े की पुष्टि के लिये अचेतन दुग्ध (स्वतः) निःसृत होता है, उसी प्रकार पुरुष के मोक्ष के लिये (अचेतन) प्रकृति भी (स्वतः) प्रवृत्त होती है।

औत्सुक्य निवृत्त्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्तते लोकः।
पुरषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम्।५८।

जिस प्रकार उत्सुकता की निवृत्ति (इच्छा की पूर्त्ति) के लिये कोई व्यक्ति कार्यों में प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार प्रकृति पुरुष के मोक्ष के लिये प्रवृत्त होती है।

रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः।५९।

जिस प्रकार कोई नर्तकी रङ्गस्थ (नाट्य-स्थान-स्थित) दर्शकों के समक्ष नृत्य कर

चुकने के बाद फिर नृत्य नहीं करती, उसी प्रकार प्रकृति पुरुष के समक्ष अपने को प्रकाशित कर देने के बाद निवृत्त हो जाती है।

नाना विधै रु पायै रु पकारि ण्यनु पकारिण: पुंस:।
गुणवत्यगुणस्य सतस्तस्यार्थमपार्थकं चरति।६०।

गुणवती (त्रिगुणमयी) एवं उपकारिणी प्रकृति व्यर्थ ही निर्गुण एवं अनुपकारी (उपकारहीन) पुरुष का अर्थ (भोग अपवर्ग रूप पुरुषार्थ) अनेक उपायों द्वारा सम्पादित करती है।

प्रकृते: सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति।
या दृ ष्टा स्मी ति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरु षस्य।६१।

मेरी (ईश्वरकृष्ण की) यह धारणा है कि प्रकृति से अधिक सुकुमार (अतिकोमल) कोई अन्य पदार्थ नहीं है, क्योंकि यह ज्ञात होते ही कि पुरुष ने मुझे देख लिया है, प्रकृति उसकी दृष्टि में पुन: नहीं आती।

सांख्य-तत्त्व-कौमुदी की ज्योतिषमती व्याख्याकार पं. रामशंकर भट्टाचार्य के अनुसार मूल पाठ इस प्रकार था-

प्रकृते: सुकुमारतरं न किञ्चिदित्यन्तिमा मतिर्भवति।

अन्तिमा मति: भवति(उत्पन्न होती है।)-सप्तभूमि प्रज्ञा की षष्ठ भूमिका -मति या मनन है।

तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृति:।६२।

(अपरिणामित्व एवं निर्गुणत्व के कारण) किसी पुरुष का न तो (वस्तुत:) बन्धन और मोक्ष होता है, न संसरण ही है; अनेक पुरुषों के आश्रय में रहने वाली प्रकृति का ही संसरण और मोक्ष होता है।

रूपै: सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृति:।
सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येक रूपेण।६३।

भोग और अपवर्ग रूप २ पुरुषार्थों की सिद्धि के लिये) प्रकृति ही अपने सात रूपों द्वारा स्वयं को बान्धती है (भोग) और वही अपने एक रूप(ज्ञान) द्वारा स्वयं को मुक्त करती है।

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्य परिशेषम्।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।६४।

पूर्वोक्त प्रकार से तत्त्व विषयक ज्ञान के अभ्यास से नास्मि (मैं क्रियावान् नहीं हूँ), न मे (मेरा स्वामित्व नहीं है) और नाहं (मैं कर्त्ता नहीं हूँ), ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है। यह ज्ञान अपरिशेष (सर्वविषयक), विपर्ययाभाव हेतु विशुद्ध और केवल (मिथ्या ज्ञान से मुक्त) है।

तेन निवृत्त प्रसवामर्थ वशात् सप्त रूप विनिवृत्ताम्।
प्रकृतिं पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवदवस्थितः स्वस्थः।६५।

इस तत्त्व ज्ञान से अपने स्वरूप में स्थित एवं प्रेक्षक (उदासीन) की तरह शान्त होकर पुरुष विवेकज्ञानरूप सामर्थ्य से धर्म, अधर्म आदि सात रूपों से रहित तथा निवृत्त प्रसव (पुनः नवीन कार्योत्पादन से निवृत्त) प्रकृति को देखता है।

दृष्टा मयेत्युपेक्ष क एको दृष्टाहमित्युपरमत्यन्या।
सति संयोगेऽपि तयोः प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य।६६।

एक (चिद्रूप पुरुष) मैंने उसे देख लिया-ऐसा विचार कर उदासीन हो जाता है, और अन्य (प्रकृति) उसने मुझे देख लिया-ऐसा सोच कर कार्योत्पादन रूप व्यापार से अलग हो जाती है। इस प्रकार दोनों का संयोग रहने पर भी (प्रकृति-पुरुष की भोग्यता-भोक्तृता रहने पर भी) सृष्टि (प्रकृति व्यापार) का कोई प्रयोजक नहीं रह जाता।

सम्यग्ज्ञानाधिगमाद् धर्मादी नामकारणप्राप्तौ।
तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्र भ्रमिवद्धृत शरीरः।६७।

तत्त्व ज्ञान के अधिगम होने के कारण धर्म, अधर्म आदि की कारणता (भोगादि उत्पादकत्व) नष्ट हो जाती है। तथापि (प्रारब्ध कर्मों के) संस्कारों के बल से (पुरुष) उसी प्रकार शरीर धारण किये रहता है, जिस प्रकार दण्ड से चलाया गया कुम्हार काचक्र (दण्ड का चालन न होने पर भी) संस्कार (वेग) से (कुछ काल पर्यन्त) घूमता रहता है।

प्राप्ते शरीर भेदे चरितार्थत्वात् प्रधान विनिवृत्तौ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति।६८।

शरीर के अन्त के बाद भी भोग और अपवर्ग रूप अर्थ सम्पन्न होने के कारण प्रकृति विवेकी से हट जाती है तथा पुरुष ऐकान्तिक (अवश्यम्भावी) और आत्यन्तिक (अविनाशी) कैवल्य पाता है।

पुरुषार्थ ज्ञानमिदं गुह्यं परमर्षिणा समाख्यातम्।
स्थित्युत्पत्ति प्रलयाश्चिन्त्यन्ते यत्र भूतानाम्।६९।

पुरुषार्थ (भोग और अपवर्ग) को बताने वाला यह गुप्त रहस्य परमर्षि (कपिल) के द्वारा ठीक प्रकार से कहा गया है। इस ज्ञान द्वारा ही भूतों (प्राणियों) की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय विचारित हुये हैं।

एतत्पवित्र मग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ।
आसुरिरपि पञ्चशिखाय तेन बहुधा कृतं तन्त्रम्।७०।

मुनि कपिल ने कृपा पूर्वक आसुरि को यह पवित्र करने वाला श्रेष्ठ ज्ञान दिया था, आसुरि ने पञ्चशिख को (यह ज्ञान) दिया और उन्होंने इस तन्त्र का नाना प्रकार से प्रतिपादन किया।

शिष्य परम्परयाऽऽगतमीश्वरकृष्णेन चैतदार्याभिः।
संक्षिप्तमार्यं मतिना सम्यग्विज्ञाय सिद्धान्तम्।७१।

आर्यमति (तत्त्वज्ञानी) ईश्वरकृष्ण ने सांख्यसिद्धान्त को सम्यक् जानकर शिष्य परम्परा से आये हुये इस तन्त्र को आर्या छन्दों में संक्षिप्त किया।

सप्तत्यां किल येऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्र स्य।
आख्यायिका विरहिताः परवाद विवर्जिताश्चेति।७२।

इस सप्तति (७० कारिका के ग्रन्थ) में जो विषय निरूपित हुये हैं वे सभी षष्टितन्त्र के ही हैं। (केवल) विषय आख्यायिका एवं परमत खण्डन नहीं है।

*****

अध्याय ६

सांख्यसूत्र

प्रथम अध्याय-सूत्र १-

अथ त्रिविध दु:खात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थ:।१/१।

दु:ख त्रिविध हैं-आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक। इनकी आत्यन्तिक निवृत्ति (पुन: न हो) ही अत्यन्त (परम) पुरुषार्थ है। इससे सांख्य दर्शन का आरम्भ मांगलिक अथ शब्द द्वारा हुआ।

न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनु वृत्ति दर्शनात्।१/२।

दृष्ट (लौकिक) उपायों से त्रिविध दु:खों की अत्यन्तनिवृत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि धन आदि लौकिक उपायों से दु:ख निवृत्ति हाने पर वे फिर उत्पन्न होते हैं।

प्रात्यहिकक्षुत्प्रतीकारवत् तत्प्रतीकारचेष्टनात् पुरुषार्थत्वम्।१/३।

जिस प्रकार प्रतिदिन क्षुधा की शान्ति के लिये चेष्टा की जाती है और वह चेष्टा कुछ सफल भी होती है, उसी प्रकार लौकिक उपायों से अंशत: दु:खनिवृत्ति होने से वे भी पुरुषार्थ रूप में स्वीकृत नहीं होते हैं।

सर्वासम्भवात् सम्भवेऽपि सत्तासम्भवाद् हेय: प्रमाणकुशलै:।१/४।

लौकिक उपाय पाने पर भी उनसे सभी दु:ख पूरी तरह नष्ट नहीं होते। प्रतीकार सम्भव होने पर भी उनके साथ नित्य सम्बन्धित दु:खों की प्राप्ति भी होती है। अत: प्रमाण कुशल लौकिक उपायों को हेय समझते हैं।

उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्ष श्रुते:।१/५।

दृष्ट साधनजन्य फलों की तुलना में मोक्ष का परम उत्कर्ष है। इस विषय में श्रुति प्रमाण है।

अविशेषश्चोभयो:।१/६।

अत्यन्त दु:ख निवृत्ति रूप मोक्ष के साधन के रूप में दृष्ट उपाय(धन आदि का लाभ) और अदृष्ट उपाय (वैदिक कर्म) समान हैं।

न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधि:।१/७।

बद्ध आत्मा (जीव) दु:ख से मुक्ति पाने के लिये साधन करता है। यहां प्रश्न है कि यह बद्ध अवस्था स्वभाव के कारण है या किसी बाहरी कारण से। उत्तर है कि आत्मा स्वभावत: बद्ध नहीं है। बद्ध होना यदि स्वभाव होता तो चिरकाल से मोक्ष

साधन का उपदेश जो रम्परा से चला आ रहा है वह बेकार होता।

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम्।१/८।

जब तक द्रव्य रहता है तब तक उसका स्वभाव बना रहता है। अतः यदि बन्धन स्वाभाविक होता तो मोक्ष साधन का उपदेश बेकार होगा।ऐसी स्थिति में साधन अनुष्ठान का उपदेश करने वाला शास्त्र प्रमाणिक नहीं रहेगा।

नाशक्योपदेशविधिरुपदिष्टेऽप्यनुदेशः।१/९।

अशक्य कार्यों के विषय में कभी उपदेश नहीं दिया जाता क्योंकि यह व्यर्थ होता है। वेद भी बाधित अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता।

शुक्लपटवद्बीजवच्चेत्।१/१०।

स्वभाव से ही शुक्ल वस्त्र की शुक्लता भी नया रंग लगने पर नष्ट हो जाती है। बीज की स्वाभाविक अङ्कुर जनन शक्ति भी अग्नि प्रयोग से नष्ट की जा सकती है। अतः यह शंका होती है कि स्वाभाविक पदार्थ का भी नाश होता है।

शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां नाशक्योपदेशः।१/११।

ये दृष्टान्त संगत नहीं हैं। यहां शक्ति(धर्म) का उद्भव और तिरोभाव ही होते हैं, स्वाभाविक धर्म का नाश नहीं होता। रंगने से वस्त्र की स्वाभाविक शुभ्रता छिप जाती है, कुछ प्रक्रिया से यह वापस लायी जा सकती है। अङ्कुर की जनन शक्ति का भी पुनरुद्धार हो सकता है (योगी के सङ्कल्प या किसी प्रक्रिया से)।

न कालयोगता` व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्।१/१२।

यह कहना ठीक नहीं है कि किसी काल में आत्मा बद्ध हुआ है क्योंकि काल व्यापी और अनित्य है। ऐसे काल से यदि आत्मा का बन्धन होगा तो वह बन्धन भी नित्य होगा, कोई आत्मा मुक्त नहीं हो पायेगी।

न देशयोगतोऽप्यस्मात्।१/१३।

देश के कारण भी आत्मा बद्ध नहीं होता क्योंकि देश भी व्यापी और नित्य है, उसका बन्धन भी नित्य होगा।

नावस्थातो देहधर्मत्वात्तस्याः।१/१४।

अवस्था सिर्फ देह का धर्म है अतः उससे भी आत्मा बद्ध नहीं होता।

असङ्गोऽयं पुरुष इति।१/१५।

श्रुति के अनुसार भी पुरुष असंग है, अतः अवस्था केवल देह का ही धर्म है।

न कर्मणाऽन्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च।१/१६।

कर्म द्वारा मुक्त आत्मा का बन्धन नहीं होता क्योंकि कर्म अनात्म पदार्थों का धर्म है। यदि कर्म से मुक्त आत्मा का बन्धन माना जाय तो अतिप्रसक्ति होगी, अर्थात् साधन बल से मुक्तहोने के बाद पुन: बन्ध होने की संभावना रहेगी, शाश्वती मुक्ति कभी नहीं होगी।

विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे ।१/१७।

दु:खभोग रूपी बन्ध यदि चित्त का धर्म हो तो भोग-वैचित्र्य की अनुपपत्ति होगी। भोगवैचित्र्य की उपपत्ति के लिये यह मानना होगा कि पुरुष के कारण बन्ध है। वह बन्ध प्रतिबिम्ब रूप है।

प्रकृतिनिबन्धनाच्चेत् तस्या अपि पारतन्त्र्यम् ।१/१८।

प्रकृति के कारण भी बन्धन नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रकृति संयोग परतन्त्र है।प्रकृति के साथ संयोग होने पर ही आत्मा बन्धन-युक्त होता है। प्रकृति के अस्तित्वमात्र से आत्मा का दु:खयोग रूप बन्ध नहीं होता। संयोग विशेष के बिना प्रकृति यदि बन्धकारिणी होती तो प्रलय आदि में भी दु:ख रूप बन्ध का प्रसंग होता।

न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते ।१/१९।

नित्य-बुद्ध-शुद्ध-मुक्त-स्वभाव आत्मा का जो दु:खयोग रूप-बन्ध होता है, वह प्रकृति के योग के बिना नहीं हो सकता।

ना विद्यातोऽप्यवस्तुना बन्धायोगात् ।१/२०।

अविद्या से भी मुक्त आत्मा का बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वह अवस्तु है (क्षणिक विज्ञानवाद का मत)

वस्तुत्वे सिद्धान्तहानि: ।१/२१।

अविद्या को वस्तु मानने से अपने ही सिद्धान्त की हानि होती है (क्योंकि उनके मत से अविद्या मिथ्या से उत्पन्न है)

विजातीयद्वैतापत्तिश्च ।१/२२।

अविद्या को वस्तु मानने से विजातीय द्वैत की आपत्ति होगी। अर्थात् क्षणिक विज्ञान से अलग जाति के अविद्या नामक द्वितीय वस्तु की कल्पना करनी होगी। इससे -क्षणिकविज्ञानसन्तानमात्रमद्वितीय तत्त्वम्-मत खण्डित होता है।

विरुद्धोभयरूपा चेत् ।१/२३।

(प्रश्न) अविद्या सत्-असत् रूपी दो विरुद्ध धर्मों से युक्त है या उन दोनों से विलक्षण?

न तादृक्पदार्थाप्रतीतेः।१/२४।

(उत्तर) ऐसा नहीं मान सकते क्योंकि ऐसे किसी पदार्थ की प्रतीति नहीं होती।

न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत्।१/२५।

(शङ्का) चूंकि हम वैशेषिक की तरह ६ (या नैयायिकों का १६) पदार्थ नहीं मानते, अत: जैसी इच्छा हो वैसा पदार्थ मान सकते हैं-सत्, असत्, सदसत्, सदसद्विलक्षण आदि।

अनियतत्वेऽपि नायौक्तिकस्य संग्रहोऽन्यथा बालोन्मत्तादि समत्वम्।१/२६।

(समाधान) पदार्थ की नित्यता नहीं मानने पर भी बिना युक्ति के पदार्थों को नहीं मा न सकते, क्योंकि इससे शंका करने वाला अज्ञ और उन्मत्त के समान होगा।

नानादि विषयोपराग निमित्तोऽप्यस्य।१/२७।

मुक्त आत्मा का बन्धन अनादि विषय वासना से भी नहीं होता (एक प्रकार का बौद्धमत है कि क्षणिक बाह्य विषय की वासना से जीव का बन्धन होता है)।

न बाह्याभ्यन्तरयोरुपरञ्ज्योपरञ्जकभावोऽपि देशव्यवधानात् स्रुघ्नस्थपाटलिपुत्रस्थयोरिव।१/२८।

इन मतों का आधार है कि बाह्य विषय और अन्त:स्थ आत्मा का उपराज्य-उपरञ्जक भाव सम्भव नहीं है, जैसे स्रुघ्न और पाटलिपुत्र -इन दो दूर स्थानों की वस्तुओं में प्रभावी सम्बन्ध नहीं हो सकता।

द्वयोरेकदेशलब्धो परागान्न व्यवस्था।१/२९।

विषय में जाने से आत्मा विषय संयोग कर उससे उपराग होता है-यह मानने पर बन्ध-मोक्ष की कोई व्यवस्था नहीं हो सकेगी-मुक्त भी बद्ध हो जायगा।

अदृष्टवशाच्चेत्।१/३०।

(शङ्का) यदि अदृष्ट द्वारा उपराग माना जाय तो विषय-सहयोग का साम्य रहने पर भी अदृष्ट द्वारा उपराग होगा अन्यथा नहीं।

न द्वयोरेककालायोगादुपकार्योपकारकभाव:।१/३१।

(उत्तर) क्षणिकवाद केअनुसार कर्त्ता और भोक्ता की स्थिति एक काल में नहीं होती, अत: उपकार्य-उपकारक भाव नहीं सिद्ध होता।

पुत्रकर्मवदिति चेत्।१/३२।

(शङ्का) पुत्रेष्टि यज्ञ आदि से जैसे पुत्र का उपकार होता है उसी प्रकार व्यधिकरण (अन्य में रहने वाले) अदृष्ट से विषय का उपराग क्यों न मानें? अर्थात् अदृष्ट कर्त्ता

से अदृष्ट भोक्ता क्यों नहीं उत्पन्न हो सकता?

नास्ति हि तत्र स्थिर एकात्मा यो गर्भाधानादिना(कर्मणा)संस्क्रियेत।१/३३।

(उत्तर) ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि (शङ्काकारी मे मत से) गर्भाधान से जन्म तक कोई एक ही स्थिर आत्मा नहीं हो सकता, अतः पुत्र कर्मवाला दृष्टान्त नहीं घट सकता।(क्षणिकवादी के मत से जन्म से उत्तर काल तक किसी की सत्ता नहीं रहती)।

स्थिरकार्या सिद्धेः क्षणिकत्वम्।१/३४।

चूंकि कार्य की स्थिरता सिद्ध नहीं होती, इसलिये बन्ध क्षणिक है(क्षणिकवाद) अनुमान-बन्ध आदि दीपशिखा की तरह सत्व होने से क्षणिक हैं।

न प्रत्यभिज्ञाबाधात्।१/३५।

पहले जिसे देखा था वही आज देखता हूं-यह प्रत्यभिज्ञा है। इससे पदार्थ का क्षणिकत्व खण्डित होता है। अतः बन्ध आदि स्थिर सिद्ध होते हैं।

श्रुतिन्यायविरोधाच्च।१/३६।

क्षणिकवाद श्रुति और तर्क के विरुद्ध है।

दृष्टान्तासिद्धेश्च।१/३७।

दीपशिखा के दृष्टान्त से यह सिद्ध नहीं होता।

युगपज्जायमानयोर्न कार्यकारण भावः।१/३८।

क्षणिकतावाद मानने पर मिट्टी के घट का सर्वलोक-सिद्ध तथा कार्य कारण भाव भी नहीं सिद्ध होगा, क्योंकि तब कार्य-कारण दोनों ही युगपत् जायमान(एक साथ उत्पन्न) हो जायगें। कार्य-कारण भाव में पहले कारण तब कार्य होता है।

पूर्वापाये उत्तरायोगात्।१/३९।

क्षणिकवाद मानने पर कारण का नाश होने पर ही कार्य उत्पन्न हो सकता है, पर कार्य सदा उपादान (सामग्री) कारण से मिला रहता है।

तद्भावे तदयोगादुभयव्यभिचारादपि न।१/४०।

क्षणिकवाद में उपादान कारण तथा कार्य दोनों का अवधारण (एक साथ होना) नहीं हो सकता क्योंकि जब कारण की स्थिति है तब उसके बाद उत्पन्न कारण का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।

पूर्वभावमात्रे न नियमः।१/४१।

कोई पदार्थ कार्य के पूर्व में स्थित है-इसी से वह उपादान कारण नहीं हो जाता,क्योंकि

निमित्त कारण भी कार्य से पहले रहता ही है।(२०-४१ सूत्र तक क्षणिकवाद का खण्डन है)।

न विज्ञानमात्रं बाह्यप्रतीतिः (तेः)।१/४२।

बौद्धसंगत विज्ञानमात्र तत्त्व नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार विज्ञान की प्रतीति होती है, उसी प्रकार बाह्य पदार्थों की भी प्रतीति होती है।(चित्त, मन, विज्ञान का एक ही अर्थ है)।

तदभावे तदभावाच्छून्यं तर्हि।१/४३।

बाह्य प्रतीति न मानने पर विज्ञान भी अवस्तु ही प्रमाणित होगा, क्योंकि बाह्य वस्तु के अभाव से विज्ञान का अभाव होता है।

शून्यं तत्त्वं , भावो विनश्यति, वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य।१/४४।

(शङ्का) शून्य को तत्त्व तथा भावपदार्थ को नश्वर मान सकते हैं क्योंकि विनाश (भाव पदार्थ का अभाव होना) ही वस्तु का धर्म है।

अपवादमात्रमबुद्धात्।१/४५।

(उत्तर) भाव पदार्थ का पूर्णतः अभाव होता है-ऐसा मानना मूर्खता है(भाव किसी न किसी रूप में अवश्य रहेगा)।

उभयपक्षसमानक्षेमत्वादयमपि।१/४६।

विज्ञानवाद और क्षणिकवाद जिस रूप में निरस्त होते हैं, शून्यवाद भी उसी रूप से निरस्त होता है (प्रत्यभिज्ञा और बाह्य प्रतीति से)।

अपुरुषार्थत्वमुभयथा।१/४७।

स्वतः हो या दूसरे से, शून्यता की पुरुषार्थता संभव नहीं है।

न गतिविशेषात्।१/४८।

गति विशेष (शरीर में प्रवेश आदि से) आत्मा का बन्धन नहीं माना जा सकता।

निष्क्रियस्य तदसम्भवात्।१/४९।

क्यों‌ कि निष्क्रिय आत्मा की गति नहीं हो सकती।

मूर्तत्वाद् घटादिवत् समानधर्मापत्तावपसिद्धान्तः।१/५०।

शास्त्र में आत्मा के गमनागमन एवं उसके अङ्गुष्ठमात्ररूप की बात आयी है। ससका यह अर्थ नही है कि आत्मा (पुरुष) घट आदि के समान मूर्त्त (परिच्छिन्न) है, क्योंकि ऐसा मानने पर वह सावयव और विनाशी सिद्ध होगा।

गतिश्रुतिरप्युपाधियोगादाकाशवत्।१/५१।

शास्त्र में आत्मा की गति (लोकों में गमनागमन) की जो बात सुनी जाती है, वह गति उपाधि योग से मानी जाती है। जिस प्रकार आकाश सर्वव्यापी है, उसकी गति नहीं है। पर घट आदि उपाधियों की गति दीखती है।

न कर्मणाऽप्यतद्धर्मत्वात्।१/५२।

बन्ध का कारण कर्म (अर्थात् अदृष्ट=धर्माधर्म) नहीं हो सकता, क्योंकि आत्मा का कोई धर्म नहीं है।

अतिप्रसक्तिरन्यधर्मत्वे।१/५३।(१/५४)

एक के धर्म से अन्य का बन्धन मानने पर अतिप्रसक्ति होगी, अर्थात् मुक्त का पुनः बन्धन प्रसक्त (कायम) होगा।

निर्गुणादिश्रुतविरोधश्चेति।१/५४।(१/५३)

बन्ध स्वाभाविक है या मुक्त स्वभाव के आत्मा के कर्म आदि के कारण होता है-यह मानना ठीक नहीं है; क्योंकि इसका आत्मा के निर्गुणता, केवलता, असंगत्व आदि के श्रुति वचनों से विरोध होता है।

तद्योगोऽप्यविवेकान्न समानत्वम्।१/५५।

प्रकृति के साथ आत्मा का यह योग अविवेकमूलक है। मुक्त पुरुष में अविवेक नहीं होता, अतः पुनः बन्ध नहीं होता। अतः पूर्वोक्त दोष इसमें नहीं होते।

नियतकारणात् तदुच्छितिर्ध्वान्तवत्।१/५६।

संयोगकारक इस अविवेक का उच्छेद एक निश्चित उपाय (अर्थात् विवेक) से ही किया जा सकता है। जिस प्रकार अन्धकार केवल आलोक द्वारा ही नष्ट हो सकता है, उसी प्रकार विवेक से ही अविवेक का उच्छेद होता है।

प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्य तद्धाने हानम्।१/५७।

यह अविवेक स्थूल-सूक्ष्म रूप से बहुविध है एवं एक सूक्ष्म अविवेक अन्य स्थूल अविवेक का कारण होता है। चिद्रूप पुरुष और अचित् प्रधान (=प्रकृति) को एकात्म मानना मूल अविवेक है, जिससे अन्य स्थूल अविवेक(मैं रूपवान्, मैं धनी .. इत्यादि) उत्पन्न होते हैं। मूल अविवेक यदि नष्ट होने पर उससे उत्पन्न सभी स्थूल अविवेक नष्ट होते हैं।। चित्-अचित् का पार्थक्य ज्ञान अन्तिम विवेक है (विवेक का अर्थ पार्थक्य भी है-यथा नीर-क्षीर विवेक)

वाङ्मात्रं न तु (तु न) तत्त्वं चित्तस्थितेः।१/५८।

बन्ध, अविवेक, विवेक-ये सभी चित्त में ही स्थित हैं। निर्गुण चिद्रूप पुरुष मेंबन्धादि

का औपचारिक प्रयोग किया जाता है। पुरुष का बन्ध तात्त्विक सत्य नहीं है।

युक्तितोऽपि न बाध्यते दिङ्मूढ़वदपरोक्षादृते।१/५९।

अपरोक्ष ज्ञान (निदिध्यासनपूर्वक तत्त्वों का साक्षात् ज्ञान) के बिना बन्ध आदि श्रवण से या युक्ति से बाधित नहीं होते; जिस प्रकार दिङ्मूढ़ व्यक्ति दिशाओं के साक्षात् ज्ञान के बिना भ्रम से मुक्त नहीं हो सकता। उसी प्रकार विवेक साक्षात्कार के बिना अविवेक का पूर्ण उच्छेद नहीं होता।

अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः।१/६०।

जिस प्रकार धूम आदि से अग्नि का अनुमान होता है उसी प्रकार, प्रकृति आदि अतीन्द्रिय पदार्थों का निश्चय अनुमान से होता है।

सत्त्वरजसस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्च तन्मात्रण्युभयमिन्द्रियम्, तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि, पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः।१/६१।

सांख्यशास्र में २५ गण (पदार्थ व्यूह) माने गये हैं-प्रकृति,जो सत्त्व-रज-तम; नामक तीन गुण (बन्धनार्थ रज्जु) रूप द्रव्यों का साम्यवस्था रूप है; प्रकृतिजात महान् (महत्तत्त्व); महत्-जात अहङ्कार; अहङ्कार-जात पांच तन्मात्र-शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध; पांच ज्ञानेन्द्रियां,पांच कर्मेन्द्रियां, एवम् इन्द्रियाधीश मन; तन्मात्र-जात पांच स्थूल भूत-पृथिवी, अप्,तेज, वायु, आकाश तथा इन सभी से विलक्षण पुरुष।

स्थूलात् पञ्चतन्मात्र स्य।१/६२।

पृथ्वी आदि स्थूल भूतों को देखकर उनके कारणभूत (उपादान रूप) पांच तन्मात्रों का बोध (अनुमान से) होता है।

बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाहङ्कारस्य।१/६३।

(दस) बाह्येन्द्रिय, आभ्यन्तर इन्द्रिय रूप मन एवं पांच तन्मात्र रूप कार्य द्रव्यों को देखकर अहङ्कारद्रव्य का ज्ञान (अनुमान से) होता है।

तेनान्तःकरणस्य।१/६४।

अहङ्कार-रूप कार्य द्रव्य को देखकर उसके उपादान भूत मुख्य अन्तःकरण (महत्तत्त्व=बुद्धितत्त्व) का अनुमान होता है।

ततः प्रकृतेः।१/६५।

महत्तत्त्व रूप कार्य से उसका प्रकृति रूप उपादान कारण अनुमित होता है।

संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य।१/६६।

संहतिकारी वस्तु परार्थ होती है-इस नियम से पुरुष की सत्ता का अनुमान होता है ।प्रकृति और उसके कार्य संहत हैं, अत: वे किसी पर(पुरुष तत्त्व) के लिये ही हैं।

मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ।१/६७।

२३ तत्त्वों से (भूत से महत् पर्यन्त) का जो मूल उपादान है, उसका मोई मूल नहीं है। अत: प्रकृति (प्रधान=अव्यक्त) निष्कारण कहलाता है।(प्रकृति का भी मूल है-ऐसा मानने से अव्यवस्था होगी)।

पारम्पर्येऽप्येकत्र परिनिष्ठेति संज्ञामात्रम् ।१/६८।

इनका उपादान कारण कोई है, उसका कोई अन्य कारण है-इस प्रकार की कारण-परम्परा देखी जाती है, पर इस परम्परा की परिनिष्ठा (समाप्ति) कहीं अवश्य होती है। यह समाप्ति जड़ त्रिगुण में ही हो सकती है, अपरिणामी पुरुष में नहीं। जहां इस कारण परम्परा की समाप्ति होती ह, उसका नाम प्रकृति है, जो नित्य है।

समान: प्रकृतेर्द्वयो: ।१/६९।

मूल कारण के विचार में अविद्या और प्रकृति का पक्ष समान है; पर सूक्ष्म विचार से प्रकृति का जगत् कारणत्व तथा अविद्या का निमित्त कारणत्व ही सिद्ध होते हैं।

अधिकारि त्रैविध्यान्न नियम: ।१/७०।

अनुमान के अधिकारी तीन प्रकार के होते हैं-मन्द, मध्यम, उत्तम। इस भेद के अनुसार अनुमान- प्रयोग करने में भेद होता है।

महदाख्यमाद्यं कार्य तन्मन: ।१/७१।

प्रकृति का प्रथम विकारभूत जो महत्तत्त्व है, वह (सांख्यीय सम्प्रदाय में) मन: पद से भी अभिहित होता है। मनन (अध्यवसाय=निश्चय) रूप वृत्ति के कारण ही मन: शब्द प्रयुक्त होता है।

चरमोऽहङ्कार: ।१/७२।

महत् के बाद जो तत्त्व उत्पन्न होता है वह अभिमान वृत्ति वाला अहङ्कार है।

तत्कार्यत्वमुत्तरेषाम् ।१/७३।

तन्मात्र आदि उत्तर कार्य अहंकार के माने जाते हैं।

आद्यहेतुता तद्द्वारा पारम्पर्येऽप्यणुवत् ।१/७४।

प्रकृति सभी विकारभूत पदार्थों का अन्तिम उपादान है। भूत, तन्मात्र, मन, इन्द्रिय, अहंकार, महत् आदि विकारों में भी अवान्तर कार्य-कारण-परम्परा है। ऐसी दृष्टि अणुवादी में भी है। उनके मत में अणु आदिम कारण है। घट का साक्षात् कारण

कपाल है, अणु नहीं (अणु से द्व्यणुक, उससे त्रसरेणु, इस क्रम से क्रमश: कपाल बनता है।

पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतर योग: ।१/७५।

आदिम उपादान कारण प्रकृति एवं सर्व निमित्त द्रष्टा पुरुष-ये दो नित्य एवं अनादि हैं। पुरुष निष्क्रिय है, अत: कार्य रूप परिणाम के प्रति उसका साक्षात् कर्तृत्त्व नहीं है, सुतरां विकारों के साथ साक्षात् सम्बन्ध प्रकृति का ही है। स्रष्टृत्व वस्तुत: प्रकृति का है, पर उसका उपचार पुरुष में होता है।

परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम् ।१/७६।

चूंकि प्रकृति सभी का उपादान है अत: वह परिच्छिन्न नहीं है, अर्थात् वह देश और काल से अवच्छिन्न नहीं होती (अव्यक्त प्रकृति का कोई आधार नहीं है। देश कालातीत मूल प्रकृति निरवयव एवं अनाश्रित है)।

तदुत्पत्तिश्रुतेश्च ।१/७७।

परिच्छिन्न व्यक्त पदार्थों की उत्पत्ति होती है, ऐसी श्रुति है। (अपरच्छिन्न प्रकृति का कोई उपादान कारण नहीं है; अत: -कारण में लय होना-रूप नाश भी प्रकृति का नहीं होता है, वह आदि हीन तथा अन्तहीन है)।

नाऽवस्तुनो वस्तुसिद्धि: ।१/७८।

अभाव ही वस्तु का कारण है,ऐसा मानकर भावरूप प्रकृति केकारणत्व काखण्डन नहीं किा जा सकता, क्योंकि अभाव रूप अवस्तु से वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती।

अबाधाददुष्टकारणजन्यत्वाच्च नावस्तुत्वम् ।१/७९।

स्वप्न की तरह जगत् को अवस्तु नहीं कह सकते, क्योंकि जगत् का बाध नहीं होता। जगत् का ज्ञान इन्द्रिय द्वारा भी नहीं है, अत: जगत् अवस्तु नहीं हो सकता।

भावे तद्योगेन तत्सिद्धिरभावे तदभावात् कुतस्तत्सिद्धि: ।१/८०।

कारण यदि भाव पदार्थ हो तो उसके योग से कार्य भावभूत पदार्थ ही उत्पन्न होगा। कारण यदि अभाव रूप होग तो वह किस रूप से कार्य उत्पन्न करेगा ?

न कर्मण उपादानत्वायोगात् ।१/८१।

कर्म ही जगत् का कारण है-प्रकृति रूप उपादान की आवश्यकता नहीं है-ऐसा नहीं कहा जा सकता। कर्म किसी का उपादान नहीं हो सकता। कर्म निमित्त कारण मात्र है। इस प्रकार मिथ्याज्ञान रूपा अविद्या ही जगत् का कारण है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

नानुश्रविकादपि तत्सिद्धिः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ।१/८२।

आनुश्रविक (वेदोक्त) उपायों से भी परम पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि वेदोक्त यज्ञादि-कर्मों के बहुक्रियासाध्य होने के कारण उनसे पुनरावृत्ति (संसार में पुनः आगमन) की सम्भावना रहती ही है। विनाशी द्रव्य-हेतुक यज्ञादि कर्मों से किसी अविनाशी फल की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

तत्र प्राप्तविवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः ।१/८३।

कर्म-विशेष के फल के रूप में अनावृत्तिरूप मोक्ष में अधिगम का उल्लेख यदि शास्त्र में हो तो यह समझना चाहिये कि साधक ने कर्मलब्ध ब्रह्मलोकाअदि में विवेक ज्ञान में अध्यास किया था, जिससे उसको अपुनरावृत्ति रूप मोक्ष मिला। ब्रह्मलोकादि में ज्ञानाभ्यास कारी उच्च साधकों का उल्लेख पुराणादि में मिलता है।

दुःखाद् दुःखं जलाभिषेकवन्न जाड्य विमोक्षः ।१/८४।

यज्ञादि कर्मों में लोभ, हिंसा आदि दोष हैं, अतः उनका आश्रयकारी मोक्षार्थी एक दुःख से अन्य दुःख में गिरता है। शीतक्लिष्ट व्यक्ति का जलाभिषेक करने पर जैसी अवस्था होती है,संसार दुःख से छूटने के लिये द्रव्ययज्ञादिरूप कर्म का अनुष्ठान करने वाले की वही अवस्था होती है।

काम्येऽकाम्येऽपि साध्यत्वाविशेषात् ।१/८५।

काम सकाम हो या निष्काम, उससे दुःख ही मिलता है, क्योंकि सकाम की तरह निष्काम कर्म भी (जड़ वस्तु द्वारा ही) साध्य है। निष्काम कर्म प्रायः सत्त्वशुद्धि कारक है, पर सत्त्वशुद्धि-कारक ज्ञान भी त्रिगुणात्मक होने से दुःखात्मक ही है।

द्वयोरेकतरस्य वाऽप्यसन्निकृष्टार्थ परिच्छित्तिः प्रमा, तत्साधकतमं यत् तत् त्रिविधं प्रमाणम् ।१/८७।

अप्राप्त वस्तु का पूरी तरह धारण प्रमा है।यह अवधारण बुद्धि-पुरुष रूप दोनों तत्त्वों का धर्म माना जा सकता है, केवल पुरुष या केवल बुद्धि का भी माना जा सकता है। वस्तु का अवधारण रूप ज्ञान बुद्धि का एक परिणाम है। यह पुरुष रूप निर्विकार हेतु के सन्निधान (संसर्ग) से ही व्यक्त होता है। यह बुद्धिपरिणामरूप प्रमा पुरुष में उपचरितमात्र होती है, अतः प्रमा को विभिन्न दृष्टियों से बुद्धि का धर्म, पुरुष का धर्म, या बुद्धि-पुरुष-धर्म कहा जा सकता है।इस प्रमा का जो साधकतम(फल के साथ युक्त) करण है, वह प्रमाण कहलाता है। यह प्रमाण प्रत्वक्ष, अनुमान, और शब्द रूप से त्रिविध है।

तत्सिद्धौ सर्व सिद्धेर्नाधिक्य सिद्धिः।१/८८।

तीन प्रमाण से ही सब प्रकार के विषयों की सिद्धि हो सकती है, अतः उपमान आदि को अलग प्रमाण मानने की आवश्यकता नहीं है।

यत् सम्बद्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम्।१/८९।

जो विज्ञान (बुद्धिवृत्ति) वस्तु से सम्बद्ध होकर उसके आकार का हो जाता है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है। यहां वृत्ति ही प्रत्यक्ष प्रमाण है, जो स्व-अर्थ-सन्निकर्ष-जनित आकार का आश्रय है। वृत्ति प्रदीपशिखा तुल्य है, जो अर्थाकार की उल्लेखिनी होती है।

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः।१/९०।

पिछले सूत्र में इन्द्रिय के प्रत्यक्ष का लक्षण भी कहा है। योगी में यह लक्षण नहीं दीखना कोई दोष नहीं है। योगी का अतीत-अनागत ज्ञानस्थूल रूप में वस्तु के विद्यमान न रहने पर भी होता है।

लीन वस्तु लब्धातिशय सम्बन्धाद्वा न दोषः।१/९१।

योगी का चित्त योगजात ऐसे अतिशय से युक्त है कि वह कारण में लीन वस्तु के साथ भी अपना सम्बन्ध कर सकता है जिससे वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

ईश्वरासिद्धेः।१/९२।

ईश्वर नित्य ज्ञान युक्त है, आः उसके प्रत्यक्ष होने के लिये सन्निकर्ष की अपेक्षा नहीं है। शंकाकारी द्वारा स्वीकृत ईश्वर के न होने से प्रत्यक्ष लक्षण दोषहीन ही है।

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावा न्न तत्सिद्धिः।१/९३।

शंकाकारी जिस प्रकार के पदार्थ को ईश्वर समझते हैं वह न मुक्त हो सकता है और न बद्ध। बद्ध और मुक्त के अलावा कोई अन्य कोटि नहीं है।

उभयथाऽप्यसत्करत्वम्।१/९४।

ईश्वरको मुक्त मानने से उसका जगत्-स्रष्टुत्व उत्पन्न नहीं होता क्योंकि मुक्त पुरुष में इच्छा-प्रयत्न आदि नहीं हो सकते। यदि ईश्वर को बद्ध मानें तो उसके लिये सृष्टि करना सम्भव नहीं है।

मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासा सिद्धस्य वा।१/९५।

ईश्वर के विषय में जो श्रुति वचन हैं उनमेंकुछ मुक्तात्मा की प्रशंसा करते हैं, कुछ सिद्ध की उपासना के लिये हैं।

तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत्।१/९६।

पुरुष के सन्निधान से ही अधिष्ठातृत्व (सृष्टिकारित्व) सिद्ध होता है, जिस प्रकार अयस्कान्त मणि सन्निधान-मात्र से ही शल्य को अपनी ओर खींचता है।

विशेष कार्येष्वपि जीवानाम्।१/९७।

विशेष कार्यों में अर्थात् व्यष्टि सृष्टि में भी जीवों (अन्त:करण प्रतिबिम्बित चेतनों) का सन्निधान रूपअधिष्ठातृत्व रहता है।

सिद्धरूपबोद्धृत्वाद्वाक्यार्थोपदेश:।१/९८।

हिरण्यगर्भ आदि आचार्य यथार्थ अर्थ जानते हैं, अत: उनका उपदेश प्रमाण है।

अन्त:करणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम्।१/९९।

लौह जिस प्रकार अग्निसंयोग द्वारा तप्त होकर जलाता है, उसी प्रकार चिदाभासयुक्त जड़ अन्त:करण देहादि का अधिष्ठाता होकर उनको चलाता है।

प्रतिबन्धदृश: प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम्।१/१००।

प्रतिबन्ध के ज्ञाता को व्याप्त वस्तु के दर्शन के बाद व्यापक का जो निश्चय होता है, वह अनुमान प्रमाण है।

आप्तोपदेश: शब्द:।१/१०१।

आप्त(ज्ञानी) का उपदेश रूप जो शब्द है, उससे प्राप्त ज्ञान शब्द प्रमाण हैं।

उभयसिद्धि: प्रमाणात् तदुपदेश:।१/१०२।

आत्मा और अनात्मा (परस्पर भेद जानना) की सिद्धि प्रमाण से होती है, इस लिये प्रमाण का विचार किया गया है।

सामान्यतोदृष्टादुभयसिद्धि:।१/१०३।

सामान्यतादृष्ट नामक अनुमान प्रमाण से प्रकृति-पुरुष रूप दोनों अतीन्द्रिय तत्त्वों की सिद्धि होती है। सामान्यत: दीखने के कारण नहीं दीखने पर भी किसी वस्तु को सर्व व्याप्त माना जाय, यह सामान्यतो दृष्ट अनुमान है।

चिदवसानो भोग:।१/१०४।

भोग रूप सिद्धि की समाप्ति चित्स्वरूपपुरुष में होता है।(भोगरूप विकार बुद्धि में ही रह पाता है, उससे पुरुष विकृत नहीं होता। पुरुष भोग का निर्विकार साक्षी रूप में रहता है। भोग परमार्थत: बुद्धि का है)।

अकर्तुरपि फलोपभोगोऽन्नाद्यवत्।१/१०५।

यद्यपि पुरुष बुद्धिस्थ भोगादि का कर्त्ता नहीं है,तथापि बुद्धि से अलग पुरुष को वृत्ति फल का भोक्ता माना जाता है। एक अन्नउत्पन्नकरता है, अन्य उसका भोग करता

है-यह लौकिक उपमा इसी प्रकार की है।

अविवेकाद्वा तत्सिद्धेः कर्तुः फलावगमः।१/१०६।

अथवा अविवेक के कारण पुरुष का भोक्तृत्व माना जा सकता है। पुरुषगत भोग ही कर्मफल है। बुद्धि के कर्म द्वारा पुरुष में फल उत्पन्न होता है।

नोभयं च तत्त्वाख्याने।१/१०७।

तत्त्वों का साक्षात्कार होने पर सुख-दु:ख रूप भोग का उद्भव नहीं होता।

विषयोऽविषयोऽप्यतिदूरादेर्हानोपादानाभ्यामिन्द्रियस्य।१/१०८।

अतिदूरता, अति निकटता आदि के कारण इन्द्रियों से विषयों का ज्ञान नहीं होता; इसी प्रकार इन्द्रियों का अपघात (अमर्थता) या अन्यमनस्कता आदि के कारण भी विषय ज्ञान नहीं होता।

सौक्ष्म्यात् तदनु पलब्धिः।१/१०९।

अत्यन्त सूक्ष्म होने (अवयव नहीं होने) के कारण इनका अनुभव नहीं होता।

कार्यदर्शनात् तदुपलब्धेः।१/११०।

प्रकृति आदि सूक्ष्म पदार्थ नहीं रहने पर भी उनके द्वारा कार्य होने से उनका अस्तित्व सिद्ध होता है।

वादिविप्रतिपत्तेस्तदसिद्धिरिति चेत्।१/१११।

(शंका) जिस सत्कार्यवाद से कारणभूत नित्य प्रकृति का अनुमान किया जाता है, यदि वह वाद ही असिद्ध हो तो।

तथाप्येकतरदृष्ट्या एकतरसिद्धे र्ना पलापः।१/११२।

(समाधान) मतभेद सिद्ध होने पर भी यह निश्चित है कि कार्य होने पर उसका कारण अवश्य होगा।

त्रिविधविरोधापत्तेः।१/११३।

किसी कार्य का त्रिविध व्यवहार है-अतीत, वर्तमान ,भविष्य। यह भेद उसके अध्व(मार्ग) भेद से होते हैं, अत: कार्य कारण में सूक्ष्मरूप से है।

नासदुत्पादो नृशृङ्गवत्।१/११४।

जो पदार्थ नरशृङ्ग की तरह असत्(विद्यमान नहीं) है, उसकी उत्पत्ति नहीं होती।

उपादान नियमात्।१/११५।

उपादान नियम के कारण मानना पड़ता है कि अपने निश्चित उपादान में कार्य (अव्यक्त रूप में) रहता है। घट मिट्टी से ही होता है, पट तन्तु से ही उत्पन्नहोता है,

अन्यों से नहीं, अत: कार्य अपने उपादान में सूक्ष्म रूप से विद्यमान है।

सर्वत्र सर्वदा सर्वा सम्भवात्।१/११६।

पूर्वोक्त उपादान नियम न मानने पर सर्वत्र सब कुछ उत्पन्न होगा, किन्तु ऐसा नहीं दीखता, अत: उपादान नियम मानना पड़ता है जिससे सत्कार्यवाद सिद्ध होता है।

शक्तस्य शक्यकरणात्।११७।

शक्त(कार्य क्षमता वाला) कारण ही योग्यतानुरूप कार्य को उत्पन्न कर सकता है। यह शक्ति कार्य की अनागत अवस्था ही है। अत: अविद्यमान कार्य की उत्पत्ति नहीं होती।

कारणभावाच्च।१/११८।

उत्पत्ति से पहले कार्य कारण से भिन्न है-ऐसी श्रुति है, अत: असत् से उत्पत्ति नहीं मान सकते।

न भावे भावयोगश्चेत्।१/११९।

(शंका) कार्य यदि उपादान में विद्यमान है-तो उसे नित्य मानना पड़ेगा। तब भावरूप कार्य में उत्पत्ति का सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं हो पायेगा।

नाभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ।१/१२०।

यह शंका बेकार है क्योंकि कार्य उत्पन्न होना या नहीं होना अभिव्यक्ति-निबन्धन है। अर्थात् कार्य स्थूल रूप में प्रकट होने को उत्पन्न होना कहते हैं। उसी प्रकार अव्यक्त रहने पर उसे उत्पन्न नहीं मानते।

नाश: कारणलय:।१/१२१।

(सत्कार्यवाद की दृष्टि में) नाश का अर्थ है-कार्य का उपादान कारण में लय।

पारम्पर्यतोन्वेषणा बीजाङ्कुरवत्।१/१२२।

(यदि सत्कार्यवाद के अनुसार) अभिव्यक्ति को कार्य मानें तो अनवस्था-दोष होता है। तब बीजाङ्कुरपरम्परा-न्याय से उसका समाधान होता है।

उत्पत्तिवद्वाऽदोष:।१/१२३।

सत्कार्यवाद में कारण में सूक्ष्म रूप से स्थित वस्तु का स्थूल मूर्त्तिरूप कार्य मानने पर अभिव्यक्ति पर आक्षेप होता है। यही दोष आरम्भवाद में भी है जो नये कार्य की उत्पत्ति मानता है। जिस प्रकार से वैशेषिक आदि असत्कार्यवादी इसका समाधान करते हैं, उसी प्रकार अभिव्यक्ति पक्ष का भी समाधान हो सकता है।

हेतुमदनित्यं (अव्यापि) सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।१/१२४।

लिङ्ग (जिसका लय हो-अर्थात् व्यक्त पदार्थ) हेतुमान् (कारण सहित), अनित्य (एक रूप नें नहीं रहने वाला), अव्यापी, सक्रिय, अनेक (प्रत्येक सृष्टि में भिन्न) एवं आश्रित है।

आञ्जस्यादभेदतो वा गुणसामान्यादेस्तत्सिद्धिः प्रधानव्यपदेशाद् वा।१/१२५।

कारण से अलग लिङ्ग रूप कार्य कहीं स्पष्ट दीखता है,कहीं अलग गुण और सामान्य लिङ्ग से होता है। कार्य-कारण का भेद-अभेद सम्बन्ध बताने के लिये सांख्याचार्यो ने प्रकृति को प्रधान कहा है, अर्थात् इसमें कार्य अनुभूत होता है (प्रधीयते अस्मिन् कार्यम्)।कार्य कारण अलग होने पर दोनों में आधार-आधेय सम्बन्ध नहीं होगा।

त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः।१/१२६।

त्यक्त महत्-अहङ्कार आदि पदार्थ और त्यक्त प्रकृति आदि में कुछ समानता है- दोनों त्रिगुण, अविवेकियों की दृष्टि में विषय, सामान्य, प्रसवधर्मी हैं।

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम्।१/१२७।

तीन गुण एक दूसरे पर आश्रित हैं। तब भी उनके धर्म अलग हैं-स त्त्व प्रीति धर्मक, रज अप्रीति कारक, तथा तम विषाद बढ़ाने वाला है।

लघ्वादिधर्मैः साधर्म्य वैधर्म्यं च गुणानाम्।१/१२८।

(लघ्वादिधर्मैरन्योन्यं साधर्म्य वैधर्म्यमितरेषाम्) सभी व्यक्तियों में सत्त्व लघुता, रज गति करता है,तम भारीपन लाता है।एक का साधर्म्य अन्य दो का वैधर्म्य है।

उभया न्यत्वात् कार्यत्वं महदादेर्घटादिवत्।१/१२९।

प्रकृतिरूप मूल उपादान एवं पुरुष रूप अपरिणामी चेतन से जो भिन्न है वह कार्य है। महत् आदि योग है, अतः पुरुष नहीं हैं। ये विनाशी हैं, अतः प्रकृति नहीं हैं।

परिणामात्।१/१३०।

महत्, अहङ्कार, तन्मात्र आदि कार्य हैं, क्योंकि वे परिच्छिन्न परिणाम वाले हैं। अमेय प्रकृति का प्रत्येक विकार असीम ही होगा।

समन्वयात्।१/१३१।

समन्वय से भी जाना जाता है कि महत्, अहङ्कार आदि कार्य हैं। उपवास द्वारा क्षीण बुद्धि आदि का समन्वय अन्न आदि से होता है। अतः वे कार्य हैं। सदा बिना अवयव का होने पर अवयवों के प्रवेश से समन्वय नहीं होता।

शक्तितश्चेति।१/१३२।

शक्ति=कार्य। पुरुष का करण चक्षु आदि भी कार्य हैं। महत् तत्त्व यदि कार्य हो तो उससे उत्पन्न अहङ्कार आदि भी कार्य ही होंगे।

तद्धाने प्रकृतिः पुरुषो वा।१/१३३।

यदि कोई पदार्थ कार्य न हो तो वह या तो प्रकृति होगा (यदि जड़ एवं परिणामी हो), या पुरुष होगा (यदि अपरिणामी भोक्ता हो)।

तयोरन्यत्वे तुच्छत्वम्।१/१३४।

यदि कोई पदार्थ कार्य नहीं है, साथ ही वह पुरुष या प्रकृति भी नहीं है, तो वह तुच्छ(शशशृङ्ग की तरह काल्पनिक) होगा।

कार्यात् कारणानुमानं तत्साहित्यात्।१/१३५।

महत् आदि कार्य रूप लिङ्ग से उनके उपादान कारण का अनुमान किया जाता है, क्योंकि कार्य सदा कारण सहित है।

अव्यक्तं त्रिगुणाल्लिङ्गात्।१/१३६।

तीन गुणों वाली प्रकृति महत्तत्त्व के कारण से भी अधिक सूक्ष्म है। महत् के गुणों का साक्षात् हो सकता है, प्रकृति के गुणों का साक्षात्कार नहीं होता।

तत्कार्यतस्तत्सिद्धेर्नापलापः।१/१३७।

अव्यक्त प्रधान का अस्तित्व अपने महत् आदि कार्यों से ही सिद्ध होता है। अतः अनुभव में नहीं आने पर भी उसका अपलाप नहीं किया जा सकता।

सामान्येन विवादाभावाद्धर्मवन्न (तत्) साधनम्।१/१३८।

पुरुष केज्ञाता होने में विवाद नहीं है, जिस प्रकार धर्म-सामान्य में कोई विवाद नहीं है। चेतन रूप आत्मा का अस्तित्व सबको स्पष्ट है, उसके लिये तर्क जरूरी नहीं है।

शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान्।१/१३९।

पुरुष (भोक्ता आत्मा) शरीर आदि जड़ पदार्थों से अलग है।

संहतपरार्थत्वात्।१/१४०।

क्योंकि प्रकृति, मन, शरीर आदि जड़ पदार्थ संहत हैं, संहत पदार्थ परार्थ होते हैं। वह पर अवश्य असंहत होगा जो जड़त्व हीन चिद्रूप पुरुष (आत्मा) है।

त्रिगुणादिविपर्ययात्।१/१४१।

त्रिगुण आदि से विरुद्ध होने के कारण चिद्रूप पुरुष की सत्ता मानते हैं। शरीर के सुख आदि जो धर्म हैं, वह सुख आदि के भोक्ता के नहीं हो सकते। अतः भोक्ता पुरुष को सत्त्व आदि से अलग वस्तु मानना पड़ेगा।

अधिष्ठानाच्चेति ।१/१४२।

अधिष्ठान से भी चित्त आदि से अलग पुरुष सिद्ध होता है। प्रकृति अधिष्ठित है, उसका अधिष्ठान करने वाला पुरुष उससे अलग होगा।

भोक्तृभावात् ।१/१४३।

भोक्ता भाव शरीर आदि में नहीं होने के कारण शरीर से अलग पुरुष की सत्ता सिद्ध होती है।

कैवल्यार्थं प्रवृत्ते (श्च) ।१/१४४।

यदि शरीर आदि भोक्ता होते तो विनाशी शरीर के कैवल्य(दु:खों का पूर्ण नाश) के लिये किसी की प्रवृत्ति नहीं होती।

जड़प्रकाशयोगात् प्रकाश: ।१/१४५।

पुरुष प्रकाश-स्वरूप है। जड़ में ऐसा प्रकाश नहीं होता।

निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा ।१/१४६।

पुरुष निर्गुण है, वह प्रकाश या तेज ररूप नहीं है, क्योंकि उसमें धर्म-धर्मी भाव नहीं है। अत: प्रकाशरूप चित् उसका धर्म नहीं कहा जा सकता।

श्रुत्या सिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात् ।१/१४७।

पुरुष निर्गुण है-यह मत श्रुति द्वारा समर्थित है। पुरुष में गुण या धर्म श्रुति द्वारा बाधित है।

सुषुप्त्याद्यसाक्षित्वम् ।१/१४८।

जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति-इन तीन अवस्थाओं का साक्षी होने के के कारण पुरुष अपरिणामी है।

जन्मादिव्यवस्थात: पुरुषबहुत्वम् ।१/१४९।

अलग अलग जन्म और मरण से पुरुष का बहुत्व सिद्ध होता है।

उपाधिभेदेऽप्येकस्य नानायोग:, आकाशस्येव घटादिभि: ।१/१५०।

यदि आत्मा एक है तो अनेक उपाधियों के साथ उसका सदा योग मानना पड़ेगा। जिस प्रकार एक घट भंग होने पर अन्य घट के साथ आत्मा का योग रहता है। इस प्रकार एक आत्मा के लिये बन्धन मोक्ष नहीं होता।

उपाधिर्भिद्यते न तु तद्वान् ।१/१५१।

यदि आत्मा एक ही हो तो वह बद्ध उपाधि से सम्बद्ध रहने के कारण बद्ध कहलायेगा।

एवमेकत्वेन परिवर्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यास: ।१/१५२।

अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात्तत्सिद्धिरेकत्वात्।१/१५३।

सुखादि बुद्धि का धर्म होने पर भी उनके आरोप से आधार पुरुष को एक नहीं माना जा सकता क्योंकि इससे व्यवस्था नहीं बनती।

नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात्।१/१५४।

आत्मा का एकत्व या अद्वैत बताने वाली अनेक श्रुतियां हैं, पर ऐसे श्रुति वाक्य जातिपरक होते हैं। प्रत्येक आत्मा एक ही जैसा है, उसमें कोई भेद करने वाला धर्म नहीं है। उनकी एक जाति के बारे में ही अद्वैतवाद की श्रुतियां हैं।

विदितबन्धकारणस्य दृष्ट्या तद्रूपम्।१/१५५।

प्रत्येक पुरुष तुल्य होने पर भी बद्ध जीवों की दृष्टि में भिन्न लगता है।

नान्धादृष्ट्या चक्षु ष्मता मनु पल म्भः।१/१५६।

यदि प्रत्येक पुरुष एकरूप है तो वह दीखना चाहिये, पर उसके अलग अलग रूप दीखते हैं। अन्ध नहीं देख सकता ते आंखवालों के देखने को भूल नहीं मानना चाहिये।

वामदेवादिर्मुक्त ो नाद्वैतम्।१/१५७।

यदि आत्मा मुक्त होती तो वामदेव आदि मुक्त और अन्य कई बद्ध नहीं होते।

अनादावद्ययावदभावाद् भविष्यदप्येवम्।१/१५८।

यदि यह मानें कि आज तक कोई बद्ध आत्मा मुक्त नही हुआ, तो भविष्य में भी मुक्त नहीं हो पायेगा।

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः।१.१५९।

क्योंकि तब अनुमान होगा कि जैसे इस काल में किसी का बन्धन उच्छेद नहीं हुआ उसी प्रकार भविष्य में भी नहीं होगा।

व्यावृत्तोभयरूपः।१/१६०।

बद्ध और मोक्ष -इन दो अवस्थाओं में पुरुष का स्वरूप अलग नहीं होता।

साक्षात्सम्बन्धात् साक्षित्वम्।१/१६१।

पुरुष का कर्त्तापन बुद्धि के कारण है। बुद्धि का ज्ञाता होना पुरुष के कारण है।

नित्यमुक्तत्वम्।१/१६२।

पुरुष दुःख रूपी बन्ध से सदा मुक्त है।

औदासीन्यं चेति।१/१६३।

कार्य, सङ्कल्प, विकल्प, श्रद्धा आदि से पुरुष उदासीन (अलग) है।

उपरागात् कर्त्तृत्वं चित्सान्निध्याच्चित्सान्निध्यात् ।१/१६४।

पुरुष का जो कर्त्तृत्व है वह बुद्धि के उपराग के कारण है। बुद्धि का गुण पुरुष के कारण है।

द्वितीय अध्याय

विमुक्त (वि)मोक्षार्थं (+स्वार्थं) वा प्रधानस्य ।२/१।

प्रधान (प्रकृति) की प्रवृत्ति नित्यमुक्त पुरुष के विवेकाभ्यासपूर्वक मोक्ष के लिये एवं अपने लिये (दु:ख से मुक्ति के लिये) होती है। स्वभावत: दु:खातीत पुरुष की जो मुक्ति है , उसका अर्थ प्रतिबिम्ब रूप दु:ख से मुक्ति है।

विरक्तस्य तत्सिद्धेः ।२/२।

विविध दु:ख से तप्त होने पर वैराग्य होगा और उससे मोक्ष सिद्धि होगी।

न श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिरनादिवासना या बलवत्त्वत्वात् (पटुत्वात्)।२/३।

केवल श्रवण से वैराग्य नहीं होता, क्योंकि जीव अनादिकाल से वासनाबद्ध है।

बहुभृत्यवद्वा प्रत्येकम् ।२/४।

जिस प्रकार एक गृहस्थ के द्वारा भरण योग्य अनेक स्त्री-पुत्र आदि होते हैं, उसी प्रकार गुणों से मुक्त होने के लिये असंख्य पुरुष है। बहुत से पुरुष मुक्त होने पर भी कई पुरुष विद्यमान रहेंगे, सृष्टि परम्परा कभी बन्द नहीं होगी।

प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्याध्याससिद्धिः ।२/५।

सृष्टि तीन गुणों से होने के कारण प्रकृति का ही धर्म है, निर्गुण पुरुष वास्तविक कर्त्ता नहीं है।

कार्यस्तत्सिद्धिः (द्धेः)।२/६।

कर्त्तापन पुरुष में नहीं प्रकृति में है, क्योंकि त्रिगुण युक्त सत् पदार्थ ही प्रधान कारक है, वह चिद्रूप पुरुष का कार्य नहीं है।

चेतनोपदेशान्नियमः कण्टकमोक्षवत् ।२/७।

जिस प्रकार जो व्यक्ति उपाय जानता है उसको कांटा से कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार विवेकी साधक को प्रकृति से कष्ट नहीं होता।

अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धिर्नाञ्जस्येनायोदाहवत् ।२/८।

प्रकृति से संयोग होने पर भी सृष्टि क्रिया प्रकृति का ही धर्म होता है, पुरुष का नहीं। जिस प्रकार अग्नियुक्त लोहा जब जलता है तो अग्नि जलती है, लोहा नहीं।

रागविरागयोर्योगः सृष्टिः ।२/९।

राग से सृष्टि होती है और विराग से स्वरूपावस्थान रूप योग सिद्ध होता है।

महदादि क्रमेण पञ्च भूतानाम्।२/१०।

सृष्टि का क्रम है-प्रकृति से महान्, महान् से अहङ्कार, अहं से ११ इन्द्रियां एवं ५ तन्मात्र, तन्मात्र से भूत(सूत्र १/१६)।

आत्मार्थत्वात् सृष्टे र्नैषामात्मार्थ आरम्भः।२/११।

सृष्टि आत्मार्थ है। महत् आदि से जो विकारों की सृष्टि है, वह अपने लिये नहीं पुरुष मोक्ष के लिये है। चूंकि महत् आदि विनाशी हैं, उनका मोक्ष नहीं होता।

दिक्कालावाकाशादिभ्यः।२/१२।

जो खण्ड दिक् और काल हं, वे आकाश से उन उपाधियों के योग से उत्पन्न होते हैं।

अध्यवसायो बुद्धिः।२/१३।

महत्तत्त्व (बुद्धि) का लक्षण अध्यवसाय (निश्चय) है। सूत्र में धर्म और धर्मी को एक मानकर अध्यवसाय को ही बुद्धि कहा गया है।

तत्कार्यं धर्मा दिः।२/१४।

धर्म-ज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य-ये ४ महत्तत्त्व बुद्धि के (सात्त्विक) कार्य (रूप) हैं।

मह दु परागाद्वि परी तम्।२/१५।

उपराग से (तम के प्रभाव से) सत्त्वबहुल बुद्धि तत्त्व में अधर्म-अज्ञान-वैराग्य-अनैश्वर्य रूप ४ धर्म होते हैं।

अभिमानोऽहङ्कारः।२/१६।

अहङ्कार (अन्त:करण का एक अंश) अभिमान धर्मक है (अभिमान=अहं, ममता)।

एकादश पञ्चतन्मात्रं तत्कार्यम्।२/१७।

५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, १ मन (११ पदार्थ) तथा ५ तन्मात्र (शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध) अहङ्कार तत्त्व के कार्य हैं।

सात्त्विकमेका दशकं प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात्।२/१८।

११ वीं इन्द्रिय मन सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्न होती है। (अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रिय ,५ कर्मेन्द्रिय राजस अहङ्कार से होते हैं)।

कर्मेन्द्रिय बुद्धी न्द्रियै रान्तरमे का दशकम्।२/१९।

५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय तथा १ मन रूप आन्तर इन्द्रिय को मिलाकर इन्द्रिय ११ होती हैं।

आहङ्कारिकत्व श्रुतेर्न भौतिकानि।२/२०।

ये ११ इन्द्रियां भूत निर्मित नहीं हैं, बल्कि आहङ्कारिक हैं , क्योंकि श्रुति में ऐसा कहा गया है।

देवताल य श्रुति (ते) र्ना रम्भकस्य।२/२१।

श्रुति के अनुसार इन्द्रियों का लय अपने अधिष्ठातृ देवता में होता है। अत: इन्द्रियों का उपादान अहङ्कार (षष्ठ अविशेष रूप अस्मिता) नहीं है-ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसा वचन अपने कारण में लय के प्रतिपादन के लिये नहीं कहा गया है।

तदुत्पत्ति श्रुतेर्विनाश दर्शनाच्च।२/२२।

इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं (नित्य नहीं हैं) क्योंकि श्रुति में ऐसा कहा गया है। उनके विनाश के कारण भी वे अनित्य हैं।

अतीन्द्रियमिन्द्रियं भ्रान्तानामधिष्ठाने(नम्)।२/२३।

वस्तुत: इन्द्रिय अतीन्द्रिय (इन्द्रिय द्वारा साक्षात्करणीय नहीं) है। इन्द्रिय के अधिष्ठान (शरीर के यन्त्र विशेष जो गोलक कहलाते हैं) को अज्ञ ही इन्द्रिय समझते हैं।

शक्तिभेदेऽपि भेदसिद्धौ नैकत्वम्।२/२४।

ऐसा सन्देह नहीं हो सकता कि एक ही इन्द्रिय है जो शक्तिभेद से विलक्षण कार्य करती है, क्योंकि शक्तिभेद से शक्तिमान में भेद स्वत: सिद्ध हो जाता है। (शक्ति ही इन्द्रिय है, रूप-ग्रहण शक्ति ही चक्षु इन्द्रिय है)।

न कल्पना विरोधः प्रमाण दृष्ट स्य।२/२५।

एक अहङ्कार से अनेक इन्द्रियों की उत्पत्ति मानने में कोई विरोध नहीं है, क्योंकि यह प्रमाण सिद्ध है(अलग अलग कार्य से)।

उभयात्मकं मनः।२/२६।

मन ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय दोनों है।

गुण परिणाम भेदान्नानात्वमवस्थावत्।२/२७।

मन का नानात्व गुणों के परिणाम भेद से होता है। जिस प्रकार संग भेद से एक मनुष्य कामुक, विरक्त आदि होता है।

रूपादि रसमलान्त उभयोः।२/२८।

ज्ञानेन्द्रियों-चक्षु, त्वक्, श्रोत्र, जिह्वा, नासा- के विषय हैं-रूप-स्पर्श-शब्द-रस-गन्ध। कर्मेन्द्रियों के विषय हैं-वाक् का वक्तव्य, पाणि का आदातव्य, पाद का गन्तव्य, पायु का उत्सृष्टव्य, उपस्थ का आनन्दयितव्य। अन्तिम का कार्य

मल उत्सर्ग है।

द्रष्टृत्वादिरात्मनः, करणत्वमिन्द्रियाणाम् ।२/२९।

द्रष्टृत्व आदि व्यापार पुरुष के हैं। कारणत्व इन्द्रियों का है।

त्रयाणां स्वालक्षण्यम् ।२/३०।

बुद्धि, अहङ्कार, मन-की असाधारण वृत्तियां अलग-अलग हैं। बुद्धि का अध्यवसाय, अहङ्कार का अभिमान, मन का सङ्कल्प-विकल्प। ये वृत्तियां इनके लक्षण भी हैं।

सामान्य करण वृत्तिः प्रणाद्या वायवः पञ्च ।२/३१।

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान- ये ५ वायु (वायु के समान सञ्चरणशील) हैं, अन्तःकरण की साधारण वृत्ति (परिणाम भेद) हैं।

क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः ।२/३२।

इन्द्रियों की वृत्तियां क्रमशः भी होती हैं, एक साथ भी।

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टा (श्च) ।२/३३।

ये वृत्तियां ५ प्रकार की हैं, प्रत्येक वृत्ति दो प्रकार की हैं-क्लिष्ट और अक्लिष्ट। क्लिष्ट से क्लेष बढ़ता है, अक्लिष्ट=आत्मख्याति-प्रधान से क्लेष आदि क्षीण होते हैं)। ये ५ हैं-प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति(योगसूत्र १/२)।

तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थः ।२/३४।

वृत्तियों का निरोध होने पर आत्मा स्वच्छ अर्थात् स्वरूपावस्थित होता है, क्योंकि इस काल में उपराग(वृत्तिप्रतिबिम्ब) शान्त हो जाता है।

कुसुमवच्च मणिः ।२/३५।

आत्मा में जो अवास्तविक स्वस्थता आदि दीखती है, वह मणि के समान है। जिस प्रकार जपापुष्प के साथ रहने पर मणि रक्तवर्ण हो जाता है तथा उसके न रहने पर बिना रंग का होता है, उसी प्रकार चित्तवृत्ति व्यक्त होने पर आत्मा वृत्तिवाला दीखता है, चित्त लीन होने पर अपने रूप में दीखता है।

पुरु षार्थ कारणो द् भवो ऽप्यदृ ष्टोल्ला सात् ।२/३६।

जिस प्रकार प्रधान की प्रवृत्ति पुरुष के लिये है, उसी प्रकार कारणों की प्रवृत्ति भी पुरुषार्थ है। पुरुष के अदृष्ट के अनुसार यह करण-प्रवृत्ति प्रवर्तित होती है।

धेनुवद् वत्साय ।२/३७।

जिस प्रकार वत्स के लिये धेनु (गाय) का दुग्ध स्वयं निकलने लगता है, उसी प्रकार अचेतन प्रकृति के करणों की प्रवृत्ति भी पुरुष के लिये स्वतः होती है।

करणं त्रयोदशविध मवान्तर भेदात्।२/३८।

अवान्तर भेदों की गणना करने पर करण १३ होते हैं - (५ ज्ञानेन्द्रिय + ५ कर्मे न्द्रिय+ मन+ अहङ्कार+बुद्धि)।

इन्द्रियेषु साधकतमत्व गुणयोगात् कुठारवत्।२/३९।

बुद्धि का पुरुषार्थ-साधन रूप गुण अन्य इन्द्रियों में परम्परा से माना जाता है। जैसे वृक्ष तो प्रहार से कटता है , पर कुठार को भी करण कहा जाता है।

द्वयोः प्रधानं मनो लोकवत् भृत्यवर्गेषु।२/४०।

जिस प्रकार लोक व्यवहार में अनेक भृत्यों में एक प्रधान होता है , उसी प्रकार बाह्य (ज्ञान-कर्म) और भीतरी इन्द्रियों में मन प्रधान है।

अव्यभिचारात्।२/४१।

अव्यभिचार होने के कारण बुद्धि प्रधान है। बुद्धि का अध्यवसाय धर्म सभी कारणों में शामिल है। किसी भी करण का व्यापार बुद्धि को छोड़कर नहीं हो सकता।

तथा ऽ शेष संस्काराधारत्वात्।२/४२।

बुद्धि में ही सभी संस्कार पूर्णतः आधृत हैं, बाह्य करण या अहङ्कार-मन में नहीं, अतः बुद्धि सर्व प्रधान है।

स्मृत्या ऽ नु माना च्च।२/४३।

सर्ववृत्ति श्रेष्ठ चिन्तनरूप स्मृति (ध्यान की प्रथम अवस्था) बुद्धि में प्रतिष्ठित है। इससे भी बुद्धि का सर्व प्रधान होने का अनुमान होता है।

सम्भवेन्न स्वतः।२/४४।

स्मृति पुरुष का धर्म नहीं हो सकता क्योंकि आत्मा निर्गुण, निर्धर्मक है। अन्य अर्थ-रूप आदि के दर्शन आदि में बुद्धि स्वतः करण नहीं हो सकती।

आपेक्षिको गुणप्रधान स्वभावः क्रिया विशेषात्।२/४५।

करणों में जो गौण मुख्य भाव होता है, वह आपेक्षिक है, क्रिया विशेष पर निर्भर है।

तत्कर्मा र्जितत्वा त्तदर्थ मभिचेष्टा लोकवत्।२/४६।

करण जिस पुरुष के कर्म से उत्पन्न होता है, उसकी चेष्टा उसी पुरुष के लिये होती है। पुरुष कूटस्थ है, पर उसके स्वामी होने के कारण पुरुष का कर्म कहा गया है।

समानकर्म यो गे बुद्धेः प्राधान्यं लो कवल्लो कवत्।२/४७।

करणों की दृष्टि में सभी समान होने पर भी उनमें बुद्धि प्रधान है। जैसे सभी राजा के कर्मचारी होने पर भी उनमें मन्त्री प्रधान होता है।

अध्याय ३

अविशेषाद्विशेषारम्भः।३/१।

अविशेष (शान्त-घोर-मूढ़त्वादि रूप से शून्य) तन्मात्र से पञ्चभूत रूप विशेष की उत्पत्ति होती है।

तस्माच्छरीरस्य।३/२।

पूर्ववर्णित २३ तत्त्वों से स्थूल और सूक्ष्म शरीरों की उत्पत्ति होती है।

तद् बी जात् संसृतिः।३/३।

तत्त्वात्मक सूक्ष्म शरीर-बीज से पुरुष की संसृति(मृत्यु के बाद गति) होती है।

आ विवेकाच्च प्रवर्त्तनमविशेषाणाम्।३/४।

सभी प्रकार के प्राणियों(ब्रह्मा से कीट आदि पर्यन्त) का तब तक अवश्य ही संसरण होता रहेगा जब तक उनमें विवेक(द्रष्टा-दृश्य का पार्थक्य ज्ञान) उत्पन्न न हो।

उपभोगादितरस्व।३/५।

जो अविवेकी है, उसके लिये स्वीय कर्मों का फलभोग करना अवश्यम्भावी है।

सा प्रति परिमुक्तो द्वाभ्याम्।३/६।

संसृतिकाल में पुरुष शीतोष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से मुक्त ही रहता है।

माता पितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न तथा।३/७।

स्थूल शरीर प्रायः माता-पिता से उत्पन्न होते हैं(कभी -कभी अयोनिज स्थूल शरीर भी होते हैं)। सूक्ष्म शरीर माता-पिता से उत्पन्न नहीं होता, वह सर्गादि काल में उत्पन्न होता है।

पूर्वोत्पत्ते स्तत्कार्य त्वं भो गादेकस्य नेतरस्य।३/८।

सर्गादि में उत्पन्न लिङ्ग शरीर का ही सुख-दुःख होता है, क्योंकि इस शरीर में ही भोग होता है, स्थूल शरीर में नहीं।

सप्तदशैकं लिङ्गम्।३/९।

सूक्ष्मशरीर (लिङ्गशरीर) सर्गादि में एक ही होता है(समष्टिरूप से) जिसमें १७ पदार्थ होते हैं-११ इन्द्रियां, ५ तन्मात्र, १ बुद्धि।(इस लिङ्ग शरीर में भोग होता है, यही मुख्य शरीर है)।

व्यक्ति भेदः कर्म विशेषात्।३/१०।

सर्गादि में (हिरण्यगर्भ उपाधि रूप) लिङ्ग शरीर एक होने पर भी कर्म विशेष के अनुसार उसके अंशभेद होते हैं।

तदधिष्ठानाश्रये देहे (तद्वादात्) तद्वादः।३/११।

कार्यजनित भोग लिङ्ग शरीर में होता है, यही तत्त्वत: भोगायतन है। उस लिङ्ग का अधिष्ठान भूतपञ्चक का आश्रय षाट्कौशिक स्थूलदेह है। इस आश्रय-सम्बन्ध से ही स्थूल शरीर को भोगायतन कहा जाता है।यहां विज्ञान भिक्षु ३ देह मानते हैं- (१) लिङ्ग शरीर,(२) उसका अधिष्ठान पञ्चभूत का सूक्ष्म देह, (३) स्थूल देह।

न स्वातन्त्र्यात् तदृते छा या वच्चित्र वच्च।३/१२।

लिङ्ग शरीर और षाट्कौशिक स्थूल शरीर के बीच में जो लिङ्ग का अधिष्ठान शरीर माना गया है, उसके बिना लिङ्ग शरीर कार्य नहीं कर सकता है। यहां ३ देह कहे गये हैं- स्थूलदेह, लिङ्गदेह का आधार भूत देह तथा लिङ्गदेह।

मूर्तत्वेऽपि न सङ्घातयोगात् तरणिवत्।३/१३।

लिङ्ग शरीर का आश्रय सूक्ष्मशरीर है, अमूर्त आकाश नहीं, क्योंकि जैसे सूर्य आदि का तेज पार्थिव द्रव्य मुक्त होकर ही स्थित रहता है, उसी प्रकार तत्त्वप्रकाशमय लिङ्गशरीर भी सूक्ष्म भूतमय शरीर पर ही प्रतिष्ठित होकर कार्य करता है।

अणु परिमाणं तत् कृति श्रुतेः।३/१४।

लिङ्ग शरीर अणु परिमाण (परिच्छिन्न परिमाण, अर्थात् अवयवयुक्त) है, क्योंकि उसकी (गमन आदि) क्रिया का उल्लेख श्रुति में है।

तदन्नमयत्वश्रुतेश्च।३/१५।

लिङ्गशरीर परिच्छिन्न परिमाणमात्र है, विभु नहीं है, क्योंकि वह मन प्रधान है और मन अन्नमय है (अन्नमय मन का प्राधान्य जिसमें है, वह विभु न होकर परिच्छिन्न ही होगा। अन्न ग्रहणादि से मन में गुण प्रधान होता है)।

पुरुषार्थ संसृति लिङ्गानां सूपकारवद्राज्ञः।३/१६।

लिङ्ग शरीरों का संसरण पुरुष के(भोग के) लिये होता है। जिस प्रकार सूपकार (रसोइया) राजा के लिये रसोई में जाता है, उसी प्रकार संहत लिङ्गधारी असंहत स्वपृथक् पुरुष के लिये प्रवृत्त होता है।

पाञ्च भौतिको देहः।३/१७।

देह (स्थूल शरीर) ५ भूतों के मिश्रण का परिणाम है।

चातुर्भौतिकमि-त्येके (त्यन्ये)।३/१८।

कुछ (चार्वाक) के मत से स्थूल शरीर ४ भूतों से बना है(उसमें आकाश नहीं है)

ऐकभौतिकमित्यपरे।३/१९।

एक अन्य मत है कि स्थूल शरीर केवल एक भूत (पृथिवी) से ही निर्मित है (अन्य भूत उपष्टम्भक या लुप्त रहते हैं)। अन्य अर्थ है कि एक प्रकार का शरीर एक ही भूत से निर्मित होता है, जैसे सूर्यलोक में तैजस शरीर आदि।

न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः।३/२०।

चैतन्य (आत्मा, पुरुष) सांसिद्धिक (भूतों से स्वभावत: सिद्ध) नहीं है, ऐसा होने पर पृथिवी आदि में भी चैतन्य दीखता।

प्रपञ्चमरणाद्य भावच्च।३/२१।

यदि शरीर स्वभावत: चैतन्य होता, तो किसी प्राणी का मरण (सुषुप्ति आदि भी) नहीं होता। मरने पर देह अचेतन हो जाता है।

मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येक परिदृष्टे (सौक्ष्म्यात्) सांहत्ये तदुद्भवः।३/२२।

यह कहना ठीक नहीं है कि प्रत्येक भूत में चैतन्य नहीं है, वह उनके संघात रूप देह में आ जाता है, जैसे मद्य के प्रत्येक उपादान में मदशक्ति नहीं रहती पर उनके समूह में रहती है। प्रत्येक उपादान द्रव्य में जो तत्त्व सूक्ष्म रूप से रहता है वही समूह में स्फुट रूप में व्यक्त हो सकता है। भूत में सूक्ष्म रूप में चैतन्य रहना प्रमाण सिद्ध नहीं है, अत: भूत समष्टि रूप देह में भी चैतन्य नहीं आ सकता।

ज्ञानान्मुक्तिः।३/२३।

ज्ञान से ही मुक्ति हो सकती है।

बन्धो विपर्ययात्।३/२४।

विपर्यय (अविद्या=विपरीत ज्ञान) ही (सुख-दु:ख रूप) बन्ध का कारण है।

नियत कारणत्वान्न समुच्चय विकल्पौ।३/२५।

ज्ञान ही मुक्ति का नियत हेतु (अनन्य कारण) है, अत: समुच्चय (ज्ञान कर्म समुच्चय से मुक्ति) या विकल्प(ज्ञान से या कर्म से मुक्ति-यह मत) वाद की सम्भावना नहीं है।

स्वप्नजागराभ्यामिव मायिकाऽमायिकाभ्यां नोभयोर्मुक्तिः पुरुषस्य।३/२६।

जिस प्रकार मायिक(असत्य, अस्थिर) स्वप्न पदार्थ और अमायिक (सत्य) जाग्रत कालीन पदार्थ की परस्पर सहायता से कोई पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता, उसी प्रकार कर्म और ज्ञान के समुच्चय से मुक्ति नहीं होती।

इतरस्यापि नात्यन्तिकम्।३/२७।

आत्मोपासनारूप ज्ञान के साथ तत्त्व ज्ञान का समुच्चय (और विकल्प) हो सकता

है-यह नहींमान सकते। उपास्य सगुण ब्रह्म भी पूर्णतया अमायिक नहीं है, उसमें भी अध्यस्त पदार्थ हैं।

सङ्कल्पितेऽप्येवम्।३/२८।

मन के सङ्कल्पित ध्येय में मायिकत्व है। सर्वव्यापी उपास्य ब्रह्म सगुण है, अतः वह माया रूप त्रिगुण से सम्बद्ध है। अतः उपासना और तत्त्वज्ञान एक साथ नहीं रह सकते।

भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्व प्रकृतिवत्।३/२९।

उपासना का फल क्या है ? जब भावना रूप उपासना में चित्त शुद्ध हो जाता है तब उसमें सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता आदि गुण आते हैं। जिस प्रकार प्रकृति उपयोगी निमित्त द्वारा सृष्टि-संहार आदि कार्य करती है, उसी प्रकार उपासक का बुद्धिसत्त्व भी सृष्टि आदि में समर्थ हो जाता है (उपासना बल के अनुसार)

रागोपहतिर्ध्यानम्।३/३०।

ध्यान के अभ्यास से चित्त का विषयोपराग शान्त होता हैं।

वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः।३/३१।

ध्येय के अतिरिक्त वृत्तिनिरोध से ज्ञान फलक ध्यान की निष्पत्ति होती है।

धारणाऽऽसन स्वकर्मणा तत्सिद्धिः।३/३२।

धारणा, ध्यान और स्वकर्म के अभ्यास से ध्यान की सिद्धि होती है।

निरोधश्छर्दि विधारणाभ्याम्।३/३३।

प्राण का निरोध छर्द (पूरित वायु का त्याग) और विधारण (कोष्ठ में वायु का धारण) से होता है (छर्द+विधारण=प्रणायाम)।

स्थिरसुखमासनम्।३/३४।

शरीर की जो स्थिति सुख और स्थिरता देती है, उसे आसन कहते हैं।

स्वकर्म स्वाश्रम विहित कर्मानुष्ठानम्।३/३५।

स्वकर्म (२३ वें सूत्र में उक्त) का अर्थ है-आश्रम के अनुरूप यम-नियम रूप कर्मों का अनुष्ठान।

वैराग्यादभ्यासाच्च।३/३६।

वैराग्य सहित ध्यान के अभ्यास से ज्ञान तथा उसका साधन योग सिद्ध होता है।(भिक्षु के अनुसार ये दोनों एक ही उपाय हैं)।

विपर्ययभेदाः पञ्च।३/३७।

बन्ध का कारण विपर्यय है, जिसके ५ भेद हैं-अविद्या (तम), अस्मिता (मोह),राग (महामोह), द्वेष (तामिस्र), और अभिनिवेश (अन्धतामिस्र)-योगसूत्र,२/३-९

अशक्ति र ष्टाविंशतिधा (तु) ।३/३८।

अशक्ति (इन्द्रिय वैकल्य) २८ प्रकार की हैं-११ इन्द्रियों कावध(विकलता) तथा १७ बुद्धिवध (९ तुष्टियों तथा ८ सिद्धियों के बाधक पदार्थ)।

तुष्टि र्न वधा ।३/३९।

तुष्टि ९ प्रकार की हैं-४ आध्यात्मिक तुष्टि-१.प्रकृतितुष्टि-प्रकृति स्वयं ही मोक्ष का सम्पादन करेगी, मैं तो कूटस्थ हूं, यह मानकर सन्तोष करना।

२.उपादान तुष्टि-प्रव्रज्या आदि लेने से मोक्ष होगा, यह भाव।

३.कालतुष्टि-बहुत काल तक समाधि के अनुष्ठान से तुष्टि।

४.भाग्य तुष्टि-धर्ममेघ समाधि की तुष्टि।

५-९-बाह्य विषयों के अर्जन-रक्षण-क्षय-संग-हिंसादि में दु:ख की आशंका से वैराग्य , अर्जन आदि छोड़ देना।

सिद्धिरष्टधा ।३/४०।

सिद्धि (साधना पथ में वीर्य दायक) आठ प्रकार की हैं-

१.ऊह सिद्धि-उपदेश आदि के बिना स्वयं ही तत्त्वज्ञान पाने(ऊहन) में समर्थ।

२.शब्द-अन्यों के वाक्य सुनकर ज्ञान प्राप्ति की स्फूर्त्ति।

३.अध्ययन-गुरु-शिष्य परम्परा से ज्ञान प्राप्ति।

४.सुहत् प्राप्ति-ऐसे सुहृत् का आगमन जिससे ज्ञान प्राप्त हो।

५.दान-किसी को धन, दान आदि द्वारा सन्तुष्ट कर ज्ञान पाना।

६-८-त्रिविध दु:खों का विघात।

अवान्तर भेदाः पूर्ववत् ।३/४१।

पूर्व आचार्यों के अनुसार ५ विपर्ययों के अवान्तर भेद हैं-तम के ८ भेद,मोह के ८ भेद, महामोह के १०, तामिस्र के १८ तथा अन्धतामिस्र के १८-कुल ६२ भेद हैं।(सांख्य का.४८)

एवमितरस्याः ।३/४२।

इसी प्रकार (पूर्व आचार्यों के मत से) अशक्ति के अवान्तर भेद १८ हैं।

आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः ।३/४३।

आध्यात्मिक आदि भेद से तुष्टि ९ प्रकार की है(संख्य का.५०,सू.३/३९)।

ऊहादिभिः सिद्धिः।३/४४।

ऊह आदि भेद से सिद्धियां ८ हैं (सां.सू.३/४०)।

नेतरादितरहानेन विना।३/४५।

ऊह, शब्द आदि उपर्युक्त(सां.सू.३/४४) सिद्धियों के अतिरिक्त तप आदि से तात्त्विक (कैवल्य युक्त) सिद्धि प्राप्त नहीं होती, क्योंकि तप आदि से उत्पन्न सिद्धियां विपर्यय का नाश किये बिना भी उत्पन्न होती हैं।यह वस्तुतः सिद्धि का आभास मात्र है।

दैवादि प्रभेदा।३/४६।

सृष्टि के (अर्थात् सृष्टि के देहधारी प्राणियों के) देव आदि अवान्तर भेद हैं-देव, तिर्यग्, मनुष्य योनियां।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात्।३/४७।

ब्रह्म से स्तम्ब पर्यन्त सृष्टि पुरुषार्थ है। जब तक विवेक ज्ञान उत्पन्न नहीं होता तब तक जीवों का संसरण होता रहेगा।

ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला।३/४८।

सत्त्वबहुल सृष्टि ऊर्द्धलोक में है।

तमो विशाला मूलतः।३/४९।

तमो बहुल सृष्टि भूर्लोक के अधोदेश में है।

मध्ये रजोविशाला।३/५०।

रजोबहुल सृष्टि मध्य (भूलोक) में है।

कर्म वैचित्र्यात् प्रधानचेष्टा गर्भदासवत्।३/५१।

प्रधान की कार्यवैचित्र्य-रूप चेष्टा कर्म की विचित्रता से होती है। जन्मजात दास की तरह प्रकृति की चेष्टा भी कर्म के लिये ही होती है।

आवृत्तिस्तत्रात्युत्तरोत्तरयोनियोगाद् हेयः।३/५२।

सत्त्व प्रधान ऊर्ध्वलोक में गति होने पर वहां से आवृत्ति होती है तथा पुनः नाना योनियों में जन्म लेना पड़ता है, अतः ऊर्ध्वलोक भी हेय है।

समानं जरामरणादिजं दुःखम्।३/५३।

सभी प्रकार के लोकों में जीव को जरा मरण आदि द्वारा दुःख मिलता है।

न कारणल यात् कृतकृत्यता मग्नवदुत्थानात्।३/५४।

अव्यक्त प्रकति में चित्त का (अविवेकपूर्वक) लय करनेमात्र से कृतकृत्यता नहीं होती, क्योंकि जलमग्न व्यक्ति की तरह पुनः उस चित्त का उत्थान होता है।

अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात्।३/५५।

प्रकृति स्वयं प्रतिष्ठित है, अतः प्रकृति लीन चित्त का पुनरुत्थान नहीं होना चाहिये -ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि लीन चित्त में परवशता रहने के कारण उस चित्त का पुनः संसार बन्धन होता है।

स हि सर्व वित् सर्वकर्त्ता।३/५६।

पूर्व सर्ग में इस प्रकार का लीन चित्त पुरुष जब अन्य सर्ग में (ईश्वरतायुक्त होकर) व्यक्त होता है, तब वह सर्ववित् और सर्वकर्त्ता होता है।

ईदृशेश्वर सिद्धिः सिद्धा।३/५७।

ईदृश ईश्वर (अर्थात् जन्य ईश्वर) की सिद्धि श्रुति और युक्ति से होती है।

प्रधान सृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वा दु ष्ट्र कुङ्कु म वह नवत्।३/५८।

जड़ प्रकृति की सृष्टि परार्थ होती है। जिस प्रकार ऊंट दूसरों के लिये कुङ्कुम आदि का वहन करता है, उसका भोग नहीं करता।

अचेतनत्वेऽपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य।३/५९।

जिस प्रकार अचेतन क्षीर किसी पुरुष की अपेक्षा न कर भी दधिरूप में परिणत होता है, उसी प्रकार अचेतन प्रकृति पर-प्रयत्न के बिना भी महत् आदि रूप में परिणत होती है।

कर्मवद् दृष्टे र्वा कालादेः।३/६०।

जिस प्रकार काल आदि का कर्म स्वयं चलता है, उसी प्रकार प्रधान की परिणाम क्रिया भी स्वतः होती है।

स्वभावा च्चेष्टित मनभिसन्धानाद् भृत्यवत्।३/६१।

जिस प्रकार एक भृत्य स्वाभाविक संस्कार से प्रभु के कार्य में प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार प्रकृति अपने संस्कार से ही परिणामों को उत्पन्न करती है।

कर्मा कृ ष्टे र्वा ऽ (प्य) नादितः।३/६२।

अथवा अनादि कर्म द्वारा आकृष्ट होकर भी प्रकृति का यथायथ परिणाम होता है।

विविक्त बोधात् सृष्टि निवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके।३/६३।

जब जड़ प्रकृति से अलग पुरुष का बोध चित्त में होता है, तब प्रधान सृष्टि से निवृत्त हो जाता है, जैसे पाचक भोजन बनाने के बाद निवृत्त होता है।

इतर इतरवत् तद्दोषात्।३/६४।

जिनमें विवेक ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है, वे बद्ध रहते हैं, क्योंकि उनमें पुरुषार्थ अभी

समाप्त नहीं हुआ है।

द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः।३/६५।

पुरुष और प्रकृति का परस्पर औदासीन्य (वियोग) ही अपवर्ग (दु:ख) से मुक्ति है। अथवा पुरुष का औदासीन्य होना ही कैवल्य है।

अन्यसृष्ट्युपरागेऽपि न विरज्यते प्रबुद्धरज्जुतत्त्वस्येवोरगः।३/६६।

भोग अपवर्ग से मुक्त पुरुष से निवृत्त होने पर भी वह अन्य पुरुषों से निवृत्त नहीं होता। जैसे जो व्यक्ति रस्सी को सांप नहीं समझता वही उससे नहीं डरता, बाकी उससे डरते हैं।

कर्म निमित्ता यो गाच्च।३/६७।

बद्ध पुरुष के साथ कर्म जुड़ा रहता है, अत: कर्म संस्कार के कारण उसका संसरण चलता रहता है।

नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम्।३/६८।

पुरुष (द्रष्टा) तथा प्रकृति (दृश्य) परस्पर निरपेक्ष हैं। प्रकृति के उपकार (उससे महत् आदि की सृष्टि) अविवेक के कारण ही होता है।

नर्त्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारिता र्थ्यात्।३/६९।

प्रधान की प्रवृत्ति पुरुष के लिये है, उसका कार्य करने पर प्रकृति स्वत: निवृत्त हो जाती है, जैसे नर्त्तकी नृत्य करने के बाद स्वत: बन्द करती है।

दोषबोधेऽपि नोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत्।३/७०।

कुलवधू यह जानने पर कि स्वामी ने उसके दोषों को जान लया है, उससे स्वत: निवृत्त हो जाती है। उसी प्रकार जब प्रकृति के दोषों का ज्ञान पुरुष को हो जाता है, तब प्रकृति उसकी तरफ प्रवृत्त नहीं होती।

नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते।३/७१।

पुरुष का वास्तविक बन्ध या मोक्ष नहीं होता, अविवेक के कारण ऐसा लगता है।

प्रकृतेराञ्जस्यात् ससङ्गत्वात् पशुवत्।३/७२।

तत्त्वत: बन्ध और मोक्ष प्रकृति के ही हैं, क्योंकि वह दु:ख साधनों से लिप्त है। जिस प्रकार रस्सी संग से पशु बन्ध जाता है, उसी प्रकार दु:ख साधन भूत धर्म आदि से लिप्त होकर प्रकृति बद्ध होती है।

रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं को शकारवद्विमोचयत्येकेनरूपेण।३/७३।

जिस प्रकार कोशकार (कीड़ा) अपने ही बनाये घर द्वारा बन्ध जाता है, उसी प्रकार

प्रकृति अपने निर्मित धर्म, विराग, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य- इन ७ रूपों से अपने को बान्धती है। ज्ञान नामक एक रूप द्वारा अपने को मुक्त भी करती है।

निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टहानिः।३/७४।

बन्ध-मोक्ष में अविवेक का होना या नहीं होना निमित्त है। अविवेक द्वारा प्रकृति-पुरुष संयोग से उत्पन्न दुःख प्रकृति में होता है, पुरुष में उसका प्रतिबिम्ब रूप दुःखभोग होता है।

तत्त्वाभ्यासान्नेति नेतीति त्यागाद्विवेकसिद्धिः।३/७५।

प्रकृति और प्राकृत पदार्थ में नेति-नेति रूप से अभिमान त्याग कर तत्त्व का अभ्यास करने से विवेक होता है।

अधिकारिप्रभेदान्न नियमः।३/७६।

अधिकारी -प्रभेद रहने के कारण एक जन्म के अभ्यास से (या एक निश्चित काल में) ही मुक्ति होगी, ऐसा कोई नियम नहीं है।

बाधितानुवृ -त्त्या(त्तेः) मध्यविवेकतोऽप्युपभोगः।३/७७।

बाधिता-अनुवृत्ति (प्रारब्धवश नष्ट अज्ञान का पुनः उदय होना) के कारण मध्यविवेकी (जिसका विवेक अपूर्ण है) साधक में भी उपभोग होता है (प्रतिबिम्बरूप से पुरुष में अनुवृत्ति होना ही भोग है)।

जीवन्मुक्तश्च।३/७८।

मध्यविवेकी जीवन्मुक्त कहलाता है।

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः।३/७९।

मोक्षविद्या का प्रतिपादन अविवेकी संसारी द्वारा सम्भव नहीं है, अतः इसके उपदेशक होने का अर्थ है जी वन्मुक्त पुरुष भी हैं।

श्रुतिश्च।३/८०।

श्रुति से भी जो जीवनमुक्त हों उनके कार्य सिद्ध होते हैं।

इतरथाऽन्धपरम्परा।३/८१।

यदि जीवन्मुक्त पुरुष का अस्तित्त्व न मानें, तो आत्मज्ञान का उपदेश भ्रान्त होगा जैसे एक अन्ध दूसरे अन्ध को मार्ग दिखाये।

चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः।३/८२।

जिस प्रकार कुम्भकार का चक्र अपने वेग द्वारा कुछ काल तक घूमता रहता है, उसी

प्रकार जीवन्मुक्त का शरीर भी पूर्व संस्कार से कुछ काल तक जीवित रहता है।

संस्कारलेशतस्तत्सिद्धिः ।३/८३।

उस समय विषय-संस्कार रहने के कारण शरीर धारण रूप क्रिया चलती रहती है, अविद्या-संस्कार का लेश नहीं रहता।

विवेकान्निःशेष दुःख निवृत्तौ कृतकृत्यता नेतरान्नेतरात्।३/८४।

विवेक ज्ञान की पूर्णता होने पर दुःखाधार चित्तवृत्तियों के निरोध होने के कारण दुःख की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है, यही परम पुरुषार्थ रूप कृतकृत्यता है। यह कृतकृत्यता जीवन्मुक्ति दशा में नहीं होती।

अध्याय ४

राजपुत्रवत् तत्त्वोपदेशात्।४/१।

तत्त्व सम्बन्धी उपदेश से विवेक की उत्पत्ति होती है। इस विषय में यह आख्यायिका है कि कोई राजपुत्र वन में रहने के कारण अपना प्रकृत रूप न जानकर शबर रूप में रहता था। पर बाद में किसी अमात्य के उपदेश से अपने रूप को पहचाना और स्वराज्य में प्रतिष्ठित हुआ।

पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि।४/२।

एक के लिये कहा गया उपदेश अन्य के लिये भी उपकारी होता है, जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने अर्जुन के लिये उपदेश किया, पर उस उपदेश को समीपस्थ किसी पिशाच ने सुन लिया जिससे उसके हृदय में उत्कृष्ट ज्ञान उत्पन्न हुआ।

आवृत्तिरसकृदुपदेशात्।४/३।

ज्ञान के दृढ़ता सम्पादन के लिये उपदेश की आवृत्ति (बार-बार सुनना) करनी चाहिये, जैसे श्वेतकेतु आदि के प्रति आरुणि आदि ऋषियों ने बार-बार उपदेश दिया था।

पितापुत्र वदुभयोर्दृ ष्टत्वात्।४/४।

जिस प्रकार कोई व्यक्ति पिता का मरण तथा पुत्र का जन्म देख पाता है, उसी प्रकार अपनी उत्पत्ति और मरण को भी सभी अनुमान से जान सकते हैं।इस ज्ञान से वैराग्य उत्पन्न होता है जो विवेक को निष्पन्न करता है।

श्येनवत् सुखदुःखी त्यागवियोगाभ्याम्।४/५।

परिग्रह (अनावश्यक सञ्चय) नहीं करना चाहिये, क्योंकि उससे दुःख की वृद्धि होती है। श्येन के पास यदि मांस हो तो मांसभक्षी प्रणी द्वारा मारा जाता है। पर

यदि वह मांस को छोड़ देता है तो सुखी हो जाता है।

अहिनिर्ल्वयनीवत्।४/६।

जिस प्रकार सांप अपना केंचुल ममत्वशून्य बुद्धि से छोड़ता है, उसी प्रकार अनात्मभूत प्राकृत उपाधि को भी हेय बुद्धि से छोड़ने की चेष्टा करनी चाहिये।

छिन्नाहस्तवद्वा।४/७।

जिस प्रकार छिन्न हस्त को ग्रहण करने की इच्छा किसी को नहीं होती, उसी प्रकार हेय बुद्धि से छोड़ी चीजों को ग्रहण करने की इच्छा नहीं करनी चाहिये।

असाध नानु चिन्तनं बन्धाय भरतवत्।४/८।

जो विवेक का साधन नहीं है, उसका अनुचिन्तन करने से (चाहे वह सामान्य दृष्टि से सदाचार ही क्यों न हो) बन्धन होने की सम्भावना रहती है, जैसे राजर्षि भरत का हुआ था। (उन्होंने अनाथ हरिण शिशु का पालन रूप दया पूर्ण कर्म किया था, जिससे उनको संसार गति मिली थी)।

बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशङ्खवत्।४/९।

अनेक लोगों का संग करने से राग द्वेष आदि का प्रवाह बढ़ता है, जिससे परस्पर कलह की सम्भावना रहती है (जिससे योगसाधन का भ्रंश हो जाताहै),जिस प्रकार कुमारी के हाथ में कई चूड़ियां रहने पर उनके संघर्ष से शब्द होता रहता है।

द्वाभ्यामपि तथैव।४/१०।

केवल दो के संयोग से भी विरोध हो सकता है।

निराशः सुखी पिङ्गलावत्।४/११।

आशा का त्याग करने पर ही कोई सुखी हो सकता है, जिस प्रकार पिङ्गला वेश्या अपने प्रेमी को चाहने के कारण उसकी अपेक्षा में क्लिष्ट हुयी थी और यह आशा छोड़ने पर सुखी हुयी थी।

अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी भवेत्। ४/१२।

भोग के लिये किसी नये कार्य का आरम्भ साधक को नहीं करना चाहिये। सांप जिस प्रकार अन्य निर्मित बिल में ही रह कर सुखी रहता है, उसी प्रकार योगी को रहना चाहिये।

बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपि सारादानं षट्पदवत्।४/१३।

बहुसंख्यक शास्त्रों का अध्ययन एवं गुरुओं की उपासना करने पर भी सारग्रहण की मनोवृत्ति रखनी चाहिये। भ्रमर जिस प्रकार पुष्पों से मधुमात्र का सञ्चय करता है,

उसी प्रकार बहुत अर्थ वाले शास्त्रों का मुख्य तत्त्व ही लेना चाहिये।

इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः।४/१४।

साधक को एकालम्बनपरायणता (जो एकाग्र-भूमिका का मुख्य साधन है) यदि हो तो सामान्य बाधा के उपस्थित होने पर या क्लिष्ट वृत्ति के उदय होने पर समाधि की हानि (लक्ष्य से विच्युति) नहीं होती। जिस प्रकार एक एकाग्र इषुकार (बाण बनाने वाला) की एकाग्रता राजा के आगमन से भी नहीं टूटती।

कृ(व्र)तनियमलङ्घनादानर्थक्यं लोकवत्।४/१५।

मोक्षशास्त्र सिद्ध नियमों के लङ्घन से परमार्थ की सिद्धि नहीं होती (ज्ञानाभ्यास का उत्कर्ष नष्ट हो जाता है)। लोक में भी देखा जाता है कि औषधादि जनित फलप्राप्ति तभी होती है जब विहित पथ्य का उल्लंघन न किया जाय।

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत्।४/१६।

शास्त्रीय नियम के विस्मरण से भी हानि होती है। एक सुन्दरी कन्या से किसी राजा ने एक शर्त्त पर विवाह किया। बाद में राजा वह शर्त्त भूल गये जिससे कन्या अपने पूर्वरूप (भेकी) को प्राप्त हुयी जिससे राजा दुःखी हुये।

नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत्।४/१७।

केवल उपदेश-श्रवण से कृतकृत्यता नहीं होती, बल्कि समाचार अर्थात् उपदेश का तात्पर्य निर्णय कर मनन करना चाहिये। विरोचन नामक असुर और इन्द्रदेव ने प्रजापति से समान उपदेश प्राप्त किया, पर यथावत् विचारादि न करने के कारण विरोचन भ्रान्त हुये।

दृष्टस्तयोरिन्द्रस्य।४/१८।

उपर्युक्त श्रौत आख्यायिका में स्पष्ट है कि प्रजापति से प्राप्त उपदेश का विचारपूर्वक मनन इन्द्र ने किया अतः उन्हें ही प्रकृत ज्ञान प्राप्त हुआ।

प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्ब हु कालात्।४/१९।

इन्द्र की तरह यदि कोई गुरु में प्रणत भाव रखे और ब्रह्मचर्य का उपसर्पण (श्रद्धा से गुरु के पास जाकर सेवा करना) करे तो दीर्घकाल तक ऐसा करने से उसे सिद्धिलाभ (तत्त्वज्ञान -प्राप्ति) होता है।

न काल नियमो वामदेववत्।४/२०।

ज्ञान के उदय में कोई काल नियम नहीं है, जैसे वामदेव को गर्भ में ही ज्ञानोदय हुआ था (ऐतरेय उप.२/४/५, बृहदारण्यक उप.१/४/१०)।

अध्यस्तरू पो पा सनात् पारम्पर्येण यज्ञो पा सका नामिव ।४/२१।

सगुण उपासना से भी ज्ञान मिल सकता है, अत: दुष्कर अध्यात्मयोग का अनुशीलन व्यर्थ है-यह मानना ठीक नहीं है, क्योंकि अध्यस्त रूपों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि) की उपासना से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है और सत्त्वशुद्धि के क्रमिक उत्कर्ष के अनुसार ज्ञान की निष्पत्ति होती है। इससे चरम सिद्धि साक्षात् रूप से नहीं होती। यज्ञकर्मकारी के लिये भी यही बात है। कर्म से चित्त शुद्ध होता है तथा सत्त्वशुद्धि के क्रमिक उत्कर्ष से विवेकपूर्वक चित्त निरोध करने से परमार्थ की सिद्धि होती है।

इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पञ्चाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः ।४/२२।

अव्यक्त रूपों की उपासना से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होने पर भी संसार में पुनरावृत्ति होती है, क्योंकि देवयान पथ से ब्रह्मलोक में गमनकारी का पुनर्जन्म पञ्चाग्नि योग (द्यु-पर्जन्य-पृथिवी-पुरुष-योषित् रूपसे) होता है -ऐसा श्रौत वचन है।

विरक्त हे यहा नमु पा दे यो पादानं हं सक्षी रवत् ।४/२३।

जिस प्रकार हंस जलमिश्रित दुग्ध से दूध अलग कर सकता है, उसी प्रकार वैराग्यसम्पन्न साधक हेय का हान(त्याग) एवं उपादेय का उपादान (ग्रहण) करने में दक्ष होता है।

लब्धातिशययोगाद्वा तद्वत् ।४/२४।

जिसका ज्ञान चरम उत्कर्ष पर पहुंच गया है, ऐसे महापुरुष के संग से भी कोई ज्ञान पा सकता है, जैसे राजा अलर्क को महायोगी दत्तात्रेय के संग से विवेक मिला था।

न कामचारित्वं रागोपहते शुकवत् ।४/२६।

रागी (सकाम) पुरुषों का संग करने से उसके रागादि दोषों का प्रभाव संगकारी पर भी पड़ता है, जिस प्रकार सुन्दर शुक पक्षी का बन्धन व्याध के गुणों (रस्सी) से होता है।

न भो गाद्रा गशान्तिर्मु निवत् ।४/२७।

भोग करते रहने से विषयानुराग की उपशान्ति (वैराग्य भाव) नहीं होती, जैसे सौभरि मुनि का चित्त प्रचुर भोग विलास से भी शान्त नहीं हुआ था।

दोषा दर्शनादुभयोः ।४/२८।

प्रकृति और उसके कार्य में दोषदर्शन करने की शक्ति जब होती है तभी राग का उपशम होता है। प्रकृति और उसके कार्य परिणामी हैं, दु:खद हैं, इत्यादि बोध

होने पर ही उन पर दोष दर्शन होता है।

न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत् ।४/२९।

मलिन चित्त में उपदेश रूप बीज का प्ररोह (अङ्कुर के रूप में उद्गम) नहीं होता (राग द्वेष युक्त चित्त उपदेश सुनकर भी साधन-मार्ग में अग्रसर नहीं होता), जिस प्रकार अज (नामक राजा) जब भार्या वियोग से दु:खित हो गये तो वसिष्ठ का उपदेश भी उनका चित्त शान्त नहीं कर पाया।

नाभासमात्रमपि मलिनदर्पणवत् ।४/३०।

जिस प्रकार मैले दर्पण में प्रतिबिम्ब नहीं होता, उसी प्रकार मलिन चित्त में उपदेश हेतु ज्ञान का आभास मात्र भी उत्पन्न नहीं होता।

नतज्जस्यापि तद्रूपता पङ्कजवत् ।४/३१।

मलिन चित्त में उपदेश से यदि समाधान भी हो तो वह उपदेश के अनुरूप नहीं होता ।जिस प्रकार पंक दोष के कारण बीज के शुद्ध रहने पर भी पद्म बीज के जैसा नहीं होता।

न भूतियोगे(ऽपि) कृतकृत्यतोपास्यद्धिवदुपास्यसिद्धिवत् ।४/३२।

विभूति की प्राप्ति होने पर भी कृतकृत्यता (परम पुरुषार्थ=दु:ख की पूर्ण निवृत्ति) नहीं होती, क्योंकि ऐश्वर्य की त्रिगुणात्मकता के कारण उसमें क्षय आदि दोष अवश्य होते हैं। उपास्य ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों की सिद्धि होने पर भी उनकी कृतकृत्यता नहीं होती।

अध्याय ५

मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ।५/१।

शास्त्रारम्भ में मङ्गलाचरण के ३ हेतु हैं-शिष्टाचार, फलदर्शन (मङ्गलाचरण से ग्रन्थ-समाप्ति रूप फल या विघ्न-ध्वंसरूप फल) तथा श्रुति का आदेश।

नेश्वराधितिष्ठते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः ।५/२।

कर्म फल की निष्पत्ति ईश्वर के अधिष्ठान रूप हेतु से नहीं होती, कर्म द्वारा ही कर्मफल प्राप्त होता है।

स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत् ।५/३।

ईश्वर के अधिष्ठान से फल मिलता है, ऐसा मानने से यह भी मानना पड़ेगा कि उनमें स्वोपकार (अपने के लिये कुछ करने की इच्छा) की मनोवृत्ति है। लोक में भी अपनी भलाई के लिये ही कोई किसी का सञ्चालन, नियमन आदि करता है।

लौकिकेश्वरवदितरथा।५/४।

ईश्वर का उपकार मानने पर वे लौकिकेश्वर (शक्तिमान् संसारी व्यक्ति) के जैसे ही सिद्ध होंगे (ईश्वर में नि:सङ्कल्पता, आप्तकामता आदि गुणों की असिद्धि होगी)।

पारिभाषिको वा।५/५।

यदि लौकिकेश्वर जैसा ही ईश्वर को माना जाय, तो वह 'ईश्वर' प्रतिवादी का एक पारिभाषिक पदार्थ होगा।

न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात्।५/६।

फल सिद्धि में अधिष्ठान रूप से साक्षात् हेतु वही चेतन जीव हो सकता है, जिसको तदनुरूप राग हो (क्योंकि राग ही प्रवृत्ति का हेतु है)। ईश्वर में कोई राग नहीं है।

तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः।५/७।

ईश्वर में राग होने पर वह नित्यमुक्त नहीं हो सकता।

प्रधानशक्तियोगाच्चेत् सङ्गापत्तिः।५/८।

यदि प्रधान की इच्छा आदि शक्तियों को ही ईश्वर की ईश्वरता मानें तो ईश्वर में संग मानना पड़ेगा।

सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम्।५/९।

यदि प्रकृति के सन्निधान मात्र से चेतन का ऐश्वर्य मानें, तो सभी आत्मा ऐश्वर्यवान् हो जायेंगे क्योंकि सभी भोक्ताओं के साथ संयोग के कारण ही प्रकृति से महत् आदि उत्पन्न होते हैं।

प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः।५/१०।

वस्तुत: नित्य ईश्वर की सत्ता में कोई प्रमाण नहीं है।

सम्बन्धभावान्नानु मानम्।५/११।

सृष्टिक्रिया के साथ नित्यमुक्त ईश्वर का कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं है जिससे जगत् की उत्पत्ति से ईश्वर की सत्ता का अनुमान किया जाय।

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य।५/१२।

प्रधान (३ गुण) ही इस प्रपञ्च (जगत्) का उपादान है-ऐसी श्रुति है।

नाविद्याशक्तियोगो नि:सङ्गस्य।५/१३।

निर्गुण चेतन पुरुष स्वभावत: असंग है, अत: अविद्यारूप शक्ति के साथ पुरुष का साक्षात् योग नहीं होता।(सूत्र १/२०)।

तद्योगे तत्सिद्धावन्योऽन्याश्रयत्वम्।५/१४।

अविद्या का योग भी अविद्यावश होता है,ऐसा कहने से अन्योन्याश्रय दोष होता है।

न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः।५/१५।

बीजाङ्कुर-न्याय ने इस दोष का समाधान नहीं हो सकता, क्योंकि अविद्या आदि रूप संसार का आरम्भ है। प्रलय और सुषुप्ति में चूंकि इनका अभाव होता है, अतः इन सबकी पुनः नूतन सृष्टि माननी पड़ती है।

विद्यातोऽन्यत्वे ब्र ह्मबाध प्रसक्तेः।५/१६।

यदि अविद्या का अर्थ विद्या से अन्य है तो ब्रह्म-बाध (ब्रह्म असिद्ध) होगा। अविद्या का जिस प्रकार ज्ञान से नाश होता है, उसी प्रकार विद्याभिन्न ब्रह्म का नाश या बाध भी होगा।

अबाधे नैष्फल्यम्।५/१७।

यदि विद्या से अविद्या का नाश नहीं माना जाय तो ब्रह्मविद्या की विफलता होगी।

विद्याबाध्यत्वे जगतोऽप्येवम्।५/१८।

यदि चेतन में जो बाधित होता है उसी को अविद्या माना जाय, तो जगत् भी अविद्यारूप ही होगा तथा एक व्यक्ति के अविद्या का नाश होने पर सम्पूर्ण प्रपञ्च ही अदृश्य हो जायगा।

तद्रूपत्वे सादित्वम्।५/१९।

यदि विद्या का बाध ही अविद्या माना जाय तो विद्या का आदित्व मानना पड़ेगा। प्रलय में पुरुष चिन्मात्र रूप रहता है, अतः चित्तगत अविद्या नहीं रहती। पुनः सर्ग आरम्भ होने पर असंसारी पुरुष का स्वतन्त्र नित्य प्रधा नके साथ योग होने पर बन्ध होता है। इस प्रधान संयोग का निमित्त है-प्राग्भव अविवेक।

न धर्मापलापः प्रकृति कार्य वैचित्र्यात्।५/२०।

प्रकृति के कार्यों की जो विचित्रता है, उसमें अप्रत्यक्ष धर्म का अनुमान होता है।(अदृष्ट रूप धर्म के कारण ही यह विचित्रता होती है)।

श्रुतिलिङ्गादिभिस्तत्सिद्धिः।५/२१।

श्रुति, विधिरूप लिङ्ग तथा योगिप्रत्यक्ष आदि से धर्म की सिद्धि होती है।

न नियमः प्रमाणान्तरावकाशात्।५/२२।

प्रत्यक्ष प्रमाण न रहने से ही धर्म का अस्तित्वसिद्ध नहीं होता, यह कहना ठीक नहीं है। अन्य प्रमाण(अनुमान आदि) से भी अप्रत्यक्ष धर्म की सिद्धि होती है।

उभयत्राप्येवम्।५/२३।

जिस प्रकार के प्रमाण से धर्म की सिद्धि होती है, उसी प्रकार के प्रमाण से अधर्म की सिद्धि होती है।

अर्थात् सिद्धिश्चेत् समानमुभयोः ।५/२४।

विधिवाक्य को देखकर अर्थापत्ति प्रमाण से धर्म की सिद्धि होती है, पर अधर्म की सिद्धि नहीं होती-यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि शास्त्र के निषेध वाक्यों से अधर्म की सिद्धि होती है (उसे मना किया गया है)।

अन्तःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम् ।५/२५।

धर्म, अधर्म आदि अन्तःकरण के धर्म हैं (वैशेषिकदर्शन में इन्हें आत्मा का विशेष गुण माना जाता है)। प्रलय में भी इस अन्तःकरण का पूर्ण नाश नहीं होता। कारणावस्थ अन्तःकरण में धर्म आदि का संस्कार रहता है।

गुणादीनां (च) नात्यन्त बाधः ।५/२६।

सत्त्व आदि तीन गुण और उनके धर्मभूत सुख-दुःख-मोह स्वयं बाध नहीं होते, यद्यपि चेतन में इसका बाध होता है।

पञ्चावयवयोगात् सुखसंवित्तिः ।५/२७।

(न्याय शास्त्र के) ५ अवयवों से सुख का संवेदन सिद्ध किया जा सकता है, यथा अर्थ क्रिया कारी पदार्थ सत् होता है, सुख, पुलक आदि रूप भी अर्थ क्रिया कारी हैं, अतः वह सत् है।

न सकृद् ग्रहणात् सम्बन्ध सिद्धिः ।५/२८।

एक बार साथ दीखने से किन्हीं दो पदार्थों का सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता।

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः ।५/२९।

एक पदार्थ अन्य के साथ या उभय का उभय के साथ नित्य रहना व्याप्ति कहलाता है। साध्य के साथ साधन का सम्बन्ध व्याप्ति है। उभय का साथ होना सम व्याप्ति में होता है, जैसे जन्यता और अनित्यता में।

न तत्त्वान्तरं वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः ।५/३०।

वह अव्यभिचरित सम्बन्ध रूप व्याप्ति कोई अलग तत्त्व नहीं है, साथ रहना उनका नियत धर्म है। ऐसा नहीं मानने पर उसका आधाररूप अन्य तत्त्व मानना होगा।

निजशक्त्युद्भवमित्यचार्याः ।५/३१।

कुछ आचार्यों के मत से व्याप्त वस्तु की शक्ति से व्याप्ति होती है।

आधेय शक्ति योग इति पञ्चशिखः ।५/३२।

पञ्चशिख के मत से आधेय शक्ति का नाम व्याप्ति है। आधेय शक्तियोग का अर्थ है-व्याप्त होने का निश्चय-जैसे धूम स्वभाव से ही अग्नि का सहचर है। आधेय=आधार में रहने वाला, यहां धूम।

न स्वरूपशक्तिनियमः पुनर्वादप्रसक्तेः।५/३३।

व्याप्त की स्वरूप शक्ति ही नियम (व्याप्ति) है-ऐसा कहना पुनरुक्ति मात्र है।

विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः।५/३४।

(पूर्व सूत्र का) पुनरुक्ति विशेषण की व्यर्थता रूप है।

पल्लवाविष्वनुपपत्तेः(च)।५/३५।

स्वरूप शक्तिवाद मानना ठीक नहीं है, क्योंकि पल्लव (वृक्ष शाखा) में वृक्ष व्याप्त है। अतः टूटे पल्लव में भी वृक्ष का बोध होना चाहिये, पर ऐसा नहीं होता।

आधेयशक्तिसिद्धौ निजशक्तियोगः समानन्यायात्।५/३६।

३२वें सूत्र में आधेयशक्तियोग को ही व्याप्ति कहा गया है। इससे अपनी शक्ति के उद्भव का व्याप्तित्व भी सिद्ध होता है, क्योंकि दोनों पक्षों का एक ही तर्क है। जिस युक्ति से आधेयशक्ति सिद्ध होती है, उसी से अपनी शक्ति का उद्भव भी सिद्ध है।

वाच्यावाचक(भावः) सम्बन्धः शब्दार्थयोः।५/३७।

शब्द और अर्थ का वाच्य-वाचक सम्बन्ध है, शब्द में वाचकता शक्ति है, अर्थ में वाच्यता शक्ति है।

त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः(द्धेः)।५/३८।

इस सम्बन्ध का ज्ञान तीन प्रकार से सिद्ध होता है-(१) आप्तोपदेश, (२) वृद्धव्यवहारपरम्परा, (३) प्रसिद्ध पद का समानाधिकरण।

न कार्ये नियम उभयथा दर्शनात्।५/३९।

शक्तिग्रह कार्य (साध्य) अर्थ में ही होता है, ऐसी बात नहीं। साध्य और सिद्धि इन दोनों में शक्ति सिद्ध है। इस दृष्टि से सिद्धार्थ बोधक वेदवाक्य का प्रामाण्य माना जाता है।

लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः।५/४०।

लौकिक शब्द में जो व्युत्पन्न है, उसको वेदार्थ की प्रतीति होती है, क्योंकि जो लौकिक शब्द है, वही वैदिक शब्द है।

न त्रिभिरपौरुषेयत्वद्वेदस्य तदर्थस्यातीन्द्रियत्वात्।५/४१।

(शंका) वेद अपौरुषेय है (वेद का कोई प्रथम रचयिता नहीं है) तथा वेदार्थ अतीन्द्रिय

है, अत: ३/३८ सूत्रोक्त तीन उपायों से शक्तिग्रह होने की सम्भावना नहीं है।

न यज्ञादे: स्वरूपतो धर्मत्वं वैशिष्ट्यात् ।५/४२।

(उत्तर) वेद में उक्त द्रव्यत्याग आदि यज्ञ अतीन्द्रिय नहीं हैं। वे फलजनक होने के कारण कर्म हैं। यज्ञ से उत्पन्न अपूर्व धर्म नहीं है, धर्म से अलग है। याग आदि इच्छा से होते हैं, अत: वे अलौकिक, अपौरुषेय, अतीन्द्रिय नहीं हैं।

निजशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते ।५/४३।

वेद के अपौरुषेय होने पर भी वेद के शब्दों का अर्थ वृद्धपरम्परा द्वारा शिष्य को स्पष्ट ज्ञात होती है, अत: अपौरुषेय वेद के अर्थज्ञान में कोई बाधा नहीं है।

योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात् तत्सिद्धि ।५/४४।

सामान्य धर्म के अनुभव से उसका प्रत्यक्ष तथा परोक्ष अर्थ ज्ञात होते हैं। यथा गो शब्द से गाय या गो जाति दोनों अर्थ हो सकते हैं।

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुते: ।५/४५।

चूंकि वेद में ही कहा गया है कि वेद का निर्माण प्रजापति द्वारा किया गया है, इसलिये वेद नित्य नहीं हैं।

न पौरुषेयत्वं तत्कर्त्तु: पुरुषस्याभावात् ।५/४६।

नित्य न होने पर भी वेद पौरुषेय नहीं हैं, क्योंकि वेदकर्त्ता पुरुष का प्रभाव है(कर्त्ता का स्मरण परम्परा में न रहने के कारण)। ईश्वर प्रतिसिद्ध है, अत: ईश्वर को वेदकर्त्ता नहीं मान सकते।

मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ।५/४७।

मुक्त पुरुष सर्वथा वीतराग होने के कारण वेद का प्रणेता नहीं हो सकता। बद्ध पुरुष भी कर्त्ता नहीं हो सकता क्योंकि उसे वेद के सूक्ष्म विषयों का ज्ञान नहीं हो सकता।

नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ।५/४८।

जिस प्रकार अङ्कुर आदि अपौरुषेय होने पर भी नित्य नहीं हैं, उसी प्रकार वेद अपौरुषेय होने पर भी नित्य नहीं हैं।

तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादि प्रसक्ति: ।५/४९।

अङ्कुर चूंकि कार्य है, अत: उसको पौरुषेय ही मानना चाहिये -ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि अङ्कुर के साथ कार्यत्व का योग बाधित ही है। अङ्कुर अपौरुषेय होने पर भी अनित्य है।

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरु पजायते तत्पौरु षेयम्। ५/५०।

पौरुषेय वस्तु उसे कहते हैं, जिसके कर्त्ता के अदृष्ट होने पर भी वह बुद्धि पूर्वक रचित है, ऐसा लगता है। वेद बुद्धिपूर्वक नहीं है, अत: वह अपौरुषेय है।

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रमाणम् ।५/५१।

वेद की अपनी स्वाभाविक ज्ञान देने की शक्ति से उसका स्वत: प्रामाण्य सिद्ध होता है। वेद का प्रामाण्य वक्ता को यथार्थ ज्ञान देता है।

नासतः ख्यानं नृशृङ्गवत् ।५/५२।

असत् (अविद्यमान) वस्तु का ज्ञान नहीं होता, जिस प्रकार नरशृङ्ग का ज्ञान नहीं होता। सीपी को रजत समझना भी पूर्णत: असत् नहीं है,वह मन का परिणाम है।

न सतो बाधदर्शनात् ।५/५३।

त्रिगुण रूप परा सत् पदार्थ भी प्रतिक्षण परिणामी है, अत: इसके एक धर्म से अन्य धर्म का बोध होता है। चैतन्य में त्रिगुण का बाध देखा जाता है।

नानिर्वचनीयस्य तदभावात् ।५/५४।

ज्ञात पदार्थ या तो विद्यमान (सत्) होगा या अविद्यमान (असत्) होगा। ज्ञात वस्तु को अनिर्वचनीय नहीं कह सकते।

नाऽन्यथाख्यातिः स्ववचोव्याघातात् ।५/५५।

अन्यथाख्याति (एक वस्तु का अन्य रूप में ज्ञान) संगत नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से अपना ही मत खण्डित होता है। एक वस्तु अन्य वस्तु नहीं हो सकती, अत; असिद्ध वस्तु का भी आभास नहीं हो सकता।

सदसत् ख्यातिर्बाधाबाधात् ।५/४६।

सदसत् ख्यातिवाद (एक दृष्टि से सत् तथा अन्य दृष्टि से असत्) ही युक्त है-क्योंकि इस दृष्टि का कोई बाधक हेतु नहीं है। दूकान में रजत् सत् तथा उसके जैसा दीखता सीपी असत् है। इसी प्रकार अयस्क भेद से सत्त्व असत्त्व का निर्णय हो सकता है।

प्रतीत्यप्रतीतिभ्यां न स्फोटात्मकः शब्दः ।५/५७।

वाचक पद (शब्द) स्फोट (जिससे अर्थ स्पष्ट हो) रूप है, ध्वनि रूप नहीं है-ऐसा कहना असंगत है, क्योंकि ध्वनि की ही प्रतीति होती है, स्फोटरूप ध्वनि द्वारा व्यञ्जित पदार्थ की प्रतीति नहीं होती।

न शब्दनित्यत्वं कार्यताप्रतीतेः ।५/५८।

वर्ण(कण्ठ तालु आदि से उत्पन्न ध्वनि) नित्य नहीं है, क्योंकि वह कार्य है- उसकी उत्पत्ति होती है।

पूर्वसिद्धसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दी पेनेव घटस्य।५/५९।
(शङ्का) यदि कहा जाय कि नित्य निरवयव प्राक्सिद्ध स्फोट (शब्द) ही ध्वनि से अभिव्यक्त होता है, जिस प्रकार पूर्वसिद्ध अन्धकार आवृत्त घट दीप से प्रकट होता है, नया नहीं बनता।
सत्कार्य सिद्धान्तश्चेत् सिद्धसाधनम्।५/६०।
(समाधान) सत्कार्यवाद की दृष्टि से ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें पहले से सिद्ध के साधन का दोष है।
नाद्वैतमात्मनो लिङ्गात् तद्भेदप्रतीतेः।५/६१।
कोई आत्मा बद्ध है, कोई मुक्त है, अतः आत्मा एक नहीं हो सकता। श्रुतिवाक्य में ऐसा लिङ्ग(बाह्य रूप) है, जिससे अत्माओं में परस्पर भेद ज्ञात होता है।
नाऽनात्मनापि प्रत्यक्षबाधात्।५/६२।
आत्मा का द्वैत अनात्मवस्तु (भोग विषय) के कारण नहीं है। भोग्य और भोक्ता आत्मा एक नहीं हो सकते।
नोभाभ्यां तेनैव।५/६३।
आत्मा और अनात्म वस्तु बिलकुल भिन्न नहीं हो सकते (पूर्वोक्त युक्ति के कारण)।
अन्य परत्वमविवेकानां तत्र।५/६४।
अन्य प्रसंग में शास्त्र में आत्मद्वैत कहागया है। अविवेकी व्यक्ति में उपासना बुद्धि करने के लिये इस प्रकार का आत्मद्वैत बताया गया है। शरीर-शरीर में अविवेक से अभेदबुद्धि होती है, उस बुद्धि को मानकर श्रुति में आत्माभेद पूर्वक उपासना का वर्णन है।
नात्माऽविद्या नोभय जगदुपादानकारणं निःसङ्गत्वात्।५/६५।
केवल आत्मा या केवल अविद्या या इन दोनों के मिश्रण द्वारा जगत् नहीं बनता, क्योंकि केवल आत्मा निःसङ्ग-निर्गुण-निर्धर्मक है। (असङ्गता के कारण दोनों का स्वाभाविक योग नहीं हो सकता। निर्गुणत्व के कारण आत्मा उपादान भी नहीं हो सकता)।
नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात्।५/६६।
एक (अखण्ड आत्मा) धर्मी का आनन्द और चित्-दोनों रूप सम्भव नहीं है क्योंकि दोनों में भेद है।
दुःखनिवृत्तेर्गौणः।५/६७।

विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम् ।५/६८।

दु:खनिवृत्ति रूप में आत्मा की प्रशंसा करने से अज्ञों की प्रवृत्ति आत्मध्यान की ओर होती है, अत: ऐसा गौण प्रयोग किया गया है।

न व्यापकत्वं मनसः करणत्वादिन्द्रियत्वाद्वा,वास्यादिवच्चक्षुरादिवच्च ।५/६९।

सामान्य अन्त:करण के रूप में मन व्यापक नहीं है, क्योंकि वह करण और इन्द्रिय है। तृतीय अन्त:करण रूप जो मन है, वह विभु नहीं है। वास्य (घर) एक ही स्थान पर है, जैसे शरीर में स्थित मन ।मन की तरह चक्षु भी एक इन्द्रिय है जो एक ही है।

सक्रियत्वाद् गतिश्रुतेः ।५/७०।

आत्मा के अन्य लोक में जाने का अर्थ उपाधिभूत अन्त:करण की गति है। गति क्रिया है, अत: अन्त:करण विभु नहीं हो सकता।

न निर्भागत्वं तद्योगाद् घट (आदि) वत् ।५/७१।

मन निर्भाग (अवयवहीन) नहीं है, क्योंकि एक काल में ही अनेक इन्द्रियों से उसका योग रहता है। घट जिस प्रकार सीमित परिमाण का तथा अवयव युक्त है, वैसा ही मन भी है।

प्रकृतिपुरुषयोरन्यत् सर्वमनित्यम् ।५/७२।

प्रकृति, पुरुष के अतिरिक्त सभी व्यक्त पदार्थ अनित्य हैं।

न भाग लाभो भागिनो निर्भागत्वश्रुतेः ।५/७३।

प्रकृति पुरुष का कोई अवयव नहीं है, क्योंकि श्रुति में इन्हें निरवयव कहा गया है।

नानन्दाभिव्यक्तिर्मु क्तिर्निर्धर्म(क) त्वात् ।५/७४।

पुरुष का कोई धर्म (लक्षण) नहीं है, अत: आनन्दरूप धर्म की अभिव्यक्ति को मुक्ति नहीं कह सकते।

न विशेषगुणोच्छित्तिस्तद्वत् ।५/७५।

आत्मा के असाधारण गुणों का उच्छेद भी मुक्ति नहीं कह सकते, क्योंकि आत्मा में स्वरूपगत कोई गुण(धर्म) नहीं है।

न विशेषगतिर्निष्क्रियस्य ।५/७६।

विशेष गति (ब्रह्म आदि लोकों में गति या प्रकृतिलय) भी मोक्ष नहीं है, क्योंकि गति जड़ प्रकृति की होती है, निष्क्रिय आत्मा की नहीं।

नाकारोपरागोच्छित्तिः क्षणिकत्वादिदोषात् ।५/७७।

क्षणिक विज्ञान रूप आत्मा के विषय संस्कार का नाश मात्र मोक्ष नहीं है, क्योंकि

इस मत में क्षणिकत्व आदि दोष होते हैं।

न सर्वोच्छित्तिरपुरुषार्थत्वादिदोषात् ।५/७८।

ज्ञानरूप आत्मा का पूर्ण उच्छेद मोक्ष नहीं है, क्योंकि इस में अपुरुषार्थत्व दोष है।

एवं शून्यमपि ।५/७९।

(पूर्व युक्ति से) अभावरूपी शून्य अवस्था भी मोक्ष नहीं है (आत्मनाशरूप अभाव परम पुरुषार्थ नहीं हो सकता)।

संयोगाश्च वियोगान्ता इति न देशादिलाभोऽपि ।५/८०।

संयोग होने से वियोग भी होता है, अत देश आदि की प्राप्ति विशेष है, नित्य मोक्ष नहीं हो सकता।

न भागियोगो ऽभागस्य ।५/८१।

जीव अंश है। वह अंशी ईश्वर में लीन हो जाता है। अपना लय पुरुषार्थ नहीं हो सकता तथा यह संयोग है, अतः वियोग भी होगा।

नाऽणिमादियोगोऽप्यवश्यम्भावित्वात् तदुच्छित्तेरितरवियोगवत् ।५/८२।

अणिमा, महिमा आदि विभूति की प्राप्ति भी मोक्ष नहीं है। विभूति त्रिगुण से उत्पन्न होने के कारण उसका उच्छेद होना अवश्यम्भावी है। अन्य प्रकार का संयोग जैसे नष्ट हो जाता है, विभूति संयोग भी वैसे ही नष्ट हो जाता है।

नेन्द्रादिपदयोगोऽपि तद्वत् ।५/८३।

इन्द्रादि पदों की प्राप्ति भी मोक्ष नहीं है, ये ऐश्वर्य मात्र हैं, अतः नश्वर हैं।

न भूतप्रकृतित्वमिन्द्रियाणामाहङ्कारिकत्वश्रुतेः ।५/८४।

इन्द्रियों की प्रकृति (उपादान कारण) पञ्चभूत नहीं हो सकती क्योंकि श्रुति में कहा गया है कि इन्द्रियों का उपादान अहङ्कार है।

न षट् पदार्थनियमस्तद्बोधान्मुक्तिः ।५/८५।

वैशेषिक सम्मत द्रव्य, गुण, कर्म आदि ६ पदार्थ हैं। पर इनके बोध से मुक्ति नहीं होती।

षोडशादिष्वप्येवम् ।५/८६।

न्याय शास्त्र के १६ पदार्थों (प्रमाण, प्रमेय आदि) के ज्ञान से भी मुक्ति नहीं होती। पाशुपत शास्त्र का भी मुक्ति-सम्बन्धी मत भी इसी प्रकार खण्डित होता है।

नाणुनित्यता तत्कार्यत्वश्रुतेः ।५/८७।

न्याय-वैशेषिक सम्मत अणु नित्य नहीं है, क्योंकि श्रुति में उसे कार्य कहा है।

न (तद्)निर्भागत्वं कार्यत्वात्।५/८८।

अणु (परमाणु) को निरवयव माना जाता है, पर वह कार्य होने के कारण उसमें अवयव अवश्य होगा।

न रूप निबन्धनात् प्रत्यक्ष(त्व) नियमः।५/८९।

ऐसा कोई नियम नहीं है कि रूप द्वारा ही प्रत्यक्ष हो, उसका बाहरी धर्म आदि द्वारा भी साक्षात्कार होता है।

न परिमाणचातुर्विध्यं द्वाभ्यां तद्योगात्।५/९०।

अणु, महत्, ह्रस्व, दीर्घ-इन ४ को ही परिमाण कहना अनावश्यक है। अणु और महत्-इन दो में भी बाकी दो को भी गिना जा सकता है।

अनित्यत्वेऽपि स्थिरतायोगात् प्रत्यभिज्ञानं सामान्यस्य।५/९१।

व्यक्ति अस्थिर होने पर भी उसका जो आभास (प्रत्यभिज्ञा) होता है, वह सामान्य की सत्ता के कारण होता है।

न तदपलापस्तस्मात्।५/९२।

प्रत्यभिज्ञा होने के कारण सामान्य का अपलाप नहीं किया जा सकता। अनेक वस्तुओं में एक गुण होने के कारण जो एकता दीखती है, उसे सामान्य कहते हैं।

नान्यनिवृत्तिरूपत्वं भावप्रतीतेः।५/९३।

सामान्य अन्य-निवृत्ति रूप नहीं है, क्योंकि भावरूप में उसका बोध होता है। यही कारण है कि -यह अघट नहीं है- ऐसा बोध नहीं होता।

न तत्त्वान्तरं सादृश्यं प्रत्यक्षोपलब्धेः।५/९४।

अनेक अवयवों में जो समानता प्रत्यक्ष दीखती है, उसे सादृश्य कहते हैं। वह कोई अलग तत्त्व नहीं है, अवयवों की समानता मात्र है।

निजशक्त्याभिव्यक्तिर्वा वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेः।५/९५।

अपनी शक्ति प्रकट करना भी सादृश्य नहीं है, सादृश्य उससे विलक्षण है।

न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽपि।५/९६।

संज्ञा (नाम) और संज्ञी (नाम वाच्य अर्थ) का सम्बन्ध भी सादृश्य नहीं है। जो संज्ञा-संज्ञि-सम्बन्ध को नहीं जानता है, उसे भी सादृश्य का ज्ञान होता है।

न सम्बन्धनित्यतोभयानित्यत्वात्।५/९७।

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य नहीं है, क्योंकि संज्ञा-संज्ञी दोनों अनित्य हैं।

नातः(जः) सम्बन्धो धर्मिग्राहक मान(प्रमाण) बाधात्।५/९८।

सम्बन्ध-ग्राहक प्रमाण के विरोध के कारण सम्बन्ध को नित्य नहीं मान सकते।

न समवायोऽस्ति प्रमाणाभावात्।५/९९।

न्याय-वैशेषिक में अवयव-अवयवी, गुण-गुणी आदि में नित्य सम्बन्ध को समवाय सम्बन्ध कहते हैं। इसकी सत्ता का प्रमाण नहीं होने के कारण समवाय भी नित्य सम्बन्ध नहीं है।

उभयत्राप्यन्यथासिद्धेर्न प्रत्यक्षमनुमाने (नं) वा।५/१००।

विशिष्ट गुण दीखने या अनुमान से समवाय सिद्ध नहीं होता। स्वरूप सम्बन्ध से ही इसे सिद्ध किया जा सकता है।

नानुमेयत्वमेव क्रियाया नेदिष्ठस्य तत्तद्वतोरेवापरोक्षप्रतीतेः।५/१०१।

क्रिया सिर्फ अनुमेय नहीं होती, उसका प्रत्यक्ष भी होता है। क्रिया तथा उसका आधार-दोनों निकट के व्यक्ति को प्रत्यक्ष ज्ञात होते हैं।

न पाञ्चभौतिक शरीरं बहू नामुपादानायोगात्।५/१०२।

स्थूल शरीर पञ्चभूत निर्मित नहीं हो सकता, क्योंकि अनेक विजातीय द्रव्य एक वस्तु का उपादान नहीं हो सकते। अतः पृथिवी को ही स्थूल शरीर का उपादान मान सकते हैं, बाकी अप् आदि भूत उपष्टम्भक(सहायक) रूप में रहते हैं।

न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात्।५/१०३।

स्थूल शरीर के अतिरिक्त अन्य शरीर भी श्रुति तथा युक्ति से सिद्ध हैं, जैसे अतिवाहिक शरीर।

नाप्राप्तप्रकाशकत्वमिन्द्रियाणामप्राप्तेः सर्वप्राप्तेर्वा।५/१०४।

विषय से सम्बद्ध होने पर ही इन्द्रियां उसे प्रकाशित करती हैं, वे अप्राप्त को प्रकाशित नहीं कर सकतीं। यदि वह अप्राप्त को प्रकाशित करतीं तो सदा दूर तथा व्यवहित वस्तु को प्रकट करतीं। इन्द्रियां गोलक के अतिरिक्त हैं। प्रकाशकत्व का अर्थ है पुरुष में अर्थ समर्पण या विषयों का प्रतिबिम्ब ग्रहण।

न तेजोऽपसर्पणात् तैजसं चक्षुर्वृ त्तितस्तत्सिद्धेः।५/१०५।

तेज पदार्थ के अपसर्पण को देखकर चक्षु इन्द्रिय को तैजस नहीं समझना चाहिये। प्राण की सञ्चरणशील वृत्ति की तरह चक्षु देह में रहकर भी दूरस्थ सूर्य आदि के प्रति अपसरण(अनुभव) कर सकता है।

प्राप्तार्थप्रकाशलिङ्गाद् वृत्ति सिद्धिः।५/१०६।

प्राप्त (सम्बद्ध) वस्तु को प्रकाशित करने से चक्षु की पूर्वोक्त वृत्ति सिद्ध होती है।

भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः सम्बन्धार्थं सर्पतीति।५/१०७।

वृत्ति न इन्द्रियों का अंश है न ख्यति की तरह गुण है। वृत्ति इन्द्रिय का परिणाम है, अत: उसी में स्थित है। वह सम्बद्ध विषय की तरफ जाता है और विषय में लिप्त होता है। वृत्ति प्रसर्पण-क्रिया-योगिनी है तथा वह द्रव्यरूप है।

न द्रव्य(व्ये) नियमस्तद्योगात्।५/१०८।

वृत्ति का अर्थ सिर्फ द्रव्य नहीं होता। आजीविका कर्म भी वृत्ति हैं। वृत्तियों से चित्त व्यक्त होता है, अत: वह वृत्ति कहलाता है।

न देशभेदेऽप्यन्योपादानताऽस्मदादिवन्नियमः।५/१०९।

यद्यपिलोक तथा प्राणी(तथा उनकी इन्द्रियां)विलक्षण प्रकार केहैं,तथापि उन सभी का उपादान एक अस्मिता ही है, पृथिवी आदि भूत इन्द्रियों के उपादान नहीं हैं।

निमित्त व्यपदेशात्तद् व्यपदेशः।५/११०।

चक्षु आदि इन्द्रियां अहङ्कार से ही होती हैं,(तेज आदि)भूत उसके निमित्तमात्र हैं।

ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जसाङ्कल्पिकसांसिद्धिकं चेति न नियमः।५/१११।

ऊष्मज (दन्दशूक आदि), अण्डज (पक्षी-सर्प आदि), जरायुज (मनुष्य आदि), उद्भिज्ज(वृक्ष आदि), सङ्कल्पज (सनक आदि) और सांसिद्धिक (मन्त्र, तप, आदि सिद्धि जात) शरीर असिद्ध हैं, इनके विलक्षण शरीर भी हो सकते हैं।

सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात् तद्व्यपदेशः पूर्ववत्।५/११२।

सभी प्रकार के शरीरों में पृथिवी ही उपादान है क्योंकि वही असाधारण रूप से उसमें रहती है। अन्य भूतों का समावेश उपष्टम्भ रूप से है।

न देहारम्भकस्य प्राणत्वमिन्द्रियशक्तितस्तत्सिद्धेः।५/११३।

देह के आरम्भक तत्त्व कर्णवृत्तिरूप प्राण नहीं हैं। प्राण इन्द्रिय शक्ति से उत्पन्न है।

भोक्तुरधिष्ठानाद्भोगायतननिर्माणमन्यथा पूतिभावप्रसङ्गात् (प्रसक्तेः)५/११४।

प्राणी रूप भोक्ता पुरुष के अधिष्ठान से भोगायतन (सुख-दु:ख रूप भोग जिसके रहने से होता है-शरीर) का निर्माण होता है। प्राणी का अधिष्ठान यदि न हो तो गर्भ में शुक्र-शोणित आदि सड़ जाते हैं (पूतिभाव)।

भृत्यद्वारा स्वाम्यधिष्ठितिर्नै कान्तात्।५/११५।

देह निर्माण में स्वामी पुरुष रूप निर्गुण चेतन को कोई योग नहीं है। वह प्राण का मुख्य कार्य है। पुरुष प्राण-सहयोग द्वारा ही अधिष्ठाता है।

समाधि सुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता।५/११६।

सुषुप्ति, समाधि (असम्प्रज्ञात) एवं मोक्ष-इन तीन अवस्थाओं में पुरुष पूरी तरह अपने मूल रूप में रहता है। ऐसी स्थिति ब्रह्मरूपता कहलाती है।

द्वयोः सबीजमन्य-त्र (स्य) तद्धतिः।५/११७।

समाधि और सुषुप्ति अवस्था में ब्रह्मरूप पुरुष सजीव अर्थात् बन्ध-जीवन सहित रहता है, पर मोक्षावस्था में उस बीज का अभाव हो जाता है। सुषुप्ति-समाधि में बन्धबीज रूप कर्म आदि उपाधि में ही रहते हैं।

द्वयोरपि त्रयस्यापि दृष्टत्वान्न तु द्वौ।५/११८।

जिस प्रकार समाधि और सुषुप्तिरूप दो अवस्थायें हैं, उसी प्रकार मोक्षरूप तृतीय भी है। युक्ति और शास्त्र से मोक्ष प्रमाणित होता है।

वासनया न स्वार्थ ख्यापनं दोष योगेऽपि, न निमित्तस्य प्रधान बाधकत्वम्।५/११९।

सुषुप्तिकाल में संसार की प्रबल वासना रहती है, पर वह तम से छिपी रहती है, अतः वह वासना विषय का स्मरण नहीं दिलाती। प्रायः बली अवस्था में विषय-वासना कुण्ठित रहती है।

एकः संस्कारः क्रिया निर्वर्तको न तु प्रतिक्रियं संस्कार भेदा बहु कल्पना प्रसक्तेः। ५/१२०।

जिस संस्कार से शरीर भोग आरम्भ हुआ है, उसी से प्रारब्ध भोग समाप्त भी होता है। भोग समाप्ति से संस्कार का नाश होता है। प्रत्येक भोगक्रिया से संस्कार का नानात्व नहीं होता। कुलालचक्र भ्रमण में एक ही वेगरूप संस्कार समाप्ति पर्यन्त स्थायी रहता है।

न बाह्यबुद्धिनियमो(विकल्प से पृथक् सूत्र ५/१२१**) वृक्ष गुल्म लतौषधि वनस्पति तृण वीरुधादीनामपि भोक्तृ भोगायतनत्वं पूर्ववत्।५/१२१।(१२२)**

सभी जीवों में बाह्यविषयक ज्ञान नहीं होता, जैसे वृक्ष, गुल्म, लता, औषधि, वनस्पति, तृण और लता के देह भी भोगायतन हैं , पर वे अन्तःसंज्ञक हैं।

स्मृतेश्च।५/१२२।(१२३)

स्मृति से भी ज्ञात होता है कि वृक्ष आदि भी भोक्ता प्राणी के भोगायतन रूप हैं।

न देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं वैशिष्ट्यश्रुतेः।५/१२३।(१२४)

जीव के देहमात्र के कारण उसका धर्माधिकार नहीं मान सकते, क्योंकि शास्त्र में विशिष्ट देह का ही कर्माधिकार(अमुक काम के लिये अमुक वर्ण आश्रम का मानव

अधिकृत है) माना गया है।

त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः।५/१२४।(१२५)

देह तीन प्रकार के हैं- उत्तम, मध्यम, अधम। यथा कर्मदेह परमर्षियों का, उपभोग देह इन्द्र आदि देवों का, उभय प्रकार का देह राजर्षियों का।

न किञ्चिदप्यनुशयिनः।५/१२५।(१२६)

अनुशयी (तीव्र वैराग्यवान्) का देह इन तीन प्रकारों में नहीं आता।

न बुद्ध्यादिनित्यत्वमाश्रयविशेषेऽपि वह्निवत्।५/१२६।(१२७)

(वृत्ति मत) मनुष्य की बुद्धि अनित्य है, पर महा सत्त्वशाली ईश्वर की बुद्धि को भी नित्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जैसे चन्दन की आग भी गर्म ही होती है, उसी प्रकार ईश्वर आश्रित ज्ञान भी त्रिगुण के कारण अनित्य ही होगा।

आश्रयासिद्धेश्च।५/१२७।(१२८)

नित्यज्ञान का आश्रयभूत ईश्वर उपाधि प्रमाण से नहीं सिद्ध होता।

योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः।५/१२८।(१२९)

जिस प्रकार ओषधि आदि सिद्धयों का अपलाप(निन्दा) नहीं किया जा सकता,उसी प्रकार योगज सिद्धियों का भी अपलाप नहीं किया जा सकता।

न भूतचैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः सांहत्येऽपि च सांहत्येऽपि च।५/१२९।(१३०)

चूंकि प्रत्येक भूत में चैतन्य नहीं है, अत:भूतों के संघात में भी चैतन्य नहीं है।

अध्याय ६

अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात्।६/१।

ज्ञातृत्व के कारण रूप में आत्मा का अस्तित्व सामान्यत: सिद्ध होता है। ज्ञाता को आत्मा नहीं सिद्ध कर सकते, क्योंकि सिद्धि करने वाला स्वयं एक ज्ञाता है।

देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात्।६/२।

ज्ञातारूपी आत्मा देह आदि पदार्थों से अलग है,क्योंकि देह,मन,बुद्धि आदि परिणामी, परप्रकाश्य और जड़ है,तथा आत्मा अपरिणामी, स्वप्रकाश एव चेतन है।

षष्ठीव्यपदेशापि।६/३।

बिलकुल अभेद रहने पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग नहीं होता। मेरा शरीर, मेरी बुद्धि आदि में जो षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है उससे भी देह आदि से विलक्षण आत्मा की सिद्धि होती है।

न शिलापुत्रवद्धर्मिग्राहकमानबाधात्।६/४।

शिलापुत्र (लोढ़ा) का देह (आकृति)-इस प्रयोग में एक ही पदार्थ में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है, उसी प्रकार मेरा मन, मेरा शरीर आदि कहने से भी मैं(आत्मा) और देह आदि का एकत्व माना जा सकता है। इस शंका का उत्तर है कि शिलापुत्र में भी दोनों की एकता भी भेदपूर्वक ही कही गयी है।

अत्यन्तदु:खनिवृत्त्या कृतकृत्यता।६/५।

दु:ख की अत्यन्त निवृत्ति होने पर ही कृतकृत्यता होती है।

यथा दु:खात् क्लेश: पुरुषस्य न तथा सुखादभिलाष:।६/६।

दु:क के प्रति लोगों का जैसा तीव्र द्वेष होता है, सुख के लिये वैसी उत्कट अभिलाषा नहीं होती। दु:ख निवृत्ति की इच्छा, सुख प्राप्ति की इच्छा से बलवती है।

कुत्राऽपि कोऽपि सुखीति।६/७।

प्राणियों में शायद ही कहीं कोई सुखी दिखायी पड़ता है।

तदपि दु:खशबलमिति दु:खपक्षे नि:क्षिपन्ते विवेचका:६/८।

वैषयिक सुख भी दु:ख से मिला रहता है, अत: विवेकी व्यक्ति उस सुख को भी दु:ख पक्ष में ही मानते हैं।

सुखलाभाभावादपुरुषार्थत्वमिति चेन्न (एवं) द्वैविध्यात्।६/९।

यह कहना ठीक नहीं है कि केवल दु:ख निवारण ही पुरुषार्थ नहीं है, क्योंकि उसमें सुख की प्राप्ति नहीं होती। दो पुरषार्थ माने जाते हैं-सुखी होना, दु:खी न होना।

निर्गुणत्वमात्मनोऽसङ्गत्वादिश्रुते:।६/१०।

श्रुति में आत्मा को असङ्ग कहा गया है, अत: आत्मा निर्गुण है।

परधर्मत्वेऽपि तत्सिद्धिरविवेकात्।६/११।

सुख-दु:ख आदि गुण चित्त के धर्म हैं, पर आत्मा मेंउनका अवस्थान (प्रतिबिम्ब रूप में) माना जाता है। अविवेक के कारण यह विपर्यय ज्ञान होता है।

अनादिरविवेकोऽन्यथा दोषद्वय प्रसक्ते:।६/१२।

संयोग जिस अविवेक के कारण है, उसका अनादि प्रवाह है। यदि अविवेक का आरम्भ माना जाय तो उसकी स्वत: उत्पत्ति माननी होगी, जिससे मुक्त का भी बन्धन होगा। यदि अविवेक को कर्म द्वारा उत्पन्न माना जाय तो कर्म आदि का कारण अविवेक के अतिरिक्त कुछ और मानना होगा।

न नित्य: स्यादात्मवदन्यथानुच्छिति:।६/१३।

अविवेक अनदि होने पर भी आत्मा की तरह नित्य नहीं है, अन्यथा उसका उच्छेद

नहीं होता। अविवेक प्रवाह रूप में अनादि है।

प्रतिनियतकारणनाश्यत्वमस्य ध्वान्तवत्।६/१४।

बन्ध का कारण अविवेक निश्चित हेतु (विवेक) द्वारा नष्ट होता है, जैसे अन्धकार आलोक द्वारा निश्चित रूप से नष्ट होता है।

अत्रापि प्रतिनियमोऽन्वयव्यतिरेकात्।६/१५।

अन्वय व्यतिरेक द्वारा यह ज्ञात होता है कि विवेक के भी निश्चित कारण हैं- श्रवण-मनन-निदिध्यासन आदि।

प्रकारान्तासम्भवादविवेक एव बन्धः।६/१६।

बन्ध का हेतु अविवेक ही है, अन्य कुछ नहीं हो सकता।

न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्तिश्रुतेः।६/१७।

मुक्त पुरुष का पुनः बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि श्रुति में मुक्त पुरुष की अनावृत्ति कही गयी है।

अपुरुषार्थत्वमन्यथा।६/१८।

यदि मुक्त पुरुष का भी बन्धन माना जाय तो मुक्ति को पुरुषार्थ मानना व्यर्थ होगा।जिस प्रकार प्रलय में जीव दुःखशून्य होने पर भी उसका संसरण होने के कारण उसे पुरुषार्थ नहीं मानते, उसी प्रकार मोक्ष की भी यदि पुनरावृत्ति हो तो उसे पुरुषार्थ नहीं मान सकते।

अविशेषापत्तिरुभयोः।६/१९।

पुनरावृत्ति मानने पर आगामी काल में बन्धन हो जायगा- इस कारण बद्ध और मुक्त अवस्थायें समान हो जायेंगी।

मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्न परः।६/२०।

मुक्ति वस्तुतः किसी अप्राप्त अवस्था की उपलब्धि नहीं है, अन्तरायों का नाश होना ही मुक्ति है।(बद्ध अवस्था में) आत्मा का दुःख प्रतिबिम्ब आवरक रूप विघ्न है। बुद्धिरूप उपाधि के न रहने पर आत्मा अपने रूप में आती है।

तत्राप्यविरोधः।६/२१।

पुरुष की दृष्टि में बन्धन और मोक्ष वास्तविक नहीं हैं, अतः अन्तराय-ध्वंस रूप मुक्ति पुरुषार्थ नहीं है-ऐसा नहीं माना जा सकता। प्रतिबिम्ब रूप में दुःख-भोग भी वास्तविक है, अतः दुःख-निवृत्ति सचमुच पुरुषार्थ है।

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः।६/२२।

मुक्ति यद्यपि बन्धन-ध्वंस मात्र है, पर श्रवण मात्र से मोक्ष आदि की सिद्धि नहीं होती, क्योंकि मोक्षाधिकारी के अलग अलग प्रकार हैं-उत्तम,मध्यम, अधम।

दार्ढ्यार्थमुत्तरेषाम्।६/२३।

आत्मज्ञान सम्बन्धी श्रवण के बाद मनन-ध्यान भी करना पड़ता है, क्योंकि इस क्रम द्वारा ही अन्तराय का ध्वंस दृढ़ होता है।

स्थिरसुखमासनमिति न नियमः।६/२४।

पद्म आदि आसनों में ही बैठना जरूरी नहीं है। जिस आसन में बैठने से सात्त्विक प्रसन्नता और स्थिरता का बोध हो वही आसन समझना चाहिये।

ध्यानं निर्विषयं मनः।६/२५।

अन्त:करण (मन) का विषयशून्य होना ध्यान (चित्तवृत्ति निरोध रूप योग) कहा जाता है।

उभयथाप्यविशेषश्चेन्नैवमुपरागनिरोधाद्विशेषः।६/२६।

यद्यपि योग और संसार-इन दोनों अवस्थाओं में पुरुष का रूप एक ही है, तथापि योग अवस्था में वृत्ति प्रतिबिम्ब दूर होता है, जो अन्य अवस्था में नहीं होता।

निःसङ्गेऽप्युपरागोऽविवेकात्।६/२६७।

परमार्थतः निःसङ्ग पुरुष उपराग-शून्य है, पर अविवेक से उसमें उपराग दीखता है।

जपा-स्फटिकयोरिव नोपरागः किन्त्वभिमानः।६/२८।

यह उपराग (पुरुष में बुद्धि धर्म का आरोप) वास्तविक नहीं है। जिस प्रकार स्फटिक के पास जपा पुष्प रहने पर उसमें रंग प्रतिबिम्बित होता है । बिना रंग के भी उसका रंग होना दीखता है। उसी प्रकार पुरुष में बुद्धि का प्रतिबिम्ब होने के कारण भ्रम से पुरुष को बुद्धि वाला समझा जाता है।

ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभिस्तन्निरोधः।६/२९।

इस उपराग का निरोध ध्यान, धारणा, अभ्यास और वैराग्य आदि से होता है।

लयविक्षेपयोर्व्यावृत्त्येत्याचार्याः।६/३०।

आचार्य कहते हैं कि ध्यान आदि से लय (निद्रावृत्ति) और विक्षेप (प्रमाण आदि वृत्तियों) का निरोध करना चाहिये। इससे वृत्तियों का उपराग होता है। यह असम्प्रज्ञात समाधि है, जिसमें मोक्ष के अन्तरायों का ध्वंस होता है।

न स्थाननियमश्चित्तप्रसादात्।६/३१।

ध्यान के लिये गुहा आदि स्थान जरूरी नहीं है। जहां भी चित्त प्रसन्न और स्थिर रहे

वहीं ध्यान का अभ्यास हो सकता है।

प्रकृतेराद्योपादानताऽन्येषां कार्यत्व श्रुतेः।६/३२।

श्रुति में कहा गया है कि महत्, अहङ्कार, तन्मात्र आदि सभी कार्य हैं, अतः प्रकृति ही मूल उपादान है। अन्य शास्त्रों में अणु आदि की कार्यता भी मानी गयी है।

नित्यत्वेऽपि नात्मनो योग्यत्वाभावात्।६/३३।

पुरुष (आत्मा) नित्य और अपरिणामी है; अतः उपादान कारण नहीं हो सकता। सगुण और सङ्ग योग्य वस्तु ही उपादान हो सकती है।

श्रुतिविरोधान्न कुतर्कापसदस्यात्मलाभः।६/३४।

कुतर्क द्वारा यह मानना कि निर्गुण असंग, अपरिणामी पुरुष जगत् का उपादान है, श्रुति मत (जगत् का उपादान प्रकृति है) का विरोध करता है।

पारम्पर्येऽपि प्रधानानुवृत्तिरणुवत्।६/३५।

भौतिक, भूत आदि सभी पदार्थों का उपादान कारण प्रकृति (प्रधान) है, पर वह साक्षात् कारण नहीं है(भौतिक का कारण भूत, भूत का तन्मात्र, तन्मात्र का अस्मिता, अस्मिता का बुद्धितत्त्व या महत् , और महत् का कारण प्रकृति है) परमाणुवादी की दृष्टि में परमाणु जिस प्रकार परम्परा-क्रम से अन्तिम कारण है, उसी प्रकार यहां भी प्रकृति अन्तिम कारण है।

सर्वत्र कार्यदर्शनाद्विभुत्वम्।६/३६।

सभी देश और काल में प्रकृति ही कार्यरूप में विद्यमान है, अतः प्रकृति सर्वव्यापिनी और पूर्ण है।

गतियोगेऽप्याद्यकारणताहानिरणुवत्।६/३७।

प्रकृति में क्षोभरूप क्रिया होती है (गतियोग)। इस क्रिया के रहने पर भी उसकी आद्यकारणता (चरम उपादान कारण) समाप्त नहीं होती। जिस प्रकार अणु में क्रिया होने पर भी वैशेषिक उसकी चरम कारणता मानते हैं, वैसे ही यहां है।

प्रसिद्धाधिक्यं प्रधानस्य न नियमः।६/३८।

लोक में सुविख्यात पदार्थों (यथा वैशेषिक सम्मत द्रव्यादि पदार्थ) में प्रधान का अन्तर्भाव नहीं है, अतः उसे अनुपस्थित नहीं मान सकते। पदार्थ व्याख्या सम्बन्धी विभिन्न सम्प्रदायों के मत अखण्डनीय नहीं हैं।

सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात्।६/३९।

सत्त्व, रज,तम रूप ३ गुण(रज्जु, ये द्रव्य हैं),प्रकृति के धर्म नहीं,उसके स्वरूप हैं।

अनुपभोगेऽपि पुमर्थः सृष्टिः प्र धा नस्यो ष्ट्र कुङ्कुमवहनवत्।६/४०।

प्रकृति की सृष्टि अपने भोग के लिये नहीं, बल्कि पुरुष के लिये(भोग और अपवर्ग) है, जैसे उष्ट्र किसी अन्य के लिये कुङ्कुम का वहन करता है।

कर्म वैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्।६/४१।

कर्म (धर्म-अधर्म) के वैचित्र्य के अनुसार सृष्टि का वैचित्र्य होता है।

साम्य वैषम्याभ्यां कार्य द्वयम्।६/४२।

प्रकृति की साम्यावस्था होने पर प्रलय और वैषम्यावस्था(गुणों का कम-ज्यादा भाव में स्थिति) होने पर सृष्टि होती है। सृष्टि प्रलय की मध्य अवस्था भी सृष्टि में ही गिनी जायगी ।

विमुक्तबोधान्न सृष्टिः प्रधानस्य लोकवत्।६/४३।

पुरुष के लिये तत्त्वनिर्माण के बाद प्रधान सृष्टि बन्द कर देता है, जैसे अमात्य आदि राजा का काम समाप्त होने पर काम बन्द कर देते हैं।

नान्यो पसर्पणेऽपि मुक्तो पभोगो निमित्ता भावात्।६/४४।

बद्ध पुरुषों के प्रति प्रधान की प्रवृत्ति रहने पर भी मुक्त के प्रति प्रधान अप्रवृत्त ही रहता है, क्योंकि प्रवृत्ति के साधन (अविवेक आदि) का अभाव हो जाता है।

पुरुष बहु त्वं व्यवस्थातः।६/४५।

बन्ध-मोक्ष की व्यवस्था के लिये पुरुष को बहुसंख्यक मानना पड़ता है।

उपाधिश्चेत् तत्सिद्धौ पुनर्द्वैतम्। ६/४६।

पुरुष एक है और उपाधियों की अनेकता के कारण बहुजीवरूप में दीखता है-इस रूप से पुरुष का एकत्व नहीं सिद्ध हो सकता, क्योंकि उपाधि की भी सत्ता माननी पड़ेगी, जिससे द्वैतापत्ति होगी।

द्वाभ्यामपि प्रमाणविरोधः।६/४७।

उपाधि को अविद्यामय मानने पर भी पुरुष और अविद्या रूप दो सत् पदार्थों को मानना पड़ेगा, अतः अद्वैत भाव के प्रतिपादक श्रुति वचन से विरोध होगा।

द्वाभ्यामप्यविरोधान्न पूर्वमुत्तरं च साध का भावात्।६/४८।

आत्मा और अविद्या की सत्ता मानने पर एकात्मवादी का पक्ष कट जाता है। अद्वैतवादी को एक आत्मा के अतिरिक्त आत्मसाधक स्वतन्त्र प्रमाण की सत्ता माननी पड़ती है। इस प्रमाण की सत्ता नहीं मानने पर एकात्मवाद प्रमाणित नहीं होगा।

प्रकाशतत्सिद्धौ कर्मकर्तृ विरोधः।६/४९।

अपने प्रकाश से आत्मा की सत्ता सिद्ध करने पर कर्म-कर्त्ता एक ही मानना पड़ेगा। जो प्रकाशक है उसी को प्रकाश्य मानना पड़ेगा जो ठीक नहीं है।

जड़व्यावृत्तो जड़ं प्रकाशयति चिद्रूप:।६/५०।

चेतन के जिस प्रकाशरूप धर्म का उल्लेख पूर्व सूत्र में है, वह चित् स्वरूप है, जो जड का प्रकाशक है (पुरुष बिना धर्म का है)। सूर्य आदि के प्रकाश की तरह यह नहीं है।

न श्रुतिविरोधो रागिणां वैराग्याय तत्सि (द्धेः) द्धम्।६/५१।

चित्-जड़-रूप दो मूल पदार्थ सिद्ध करना श्रुति के अद्वैत के साथ कोई विरोध नहीं है। सराग पुरुषों में में वैराग्य उत्पन्न करने के लिये कहा गया है कि आत्मा के अतिरिक्त अन्य पदार्थों में भी आत्मा है।

जगत्सत्यत्वमदुष्टकारणजन्यत्वाद् बाधकाभावात्।६/५२।

यह अनुभव सिद्ध जगत् सत्य है। (रस्सी में सांप दीखने जैसा भ्रम नहीं है)। क्योंकि जगत् अदुष्टकारण से उत्पन्न है। प्रपञ्च से इसकी उत्पत्ति के विरोध में कोई प्रमाण नहीं है।

प्रकारान्तरसम्भवात् सदुत्पत्तिः।६/५३।

चूंकि अन्य कोई प्रकार सम्भव नहीं है, अत: यह मानना पड़ता है कि सत् से सत् की उत्पत्ति होती है , अर्थात् कार्य अपने कारण में सूक्ष्म रूप से तथा व्यापार में व्यक्त रूप से रहता है।

अहङ्कारः कर्त्ता न पुरुषः।६/५४।

(अभिमान के बाद ही प्रवृत्ति देखी जाती है), अत: (इस वृत्ति का अन्त:करण) अहङ्कार ही कर्त्ता है, निर्गुण पुरुष नहीं।

चिदवसाना भुक्तिस्तत्कर्मा र्जितत्वात्।६/५५।

अहङ्कार कर्त्ता होने पर भी भोग का अवसान चिदात्मा में होता है। भोग बुद्धि द्वारा होता है, पर उसका आधार चिद्रूप पुरुष है। अहङ्कार द्वारा यह भोग अर्जित होता है, अहङ्कार के रोध से भोग की भी निवृत्ति हो जाती है।

चन्द्रादिलोकेऽप्यावृत्तिर्नि मित्तसद् भावात्।६/५६।

कर्म के बल से चन्द्र आदि लोकों की प्राप्ति के बाद भी आवृत्ति (पुनर्जन्म) हो सकती है, क्योंकि जन्म का कारण अविवेक तथा कर्म-संस्कार चित्त में रह जाते है।

लोकस्य नोपदेशात् सिद्धः पूर्ववत्।६/५७।

मनुष्यलोक में जिस प्रकार उपदेश से सिद्धि नहीं हाती, उसी प्रकार चन्द्र आदि लोकों में भी उपदेशमात्र से सिद्धि नहीं होती।

पारम्पर्येण तत्सिद्धौ विमुक्ति श्रुतिः।६/५८।

ब्रह्मलोक आदि में जाकर यदि कोई श्रवण मनन आद पूर्वक अभ्यास करे तो उससे मुक्ति होती है-यह श्रुति में कहा है। ब्रह्मलोक गमन मात्र से मुक्ति नहीं होती।

गति श्रुतेश्च व्यापकत्वेऽप्युपाधियोगाद्भोगदेशकाललाभो व्योमवत्।६/५९।

आत्मा व्यापक है, उसकी गति के बारे में शास्त्र आत्मा की उपाधि के बारे में ही कहते हैं। जैसे आकाश सर्वव्यापी होन पर भी घट आदि उपाधि से योग होने पर घटाकाश का गमन कहा जाता है, उसी प्रकार आत्माका गमन है।

अनधिष्ठितस्य पूतिभाव प्रसङ्गान्न तत्सिद्धिः।६/६०।

भोक्त का आधार न रहने पर शुक्र-शोणितमय शरीर गल जाता है, अतः अनधिष्ठित शुक्र आदि से भोगायतन देह का निर्माण नहीं हो सकता। (अतः पहले देह, फिर उसका आत्मा द्वारा अधिष्ठान नहीं हो सकता)।

अदृष्टद्वारा चेदसम्बद्धस्य तदसम्भवाज्जलादिवदङ्कुरे।६/६१।

देह उत्पन्न होने के बाद आत्मा का अधिष्ठान तथा अदृष्ट द्वारा देहबीज संरक्षित रहना नहीं कहा जा सकता है। जिस प्रकार जल निराश्रय अङ्कुर उत्पन्न नहीं कर सकता (बीज के साथ सम्बन्ध आवश्यक है), उसी प्रकार अदृष्ट भी निराश्रय (देह बीज के बिना) होकर कोई कार्य नहीं कर सकता।

निर्गुणत्वात् तदसम्भवादहङ्कारधर्मा ह्येते।६/६२।

अदृष्ट आदि अहङ्कार के ही धर्म हं। भोक्त पुरुष निर्गुण है, अतः उसके साथ धर्म-अधर्म रूप अदृष्ट का साक्षात् संयोग सम्भव नहीं है। पुरुष-प्रकृति संयोग अदृष्ट द्वारा नहीं है।

विशिष्टस्य जीवत्वमन्वयव्यतिरेकात्।६/६३।

जीवत्व(प्राणित्व) अहङ्कार-विशिष्ट पुरुष का धर्म है, केवल पुरुष का नहीं।

अहङ्कारकर्त्रधीना कार्यसिद्धिर्नेश्वराधीना प्रमाणाभावात्।६/६।

कार्य की सिद्धि अहङ्कार रूप कर्त्ता के अधीन है, ईश्वर के अधीन नहीं-इसका कोई प्रमाण नहीं है।

अदृष्टोद्भूतिवत् समानत्वम्।६/६५।

जिस प्रकार काल विशेष से ही सृष्टि आरम्भ केलिये प्रकृति में क्षोभ होता है, उसी

प्रकार अहङ्कार को भी काल से ही उत्पन्न मानना चाहिये। कर्त्तारूप अहङ्कार की उत्पत्ति किसी अन्य कर्त्ता से नहीं होती।

महतोऽन्यत्।६/६६।

अहङ्कार के सृष्टि आदि कार्यो के अतिरिक्त जो पालन आदि कार्य हैं, वे महत्-तत्त्व से उद्भूत होते हैं। पालक कार्य विष्णु का है, अत: वे परमेश्वर, ब्रह्मा आदि कहलाते हैं।

कर्म निमित्तः प्रकृतेः स्वस्वामिभावोऽप्यनादिबीजाङ्कुरवत्।६/६७।

जिनके मत में प्रकृति (और पुरुष) का स्व-स्वामिभाव कर्म निमित्त है, उनके मत से भी यह बीज-अङ्कुरवत् अनादि है। यदि यह आकस्मिक होता तो मुक्त भी पुन: बद्ध होते।

अविवेक निमित्तो वा पञ्चशिखः।६/६८।

यह स्व-स्वामिभाव अविवेक रूप निमित्त से उत्पन्न होता है-ऐसा पञ्चशिख का मत है। निमित्त उत्पन्न होने पर भी अविवेक अनादि है तथा प्रलय में भी वासना रूप से रहता है।

लिङ्ग शरीर निमित्तक इति सनन्दनाचार्यः।६/६९।

आचार्य सनन्दन का मत है कि स्व-स्वामिभाव (भोक्ता-भोक्तृ भाव) लिङ्ग शरीर के कारण होता है।

यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः।६/७०।

प्रकृति-पुरुष का यह भोग्य-भोक्तृ-भाव चाहे कर्म-निमित्त हो, या अविवेक निमित्त, इसका जिस किसी उपाय से उच्छेद होना ही परम पुरुषार्थ है।

***

७.परिशिष्ट

१. सांख्य-सूत्र-सूची

अकर्तुरपि फलोपभोग	१/१०५	अन्त:करणस्य तदुज्ज्वलित	१/९९
अकार्यत्वेऽपि तद्योग:	३/५५	अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात्तत्	१/१५३
अचाक्षुषाणामनुमानेन	१/६०	अन्यपरत्वमविवेकानां	५/६४
अचेतनत्वेऽपि	३/५१	अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धि	२/८
अणुपरिमाणं	३/१४	अन्यसृष्ट्युपरागेऽपि	३/६६
अतिप्रसक्तिरन्यधर्मत्वे	१/५४	अपवादमात्रमबुद्धानाम्	१/४५
अतीन्द्रिमिन्द्रियम्	२/२३	अपुरुषार्थत्वमन्यथा	६/१८
अत्यन्तदु:खनिवृत्त्या	६/५	अपुरुषार्थत्वमुभयथा	१/४७
अत्रापि प्रतिनियमो	६/१५	अबाधाददुष्टकारणजन्यत्वाच्च	१/७९
अथ त्रिविधदु:खात्यन्त	१/१	अबाधे नैष्फल्यं	५/१७
अदृष्टद्वारा चेदसंबद्धस्य	६/६१	अभिमानोऽहङ्कार:	२/१६
अदृष्टवशाच्चेत्	१/३०	अर्थात्सिद्धिश्चेत्समानमुभयो:	५/२४
अदृष्टोद्भूतिवत्समानत्वम्	६/६५	अवान्तरभेदा:पूर्ववत्	३/४१
अधिकारि त्रैविध्यान्न	१/७०,६/२२	अविवेकनिमित्तको वा	६/६८
अधिकारिप्रभेदान्न	३/७६	अविवेकाद्वा तत्सिद्धे:	१/१०६
अधिष्ठानाच्चेति	१/१४२	अविशेषश्चोभयो:	१/६
अध्यवसायो बुद्धि:	२/१३	अविशेषाद्विशेषारम्भ:	३/१
अध्यस्तरूपोपासना	४/२१	अविशेषापत्तिरुभयो:	६/१९
अनधिष्ठितस्य पूति	६/६०	अव्यक्तं त्रिगुणाल्लिङ्गात्	१/१३६
अनादावद्ययावदभावात्	१/१५८	अव्यभिचारात्	२/४१
अनादिरविवेको	६/१२	अशक्तिरष्टाविंशतिधा	३/३८
अनारम्भेऽपि परगृहे	४/१२	असङ्गोऽयं पुरुष इति	१/१५
अनित्यत्वेऽपि स्थिरता	५/९१	असाधनानुचिन्तनं बन्धाय	४/८
अनियतत्वेऽपि नायौक्तिकस्य	१/२६	अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात्	६/१
अनुपभोगेऽपिपुमर्थ:सृष्टि:	६/४०	अहङ्कारकर्त्रधीना	६/६४
अन्त:करणधर्मत्वं	५/२५	अहङ्कार: कर्त्ता	६/५४

अहिनिर्ल्वयनीवत् ४/६
आञ्जस्यादभेदतो वा १/१२५
आत्मार्थत्वात्सृष्टेर्नैषा २/११
आद्यहेतुता तद्द्वारा १/७४
आधेयशक्तियोग इति ५/३२
आधेयशक्तिसिद्धौ ५/३६
आध्यात्मिकादि भेदान्नवधा ३/४३
आपेक्षिको गुणप्रधान भाव: २/४५
आप्तोपदेश: शब्द: १/१०१
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं ३/४७
आविवेकाच्च प्रवर्तनम् ३/४
आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ४/३
आवृत्तिस्तत्राप्युत्तरात्तरयो ३/५२
आश्रयासिद्धेश्च ५/१२८
आहङ्कारिकत्वश्रुतेर्न २/२०
इतरथान्धपरम्परा ३/८१
इतरलाभेऽप्यावृत्ति: ४/२२
इतरस्यापि नात्यन्तिकम् ३/२७
इदानीमिव सर्वत्र १/१५९
इन्द्रियेषु साधकतमत्व २/३९
इषुकारवन्नैकचित्तस्य ४/१४
ईदृशेश्वरसिद्धि: सिद्धा ३/५७
ईश्वरासिद्धे: १/९२
उत्कर्षादपि मोक्षस्य १/५
उत्पत्तिवद्वाऽदोष: १/१२३
उपदेश्योपदेष्टृत्वात्तत्सिद्धि: ३/७५
उपभोगादितरस्य ३/५
उपरागात्कर्तृत्वंचित्सान्निध्यात् १/१६४
उपादाननियमात् १/११५
उपाधिभेदेऽप्येकस्य १/१५०
उपाधिर्भिद्यते, न तु तद्वान् १/१५१
उपाधिश्चेत्तत्सिद्धौ ६/४६
उभयत्राप्यन्यथा सिद्धे: ५/१००
उभयत्राप्येवम् ५/२३
उभयथाप्यतवशेषश्चेन्नैवं ६/२६
उभयथाप्यसत्करत्वम् १/९४
उभयपक्षसमानक्षेमादथमपि १/४६
उभयसिद्धि:प्रमाणात्तदुपदेश: १/१०२
उभयात्मकं मन: २/२६
उभयान्त्यत्वात्कार्यत्वं १/१२९
ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला ३/४८
ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्ज ५/१११
ऊहादिभि:सिद्धिरष्टधा ३/४४
एक:संस्कार:क्रियानिर्वर्त्तको ५/१२०
एकादशपञ्चतन्मात्रं २/१७
एवमितरस्या: ३/४२
एवमेकत्वेन परिवर्तमानस्य १/१५२
एवं शून्यमपि ५/७९
ऐकभौतिकमपरे ३/१९
औदासीन्यं चेति १/१६३
करणं त्रयोदशविध २/३८
कर्मनिमित्त प्रकृते: ६/६७
कर्मनिमित्तायोगाच्च ३/६७
कर्मवद्दृष्टेर्वा कालादे: ३/६०
कर्मवैचित्र्यात्प्रधानचेष्टा ३/५१
कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम् ६/४१
कर्माकृष्टेर्वाप्यनादित: ३/६२
कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियैरान्तर २/१९

काम्येऽकाम्येऽपि साध्यत्वा	१/८५	ज्ञानान्मुक्तिः	३/२३
कारणभावाच्च	१/११८	ततः प्रकृतेः	१/६५
कार्यतस्तत्सिद्धिः	२/६	तत्कर्मार्जितत्वात्तदर्थमभिचेष्टा	२/४६
कार्यदर्शनात्तदुपलब्धेः	१/११०	तत्कार्यतस्तत्सिद्धेर्नापलापः	१/१३७
कार्यात्कारणानुमानं	१/१३५	तत्कार्यत्वमन्येषाम्	१/७३
कुत्रापि कोऽपि	६/७	तत्कार्यं धर्मादिः	२/१४
कुसुमवच्च मणिः	२/३५	तत्त्वाभ्यासान्नेति नेतीति	३/७५
कैवल्यार्थं प्रवृत्तेः	१/१४४	तत्र प्राप्तविवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः	१/८३
क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः	२/३२	तत्राप्यविरोधः	६/२१
गतियोगेऽप्याद्यकारणताहानि	६/३७	तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वम्	१/९६
गतिश्रुतिरप्युपाधियोगात्	१/५१	तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेः	१/८८
गतिश्रुतेश्च व्यापकत्वे	६/५९	तथाप्येकतरदृष्टान्यतर	१/११२
गुणपरिमाणभेदान्नानात्वम्	२/२७	तथाप्येकसंस्काराचारत्वात्	२/४२
गुणायोगाद्बन्धः शुकवत्	४/२६	तदधिष्ठानाश्रये देहे	३/११
गुणादीनां नात्यन्तबाधः	५/२६	तदन्नमयत्व श्रुतेः	३/१५
चक्रभ्रमणवद्धृतशरीरः	३/८२	तदपि दुःखशबलमिति	६/८
चन्द्रादिलोकेऽप्यावृत्ति	६/५६	तदभावे तदभङ्गावाच्छून्यं	१/४३
चरमोऽहङ्कारः	१/७२	तदुत्पत्ति श्रुतेश्च	१/७७
चातुर्भौतिकमित्यन्ये	३/१८	तदुत्पत्ति श्रुतेः	२/२२
चिदवसाना भुक्तिस्तत्कर्मा	६/५५	तद्धाने प्रकृतिः	१/१३३
चिदवसानो भोगः	१/१०४	तद्बीजात्संसृतिः	३/३
चेतनोद्देशान्नियमः	२/७	तद्भावे तद्योगात्	१/४०
छिन्नहस्तवद्वा	४/७	तद्योगेतत्सिद्धावन्योऽन्या	५/१४
जगत्सत्यत्वमदुष्टकारणजन्य	६/५२	तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः	५/७
जड़प्रकाशायोगात्	१/१४५	तद्योगेऽप्यविवेकान्न	१/५५
जड़व्यावृत्तो जड़ं	६/५०	तद्रूपत्वे सादित्वम्	५/१९
जन्मादिव्यवस्थातः	१/१४९	तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत्	४/१६
जपास्फटिकयोरिव	६/२८	तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः	२/३४
जीवन्मुक्तश्च	३/७८	तमोविशाला मूलतः	३/४९

तयोरन्यत्वे तुच्छत्वम् १/१३४
तस्माच्छरीरस्य ३/२
तुष्टिर्नवधा ३/३९
तेनान्त:करणस्य १/६४
तेषामपि तद्योगे ५/४९
त्रयाणां स्वालक्षण्यम् २/३०
त्रिगुणाचेतनत्वादि १/१२६
त्रिगुणादिविपर्ययात् १/१४
त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था ५/१२५
त्रिभि: सम्बन्धसिद्धे: ५/३८
त्रिविध विरोधापत्ते: १/११३
दार्ढ्यार्थमुत्तरेषाम् ६/२३
दिक्कालावकाशादिभ्य: २/१२
दु:खनिवृत्तेर्गौण: ५/६७
दु:खाद्दु:खं जलाभिषेकवन्न १/८४
दृष्टस्तयोरिन्द्रस्य ४/१८
दृष्टान्तासिद्धेश्च १/३७
देवतालयश्रुतेर्नारम्भकस्य २/२१
देहादिव्यतिरिक्तोऽसौवैचित्र्यात् ६/२
दैवादिप्रभेदा: ३/४६
दोषदर्शनादुभयो: ४/२८
दोषबोधेऽपि नोपसर्पणं ३/७०
द्रष्टृत्वादिरात्मन: २/२९
द्वयो: प्रधानं मनो २/४०
द्वयोरिव त्रयस्यापि ५/११८
द्वयोरेकतरस्य १/८७
द्वयोरेकतरस्यवौदासीन्यमपवर्ग: ३/६५
द्वयोरेकदेशलब्धोपरागान्न १/२९
द्वयो:सबीजत्वमन्यस्य ५/११७
द्वाभ्यामपि तथैव ४/१०
द्वाभ्यामपि प्रमाणविरोध: ६/४७
द्वाभ्यामप्यविरोधान्न ६/४८
धारणासनस्वकर्मणा ३/३२
धेनुवद्वत्साय २/३७
ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभि: २/२९
ध्यानं निर्विषयं मन: ६/२५
न कर्मण उपादानत्वायोगात् १/८१
न कर्मणान्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च १/१६
न कर्मणाप्यतद्धर्मत्वात् १/५२
न कल्पनाविरोध: २/२५
न कामचारित्वम् ४/२५
न कारणलयात्कृतकृत्यता ३/५४
न कार्ये नियम उभयथा ५/३९
न काल नियमो ४/२०
न कालयोगतो १/१२
न किञ्चिदप्यनुशयिन: ५/१२६
न गति विशेषात् १/४८
न तज्जस्यापि तद्रूपतां ४/३१
न तत्त्वान्तरं वस्तु ५/३०
न तत्त्वान्तरं सादृश्यं ५/९४
न तदपलापस्तस्मात् ५/९२
न तन्निर्भागत्वं कार्यत्वात् ५/८८
न तादृक् पदार्थाप्रतीते: १/२४
न तेजोऽपसर्पणात्तैजसं ५/१०५
न त्रिभिरपौरुषयत्वाद्वेदस्य ५/४१
न दृष्टात्ततिसद्धिर्निवृत्ते १/२
न देशभेदेऽप्यन्योपादानता ५/१०९
न देशयोगतो १/१३

न देहमात्रत:	५/१२४	न रागादृते तत्सिद्धि:	५/६
न देहारम्भकस्य	५/११३	न रूपनिबन्धनात्	५/८९
न द्रव्येनियमस्तद्योगात्	५/१०८	नर्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि	३/६९
न द्वयोरेककालायोगा	१/३१	न वयं षट्पदार्थवादिनो	१/२५
न धर्मालाप:	५/२०	न विज्ञान मात्रं	१/४२
न नित्यत्वं वेदानां	५/४५	न विशेषगतिर्निष्क्रियस्य	५/७६
ननित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य	१/१९	न विशेषगुणोच्छित्तिस्तद्वत्	५/७५
न नित्य: स्यादात्मवदन्यथा	६/१३	न व्यापकत्वं मनस:	५/६९
न नियम:प्रमाणान्तरावकाशात्	५/२२	न शब्दनित्यत्वं	५/५८
न निर्भागत्वम् तद्योगात्	५/७१	न शिलापुत्रवद्धर्मिग्राहकमानबाधात्	६/४
न परिमाणचातुर्विध्यम्	५/९०	न श्रवणमात्रात्तत्सिद्धि	२/३
न पाञ्चभौतिकशरीरं	५/१०२	न श्रुतिविरोधो रागिणां	६/५१
न पौरुषेयत्वं	५/४६	न षट्पदार्थनियम	५/८५
न प्रत्यभिज्ञाबाधात्	१/३५	न सकृद्ग्रहणात्सम्बन्धसिद्धि:	५/२८
न बाह्यबुद्धिनियम:	५/१२१	न सतो बाधदर्शनात्	५/५३
न बाह्याभ्यन्तरयोरुप	१/२८	न समवायोऽस्ति	५/९९
न बीजाङ्कुरवत्सादिसंसारश्रुते:	५/१५	न सम्बन्धनित्यतोभया	५/९७
न बुद्ध्यदिनित्यत्वम्	५/१२७	न सर्वोच्छित्तिरपुरुषार्थत्वा	५/७८
न भागलाभो	५/७३	न संज्ञासंज्ञि सम्बन्धोऽपि	५/९६
न भागियोगो	५/८१	न सांसिद्धिकं चैतन्यं	५/२०
न भावे भावयोग:	१/११९	न स्थाननियमश्चित्तप्रसादात्	६/३१
न भूतचैतन्यं	५/१३०	न स्थूलमिति नियम:	५/१०३
न भूतप्रकृतित्वमिन्द्रियाणाम्	५/८४	न स्वभावतो बद्धस्य	१/७
न भूति योगे	४/३२	न स्वरूपशक्तिनियम:	५/३३
न भोगाद्रागशान्ति:	४/२७	न स्वातन्त्र्यात्तदृते	३/१२
न मलिन चेतस्युपदेश:	४/२९	नाकारोपरागोच्छित्ति:	५/७७
न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगो	६/१७	नाज: सम्बन्धो	५/९८
न मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात्	५/४७	नाणिमादियोगो	५/८२
न यज्ञादे: स्वरूपतो	५/४२	नाणुनित्यता	५/८७

नात्माऽविद्यानोभयं	५/६५	निजशक्त्यभिव्यक्तेः	५/५१
नाद्वैतमात्मनो	५/६१	निजशक्त्युद्भव	५/३१
नाद्वैतश्रुतिविरोधो	१/१५४	नित्यत्वेऽपि नात्मनो	६/३३
नानन्दाभिव्यक्तिः	५/७४	नित्यमुक्तत्वम्	१/१६२
नानात्मनापि	५/६२	निमित्तत्वमविवेकस्येति	३/७४
नानादिविषयोपराग	१/२७	निमित्तव्यपदेशात्	५/११०
नानिर्वचनीयस्य	५/५४	नियतकारणत्वान्न	३/२५
नानुमेयत्वमेव	५/१०१	नियतकारणात्तदुच्छित्तिः	१/५६
नानुश्रविकादपि	१/८२	नियतधर्मसाहित्यम्	५/२९
नान्धादृष्ट्या चक्षुष्मता	१/१५६	निराशः सुखी	४/११
नान्यथाख्यातिः	५/५५	निरोधश्छर्दिविचारणाभ्याम्	३/३३
नान्यनिवृत्तिरूपत्वं	५/९३	निर्गुणत्वमात्मनो	६/१०
नान्योपसर्पणेऽपि	६/४४	निर्गुणत्वादसम्भवाद्	६/६२
नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वं	५/४८	निर्गुणत्वान्नचिद्धर्मा	१/१४६
नाप्राप्तप्रकाशत्वं	१/१०४	निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति	१/५३
नाभासमात्रमपि	४/३०	निष्क्रियस्य तदसम्भवात्	१/४९
नाभिव्यक्तिनिबन्धनौ	१/१२०	निःसङ्गेऽप्युपरागो	६/२७
नावस्तुनोवस्तुसिद्धिः	१/७४	नेतरादितरहानेन	३/४५
नावस्थातो देहधर्मः	१/२४	नेन्द्रादिपदयोगोऽपि	५/८३
नाविद्यातोऽप्यवस्तुना	१/२०	नेश्वराधिष्ठिते	५/२
नाविद्याशक्तियोगो	५/१३	नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वे	५/६६
नाशः कारणलयः	१/१२१	नैकान्ततो बन्धमोक्षौ	३/७१
नाशक्योपदेशविधिः	१/९	नैरपेक्ष्येऽपि	३/६८
नासतः ख्यानं	५/५२	नोपदेशश्रवणेऽपि	४/१७
नासदुत्पादो नृशृङ्गवत्	१/११४	पञ्चावयवयोगात्सुखसंवित्तिः	५/२७
नास्ति हि तत्र स्थिरः	५/३३	परधर्मत्वेऽपि	६/११
निजशक्तिभिव्यक्तिर्वा	१/९५	परिच्छिन्नं न	१/७६
निजमुक्तस्य बन्ध	१/८६	परिमाणात्	१/१३०
निजशक्तिर्व्युत्पत्त्या	५/४३	पल्लवादिष्वनुपपत्तेः	५/३५

पाञ्चभौतिको देह: ३/१७
पारम्पपर्यतोऽन्वेषणात् १/१२२
पारम्पर्येण तत्सिद्धौ ६/५८
पारम्पर्येऽपि ६/३५
पारम्पर्येऽप्येकत्र १/६८
पारिभाषिको वा ५/५
पितापुत्रवदुभयो ४/४
पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि ४/२
पुत्रकर्मवदिति चेत् १/३२
पुरुषबहुत्वं ६/४५
पुरुषार्थं करणोद्भवो २/३६
पुरुषार्थं संसृतिलिङ्गानां ३/१६
पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतर १/७५
पूर्वभावमात्रे न नियम: १/४१
पूर्वसिद्धसत्त्वस्या ५/५९
पूर्वापाये उत्तरायोगात् १/३९
पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वं ३/८
प्रकारान्तरासम्भवात् ६/५३
प्रकारान्तरासम्भवादविवेक ६/१६
प्रकाशतस्तत्सिद्धौ ६/४९
प्रकृतिनिबन्धनाच्चेत् १/१८
प्रकृतिपुरुषयोरन्यत् ५/७२
प्रकृतिवास्तवे च २/५
प्रकृतेराञ्जस्यात् ३/७२
प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि ४/१९
प्रतिनियतकारणनाश्य ६/१४
प्रतिबन्धदृश: १/१००
प्रतीत्यप्रतीतिभ्यां न ५/५७
प्रधानशक्तियोगात् ५/८
प्रधानसृष्टि: परार्थं ३/५८
प्रधानविवेकादन्या १/५७
प्रपञ्चमरणाद्यभावश्च ३/२१
प्रमाणाभावान्न ५/१०
प्रसिद्धाधिक्यं प्रधानस्य ६/३८
प्रात्यहिकक्षुत्प्रतीकार १/३
प्राप्तार्थप्रकाशलिङ्गात् ५/१०६
प्रीत्यप्रीतिविषादा १/१२७
बन्धोविपर्ययात् ३/२४
बहुभिर्योगे विरोधो ४/९
बहुभृत्यवद्वा प्रत्येकम् २/४
बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपि ४/१३
बाधितानुवृत्तेर्मध्यविवेकतो ३/७७
बाह्याभ्यन्तराभ्यां १/६३
भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं ५/१०७
भावनोपचयाच्छुद्धस्य ३/२९
भावे तद्योगेन १/८०
भृत्यद्वारा स्वाम्यधिष्ठिति ५/११५
भोक्तुरधिष्ठानाद्भोगा ५/११४
भोक्तृभावात् १/१४३
मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् ५/१
मदशक्तिवच्चेत् ३/२२
मध्ये रजोविशाला ३/५०
महतोऽन्यत् ६/६६
महदाख्यमाद्यं कार्यं १/७१
महदादिक्रमेण २/१०
महदुपरागाद् विपरीतम् २/१५
मातापितृजं स्थूलं ३/७
मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न १/९३

मुक्तात्मन: प्रशंसा १/९५
मुक्तामुक्तयो: ५/४७
मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्न ६/२०
मूर्तत्वाद् घटादिवत् १/५०
मूर्तत्वेऽपि न ३/१३
मूले मूलाभावादमूलं १/६७
यत्सम्बन्धसिद्धं १/८९
यथादु:खात्क्लेश: ६/६
यद्वा तद्वा तदुच्छित्ति: ६/७०
यस्मिन्नदृष्टेऽपि ५/५०
युक्तितोऽपि न बाध्यते १/५९
युगपज्जायमानयोर्न १/३८
योगसिद्धयोऽप्यौषधादि ५/१२९
योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न १/९०
योग्यायोग्येषु प्रतीति ५/४४
रागविरागयोर्योग:सृष्टि: २/९
रागोपहतिर्ध्यानम् ३/३०
राजपुत्रवत्तत्त्वोपदेशात् ४/१
रूपादिरसमलान्त उभयो: २/२८
रूपै:सप्तभिरात्मानं ३/७३
लब्धादिधर्मैरन्योऽन्यं १/१२८
लब्धातिशययोगाद्वा ४/२४
लयविक्षेपयोर्व्यावृत्त्या ६/३०
लिङ्गशरीरनिमित्तक इति ६/६९
लीनवस्तुलब्धातिशय १/९१
लोकस्य नोपदेशात्तत्सिद्धि ६/५७
लोकव्युत्पन्नस्य ५/४०
लौकिकेश्वरवादितरथा ५/४
वस्तुत्वे सिद्धान्तहानि: १/२१
वाङ्मात्रं तु न तत्त्वं चित्तस्थिते: १/५८
वाच्यवाचकसम्बन्ध: ५/३७
वादिविप्रतिपत्तेस्तद १/१११
वामदेवादिर्मुक्तो १/१५७
वासनया न स्वार्थख्यापनं ५/११९
विचित्रभोगानुपपत्ति: १/१७
विजातीयाद्वैतापत्तिश्च १/२२
विदितबन्धकारणस्य १/१५५
विद्यातोऽन्यत्वे ५/१६
विद्याबाध्यत्वे जगतो ५/१८
विपर्यय भेदा: पञ्च ३/३७
विमुक्तबोधान्न सृष्टि: ५/४३
विमुक्तविमोक्षार्थम् २/१
विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम् ५/६८
विरक्तस्य तत्सिद्धे: २/२
विरक्तस्य हेयहानमुपादेयो ४/२३
विरुद्धोभयरूपा १/२३
विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्ति: ३/६३
विवेकान्निशेषदु:खनिवृत्तौ ३/८४
विशिष्टस्य जीवत्वमन्वय ६/६३
विशेषकार्येऽपि जीवानाम् १/६७
विशेषणानर्थक्यप्रसक्ते: ५/३४
विषयोऽविषयोऽप्यतिदूरा १/१०८
वृक्षगुल्मलतौषधि ५/१२२
वृत्तय;पञ्चतय्य: २/३३
वृत्तिनिरोधात्तत्सिद्धि: ३/३१
वैराग्यादभ्यासाच्च ३/३६
व्यक्तिभेद:कर्मविशेषात् ३/१०
व्यावृत्तोभयरूप: १/१६०

व्रतनियमलङ्घनात्	४/१५	समान:प्रकृतेर्द्वयो:	१/६९
शक्तस्य शक्यकरणात्	१/११७	सम्प्रति परिमुक्तो	३/६
शक्तितश्चेति	१/१३२	सम्बन्धाभावान्नानुमानम्	५/११
शक्तिभेदेऽपिभेदसिद्धौ	२/२४	सम्भवेन्न स्वत:	२/४४
शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां	१/११	सर्वत्र कार्यदर्शनात्	६/३६
शरीरादिव्यतिरिक्त:	१/१३९	सर्वत्र सर्वदा	१/११६
शुक्लपटवद्बीजवच्चेत्	१/१०	सर्वासम्भवात् सम्भवेऽपि	१/४
शून्यं तत्त्वं भावो	१/४४	सर्वेषु पृथिव्युपादान	५/११२
श्येनवत्सुखदु:खी	४/५	संयोगाश्च वियोगान्ता:	५/८०
श्रुतिन्यायविरोधाच्च	१/३६	संस्कारलेशतस्तत्सिद्धि:	३/८३
श्रुतिरपि प्रधानकार्यं	५/१२	संहतपरार्थत्वात्	१/६६,१/१४०
श्रुतिलिङ्गादिभि:	५/२१	स हि सर्ववित् सर्वकर्ता	३/५६
श्रुतिविरोधान्न	६/३४	साक्षात्सम्बन्धात्	१/१६१
श्रुतिश्च	३/८०	सात्त्विकमेकादशकं	२/१८
श्रुत्या सिद्धस्य	१/१४७	समान्यकरणवृत्ति:	२/३१
षष्ठीव्यपदेशादपि	६/३	सामान्यतो दृष्टादुभयसिद्धि:	१/१०३
षोडशादिष्वप्येवम्	५/८६	सामान्येन विवादाभावात्	१/१३८
सङ्कल्पितेऽप्येवम्	३/२८	साम्यवैषम्याभ्यां	६/४२
सक्रियत्वात् गतिश्रुते:	५/७०	सिद्धरूपबोद्धृत्वात्	१/९८
सत्कार्य सिद्धान्त	५/६०	सिद्धिरष्टधा	३/४०
सत्तामात्राच्चेत्	५/९	सुखलाभाभावादपुरुषार्थं	६/९
सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था	१/६१	सुषुप्ताद्यसाक्षित्वम्	१/१४८
सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं	६/३९	सौक्ष्म्यादनुपलब्धि:	१/१०९
सदसत्ख्यातिर्बाधाबाधात्	५/५६	स्थिरकार्यसिद्धे:	१/३४
सप्तदशैकलिङ्गम्	३/९	स्थिरसुखमासनम्	३/३४
समन्वयात्	१/१३१	स्थिरसुखमासनमिति	६/२४
समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु	५/११६	स्थूलात्पञ्चतन्मात्रस्य	१/६२
समानकर्मयोगे बुद्धे:	२/४७	स्मृतेश्च	५/१२३
समानं जरामरणादि	३/५३	स्मृत्यानुमानाच्च	२/४३

स्वकर्मस्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम् ३/३५ स्वभावाच्चेष्टितमन ३/६१
स्वप्नजागराभ्यामिव ३/२६ स्वोपकारादधिष्ठानं ५/३
स्वभावस्यानपायित्वात् १/८ हेतुमदनित्यं १/१२४

***

परिशिष्ट -२

पञ्चशिखाचार्य के सांख्य-सूत्र (उद्धरणों से सङ्कलित)

१.आदिविद्वान् निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद् भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच (योगसूत्र भाष्य १/२५)

२.तन्त्रमिति व्याख्यायते, तम एव खल्विदमग्र आसीत्, तस्मिंस्तमसि क्षेत्रज्ञ एव प्रथमोऽप्यवर्तत, तम इत्युच्यते प्रकृतिः,पुरुषः क्षेत्रज्ञः।(सांख्यकारिका, ७१, माठरवृत्ति)

३.पुरुषाधिष्ठितं प्रधानं प्रवर्तते।(सांख्यकारिका, १७, माठरवृत्ति)

४.प्रधानंस्थित्यैव वर्तमानं विकाराकरणादप्रधानं स्यात्, ता गत्यैव वर्तमानं विकारनित्यत्वादप्रधानं स्यात्, उभयथा चास्य प्रवृत्तिः, प्रधानव्यवहारं लभते नान्यथा। करणान्तरेष्वपि कल्पितेषु समानश्चर्चः।(योगसूत्रभाष्य२/२३)

५.सत्त्वंनाम प्रसादलाघवानभिष्वंभप्रीतितितिक्षासन्तोषादिरूपानन्तभेदं समासतः सुखात्मकम्(सा.सू.१/१२७, भिक्षुभाष्य)

६.एवंरजोऽपि शोकादिनानाभेदं समासतो दुःखात्मकम्(पूर्ववत्)

७.एवंतमोऽपि निद्रादिनानाभेदं समासतो मोहात्मकम्(पूर्ववत्)

८.सत्त्वारामः सत्त्वमिथुनश्च सदास्यात् (युक्तिदीपिका,पृष्ठ १२९)

९.चलञ्च गुणवृत्तम्(योगसूत्रभाष्य २/१५)

१०.सत्तामात्रोमहान्(युक्तिदीपिका,पृष्ठ १७०)

११.एतस्माद्धि महत आत्मन इमे त्रय आत्मानः सृज्यन्ते वैकारिक-तैजस-भूतादयो-ऽहङ्कारलक्षणाः, अहमित्येवैषां सामान्य लक्षणं भवति, गुणप्रवृत्तौ न पुनर्विशेषलक्षणम्(युक्तिदीपिका, पृ१४४)।

१२.तदेतस्मिन् वैकारिके स्रक्ष्यमाण एष भूतादितैजसेनोपष्टब्ध एतं वैकारिकमभिधावति। तथैव तस्मिन् भूतादौ स्रक्ष्यमाण एष वैकारिकस्तैजसेनोपष्टब्ध एतं भूतादिमभिधावति, इत्यनेन न्यायेन तैजसादुभय निष्पत्तिः।(युक्तिदीपिका, पृ११७)।

१३.आहङ्कारिकाणीन्द्रियाण्यर्थं साधयितुमर्हन्ति नान्यथा(युक्तिदीपिका, पृ१२३)।

१४.महदादिविशेषान्तः सर्गो बुद्धिपूर्वकत्वात्। उत्पन्नकार्यकरणस्तु माहात्म्य शरीर एकाकिनमात्मानमवेक्ष्याभिदध्यौ। हन्ताहं पुत्रान् लक्ष्ये, ये मे कर्म करिष्यन्ति, ये मां चापरं च ज्ञास्यन्ति। तस्याभिध्यायतः पञ्च मुख्यस्रोतसो देवाः प्रादुर्बभूवुः। तेषूत्पन्नेषु न तुष्टिं लेभे। ततोऽन्ये तिर्यक्स्रोतसोऽष्टाविंशतिः प्रजज्ञिरे। तेष्वप्यस्य मतिर्नैव तस्थे। अथापरे नवोर्ध्वस्रोतसो देवाः प्रादुर्बभूवुः। तेष्वप्युत्पन्नेषु नैव कृतार्थमात्मानं मेने। ततोऽन्येऽष्टावर्वाक् स्रोतस उत्पेदुः। एवं तस्माद् ब्रह्मणोऽभिध्यानादुत्पन्नस्तस्मात् प्रत्यय सर्गः। स विपर्ययाख्यः, अशक्त्याख्यः, तुष्ट्याख्यः, सिद्ध्याख्यश्च।(युक्तिदीपिका पृष्ठ १५२)

१५.जलभूम्योः पारिणामिकं रसादिवैश्वरूप्यं स्थावरेषु दृष्टं तथा स्थावराणां जङ्गमेषु जङ्गमानां स्थावरेषु। (योगसूत्र भाष्य ३/१४)

१६.एकजातिसमन्वितानामेषां धर्ममात्रं व्यावृत्तिः।(योगसूत्र भाष्य ३/४४)

१७.तुल्यदेशश्रवणानामेकदेशश्रुतित्वं सर्वेषां भवति।(योगसूत्र भाष्य ३/४१)

१८.अयं तु खलु त्रिषु गुणेषु कर्तृषु अकर्तरि च पुरुषे तुल्यातुल्यजातीये चतुर्थे तत्क्रियासाक्षिण्युपनीयमानान् सर्वभावानुपपन्नाननुपश्यन् न दर्शनमन्यच्छङ्कते। (योगसूत्र भाष्य २/१८)

१९.अपरिणामिनी हि भोक्तृशक्तिरप्रतिसंक्रमा च परिणामिन्यर्थे प्रतिसंक्रान्तेव तद्वृत्तिमनुपतति, तस्याश्च प्राप्तचैतन्योपग्रहरूपाया बुद्धिवृत्तेरनुकारमात्रतया बुद्धिवृत्त्यविशिष्टा हि ज्ञानवृत्तिरित्याख्यायते।(योगसूत्र भाष्य २/२०)

२०.एकमेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम्(योगसूत्र भाष्य १/४)

२१.रूपातिशया वृत्त्यतिशयाश्च परस्परेण विरुध्यन्ते, सामान्यानि त्वतिशयैः सह प्रवर्तन्ते। एवमेते गुणा इतरेतराश्रयेणोपार्जितसुखदुःखमोहप्रत्यया इति सर्वे सर्वरूपा भवन्ति, गुणप्रधानभावकृतस्त्वेषां विशेषः।(योगसूत्र भाष्य ३/१३)

२२.धर्मिणामनादिसंयोगात् धर्ममात्राणामप्यनादिः संयोगः(योगसूत्र भाष्य २/२२)

२३.व्यक्तमव्यक्तं वा सत्त्वमात्मत्वेनाभिप्रतीत्य तस्य सम्पदमनुनन्दत्यात्मसम्पदं मन्वानः, तस्य व्यापदमनुशोचत्यात्मव्यापदं मन्यमानः, स सर्वोऽपि बुद्धः(योगसूत्र भाष्य २/५)

२४.बुद्धितः परं पुरुषमाकारशीलविद्यादिभिर्विभक्तमपश्यन् कुर्यात् तत्रात्मबुद्धिं मोहेन।(योगसूत्र भाष्य २/६)

२५.अम्भ इति गुणलिङ्गसन्निचयमेवाधिकुरुते। गुणाश्च सत्त्वरजस्तमांसि लिङ्गश्च

महदादि, अत्र सन्निहितं भवति। तदिदं प्रधानममितं भाति, अमितमुपलभ्यत इत्यम्भ:(युक्तिदीपिका पृष्ठ १५६)

२६.सलिलं सलिलमिति वैकारिकोपनिपातमेवाधिकरुते, सति तस्मिन् लीयते जगत्।(युक्तिदीपिका पृष्ठ १५६)

२७.वृष्टिर्वृष्टिरिति श्रिय एवोपनिपातमधिकुरुते, साहि वृष्टिवत् सर्वमाप्यायति।(युक्तिदीपिका पृष्ठ १५८)

२८.महामोहमयेनेन्द्रजालेन प्रकाशशीलं सत्त्वमावृत्य तदेवाकार्ये नियुङ्क्ते। (योगसूत्रभाष्य २/५२)

२९.स्वभावं मुक्त्वा दोषाद् येषां पूर्वपक्षे रुचिर्भवति, अरुचिश्च निर्णये भवति (योगसूत्रभाष्य ४/२५)

३०.स्यात् स्वल्प: संकर: सपरिहार: सप्रत्यवमर्श: कुशलस्य नापकर्षायालं, कस्मात् कुशलं हि मे बह्वन्यदस्ति, यत्रायमावापं गत: स्वर्गेऽप्यपकर्षमल्पं करिष्यति। (योगसूत्रभाष्य २/१३)

३१.स खल्वयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि बहूनि समादित्सते तथा तथा प्रमादकृत्येभ्यो हिंसानिदानेभ्यो निवर्तमानस्तामेवावदातरूपामहिंसां करोति।योगसूत्रभाष्य २/३०)

३२.ये चैते मैत्र्यादयो ध्यायिनां विहारास्ते बाह्यसाधननिरनुग्रहात्मान: प्रकृष्टं धर्ममभिनिवर्तयन्ति।(योगसूत्रभाष्य ४/१०)

३३.तपो न परं प्राणायामात्, ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य। (योगसूत्र भाष्य २/५२)।

३४.तमणुमात्रमात्मानमनुविद्यास्मीत्येवं तावत् संप्रजानीते(योगसूत्रभाष्य २/१७)

३५.तत्संयोगहेतुविवर्जनात् स्यादयमात्यन्तिको दु:खप्रतीकार:। कस्मात्। दु:खहेतो: परिहार्यस्य प्रतीकारदर्शनात्। तद्यथा-पादतलस्य भेद्यता, कण्टकस्य भेत्तृत्वं, परिहार: कण्टकस्य पादानधिष्ठानं पादत्राणव्यवहितेन वाधिष्ठानम्। एतत्त्रयं यो वेद लोके स तत्र प्रतीकारमारभमाणो भेदजं दु:खं नाप्नोति। कस्मात्। त्रित्वोपलब्धिसामर्थ्यात्(योगसूत्रभाष्य २/१७)

३६.कुम्भवत् प्रधानं पुरुषार्थं कृत्वा निवर्तते(सांख्यकारिका ५६,गौड़पादभाष्य)।

******

लेखक परिचय-अरुण कुमार उपाध्याय का जन्म बिहार प्रान्त के भोजपुर जिले में आरा के निकटस्थ पैगा ग्राम में विक्रमाब्द २००९ भाद्रशुक्ल १०/११ अर्थात् ३०-८-१९५२ मध्यरात्रि को पारम्परिक वैदिक परिवार में हुआ था। पिता श्री चन्द्रशेखर उपाध्याय द्वारा लिखित वैदिक कोष ३० वर्ष तक इस आशा में प्रकाशित नहीं हुआ कि ज्योतिष के आधार परउसका काल तथा ज्योतिषीय अर्थ लिखा जायगा। पिता की इच्छा पूर्ण करने के लिये लेखक ने भौतिकविज्ञान में एम्.एस.सी करते समय(अपूर्ण) भारतीय वन सेवा तथा बाद में पुलिस सेवा १९७६ में ग्रहण किया। १९८१ में उत्कल विश्वविद्यालय से गणित में एम.एस.सी.कर ज्योतिष के सबसे विशाल ग्रन्थ सिद्धान्त-दर्पण(२५०० श्लोक) की गणितीय व्याख्या की जो भारत सरकार के अनुदान से १९९८ में १८०० पृष्ठों में प्रकाशित हुआ। उसके बाद वेद की ज्योतिषीय व्याख्या पर प्राय: ३० शोध लेख, दुर्गा सप्तशती की वैज्ञानिक व्याख्या आदि के बाद सांख्य दर्शन के वैज्ञानिक आधार पर लिखा है। सम्पूर्ण तैत्तिरीय संहिता की वैज्ञानिक व्याख्या मुख्यत: ज्योतिष के आधार पर करने की योजना है।

***

ग्रन्थ परिचय-सांख्य दर्शन वेद समझने का आधार है। गीता में सांख्य तथा योग को ज्ञान की दो मुख्य धारायें कहा गया है। वेद काल में यह ज्ञात था, बाद में वेद का आधार भूलने पर इसकी पुन: व्याख्या की आवश्यकता हुयी। सांख्य दर्शन केवल ऋषियों की कल्पना-मात्र नहीं है, यह विश्व का वास्तविक वर्णन है। किसी काल में सम्पूर्ण विश्व में विश्व की रचना तथा उसका आकार आदि ज्ञात थे। इन सूक्ष्म मापों के आधार पर ही दर्शन आधारित था। ७-७ प्रकार के युग और योजन तथा ९ प्रकार की सृष्टि के ९ कालमानों के वर्णन के बाद तत्त्व-समास के आधार पर सांख्य का आधार स्पष्ट किया गयाहै। इसके बाद सांख्यसूत्रों तथा सांख्य-कारिका भी शब्दार्थ सहित देकर पुस्तक को पूर्ण रूप दिया गया है।